मूलशङ्कर याज्ञिक की कृतियो
का
आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल्॰ उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
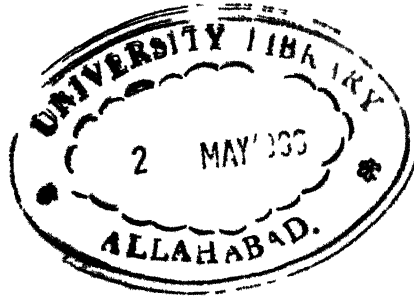
पर्यवेक्षक
डॉ॰ हरिदत्त शर्मा
रीडर—संस्कृत विभाग

शोधकर्ता
हनुमान यादव

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1992

प्राक्कथन

भाषा ही वह माध्यम है जिसके सहयोग से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति एवं एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से निकटता प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की महत्ता विवाद से परे है, उसी प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता के लिए , भक्तजन एवं इष्टदेव की एकता के लिए संस्कृत भाषा का अपना अलग ही स्थान है। ऐसी सरस एवं 'अमृतमयी सुरभारती के प्रति एकनिष्ठ अनुराग होना स्वाभाविक ही है। संस्कृत भाषा के प्रति रुचि होने के कारण ही "संस्कृत-विषय" से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त संस्कृत विषय में शोध की इच्छा बलवती बनी। शोधकार्य हेतु "मूलशंकर याज्ञिक की कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पाकर कृतकृत्य हो गया, जिसके फलस्वरूप याज्ञिक जी द्वारा रचित तीनों नाटक (संयोगिता स्वयंवरम्, प्रतापविजयम्, एवं छत्रपतिसाम्राज्यम्) का गहनता से अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

संस्कृत साहित्य के अनुसंधानात्मक क्षेत्र में काव्य के अन्य अंगों (महाकाव्य, खण्डकाव्य, वेद, पुराण) की भाँति प्राचीन नाट्य साहित्य से सम्बन्धित शोध कार्यों की अधिकता है, किन्तु आधुनिक साहित्य पर शोधकार्य अपेक्षाकृत कम है। इसी श्रृंखला में मेरा भी एक लघु प्रयास है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध परमपूज्य गुरुवर डा0 हरिदत्त शर्मा (रीडर) "संस्कृतविभाग" इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद की महती कृपा का परिणाम है, जिनके सफल निर्देशन में "मूलशंकर याज्ञिक की कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय शोधप्रबन्ध का रूप धारण कर सका, जिसके एतदर्थ में मैं उनके प्रति आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

मुझे स्वर्गीय पिता रामफेर यादव का आशीर्वाद सतत् मिलता रहा जिसके परिणाम स्वरूप मेरा शोधकार्य फलागम तक पहुँचा। मैं परमपूज्य चाचा श्री परमहंस यादव एवं आदरणीय बड़े भाई श्री बृजराज यादव के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनके उत्साहवर्धन से इस कार्य को पूर्ण कर सका। मैं उन सभी ग्रन्थकारों के प्रति, संस्कृत विभाग के गुरुजनों के प्रति, श्री रामरूप यादव (शोध-छात्र) इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य सहयोगियों के प्रति और आत्मीयजनों एवं परिवार के अन्य सदस्यों के प्रतिसस्नेह आभार प्रकट करता हूँ जिनके असीम सहयोग एवं प्रोत्साहन से इस कार्य को पूर्ण कर सका। मैं श्री विजयशंकर ओझा का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने टंकण के माध्यम से सहयोग किया।

दिनांक :- 6-10 92
आश्विनी शुक्ल विजया दशमी

शोधकर्ता
हनुमान यादव
हनुमान यादव

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना : राष्ट्रभक्तिपरक संस्कृत-साहित्य

प्रथम अध्याय

खण्ड - 1

प्रस्तावना

नाट्यस्वरूप :-

संस्कृत-साहित्यशास्त्रीय आचार्यों ने काव्य-स्वरूप-समीक्षा के सन्दर्भ में चाहे सगुण एवं अदोष शब्दार्थ को काव्य कहा हो अथवा रसात्मक काव्य को, सालङ्कार रचना को काव्य कहा हो या रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा हो, परन्तु एक मूल-भाव सब में निहित है कि काव्य का मूल आधार सौन्दर्य है। यह सुन्दर शब्दार्थ रचना ही काव्य का मूल स्वरूप है, और इसी सौन्दर्य तत्त्व को भिन्न-भिन्न आचार्यों ने विभिन्न दृष्टियों से विवेचित किया है। संस्कृत-काव्यशास्त्रियों ने काव्य के स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया है- दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य -

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ।।[1]

दृश्य काव्य में रूपकों या नाटकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इसका अभिनय किया जाता है। ये दर्शकों द्वारा दृश्यमान होते हैं। नाटक के लिए संस्कृत-साहित्य में रूपक शब्द पारिभाषिक है। अभिनय की अवस्था में अभिनेता अपने ऊपर नाटकीय पात्र - - - -

- -

1. साहित्यदर्पण 6/1

के स्वरूप का आरोप कर लेता है।[1] अत: नाटक को रूपक कहा गया है,वैसे नाटक स्वयं दस रूपकों के भेद का एक भाग है।

नाटकों में श्रव्य काव्यों की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता,आकर्षकता भावाभिव्यञ्जकता और विषय की विविधता अधिक होती है। अत: दृश्यकाव्य श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक जनप्रिय होता है।इसलिए कहा गया है कि-"काव्येषु नाटकं रम्यम्"।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि अपने भावों एवं विकारों को दूसरों तक पहुँचाये। मनुष्य मेंमनोरञ्जनार्थ दूसरों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। वह साधारण शब्द,गीत,नृत्य आदि के द्वारा अपने भाव को प्रकट करता है। महामुनि भरत ने नाट्य विवेचन करते हुए अपने नाट्य शास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें मनोरञ्जन हेतु ऐसी वस्तु दीजिए जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हो, जिसको चारो वर्णो के व्यक्ति समान रूप से प्रयोग कर सकें। ब्रह्मा ने प्रार्थना को स्वीकार करते हुए चारों वेदों के सार के आधार को स्वीकार करते हुए चारों के अतिरिक्त पंचमवेद "नाट्यवेद" की रचना की जिसमें उन्होंने क्रमश: ऋग्वेद से कथानक,सामवेद से सङ्गीत, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस तत्त्व को लिया।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदानुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम् ।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।[2]

- -

1. दशरूपक पृष्ठ -4

2. नाट्यदर्पण 1/16,17

कतिपय विदेशी संस्कृत विद्वानों ने नाट्य की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से मानी है । प्रो० कीथ के अनुसार संवाद ही नाट्य-साहित्य का प्राथमिक स्वरूप है, जिसे बाद में अभिनय का रूप प्रदान कर दिया गया है। ऋग्वेद में भी कई सूक्त ऐसे ही है। जैसे यम-यमी , पुरूरवा-उर्वशी इन्द्र-मरूत आदि । ई० ग्रोसे के अनुसार संस्कृत नाट्य वाङ्मय का मूल केवल गीत है।[1] कुछ अन्य विद्वानों ने नाट्य का विवेचन करते हुए नाट्य की उत्पत्ति छाया नाटक"वीर-पूजा" अथवा यूनानी नाटक से मानी है। संस्कृत नाट्य साहित्य ग्रन्थों में नाट्य, रूप और रूपक एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जनमानस के अतिशय समीप होने के कारण अन्य भेदों की अपेक्षा नाटक का अधिक प्रचार एवं प्रसार हुआ। नाटकों की उत्कृष्ट स्थिति ने उन्हें समान्य जनता के रूपक का पर्याय बना दिया। फलतः सामान्य एवं विशेष सम्बन्ध होते हुए नाट्य और नाटक एक -दूसरे के पर्याय बन गये।आज भी नाट्य शास्त्रीय सूक्ष्म ज्ञान से रहित व्यक्ति नाट्य एवं रूपक में भेद नहीं कर पाता है।

<u>नाट्य-प्रयोजन :-</u>

नाट्य में धर्म, क्रीडा,युद्ध आदि का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। नाट्य का उद्देश्य केवल प्रयोजन ही नहीं अपितु कान्ता के उपदेश के समान मधुररीति से राम की तरह व्यवहार करना चाहिए, अत्याचारी रावण की तरह

- -

1. ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-एम0विन्टर नित्स पृष्ठ 179

नहीं, सरीखा उपदेश भी देना है। नाट्य का उपदेश ब्रह्मानन्द सहोदर तथा परमानन्द रूप रस से सिक्त होना है, इसी कारण मनुष्य स्वयमेव उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है। अत: नाटक प्रेम-पात्र का ही नहीं श्रेय का भी साधक है।[1] ईसा की दसवीं शती में विद्यमान महाराज भोज के आश्रित नाट्याचार्य धनञ्जय ने अवस्थाओं के अनुकरण को नाट्य कहा है।[2]

आचार्य सागरनन्दिन् के अनुसार सुख और दु:ख से उत्पन्न होने वाली अवस्थाओं का अभिनय ही नाट्य है।

इस प्रकार जहाँ आचार्य धनञ्जय अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं वहीं आचार्य सागरनन्दिन् अवस्था के अनुकरण के साथ-साथ अभिनय को भी नाट्य का लक्षण मानते हैं।अत: दोनों आचार्यों की परिभाषा में शब्दों की भिन्नता होते हुए भी व्याख्या [प्रयोजन] मूलत: एक ही है,क्योंकि अवस्था के अनुकरण के साथ या किसी प्राप्ति की अवस्था के साथ तादात्म्यापत्ति प्राप्त करने का एक मात्र साधन "अभिनय" ही है। अनुकरण एक क्रिया है और अभिनय उस क्रिया की पूर्ति का साधन । "अनुकरण" अभिनय के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।

आचार्य सागर नन्दिन् इसे अभिहित अभिनय शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि - अभिमुखं नयति अर्थानितिअभिनय:।[3] इसी लिए आचार्य सुधनिक ने अवस्थानुकृति: शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि - चतुर्विधाभिनयेनतादात्म्यापत्ति:। वस्तुत: नाट्य के सम्बन्ध में "अभिनय" शब्द अनुकरण से भी अधिक

- -

1· नाट्यशास्त्र 1/107-8

2· दशरूपक पृष्ठ 4 [चौखम्बा प्रकाशन]

3· नाटकलक्षण कोष पृष्ठ 28

महत्त्वपूर्ण है। आचार्य सागरनन्दिने अभिनयशब्द को और अधिक वांछनीय बनाने के लिए अनुकरण शब्द के साथ अभिनय शब्द को महत्ता प्रदान की है।

रामायण एवं महाभारत सरीखे उपजीव्य काव्यों के अनन्तर नाट्य प्राचीन वाङ्मय का बड़ा ही लोकप्रिय शिल्प रहा है। इसके माध्यम से हमारे जीवन के सांस्कृतिक विकास के सुदीर्घ इतिहास पर मन्द मधुर आलोक शताब्दियों से फैलाता रहा है। आधुनिक आचार्य नाट्य सम्बन्धी ग्रन्थ [काव्य] लिखते समय आरम्भ में ही तीनों [ताण्डव, लास्य, नृत्य] के स्वरूप को स्पष्ट करके आगे बढ़ते हैं। भट्टोजि दीक्षित के अनुसार वाक्यार्थ का अभिनय नाट्य एवं पदार्थ का अभिनय नृत्य है, जिसमें शरीर का संचालन ताल और लय पर आश्रित होता है।[1]

आधुनिक युग में समस्त प्रकार के दृश्य अथवा अभिनय काव्य को प्राय: नाटक के नाम से अलंकृत किया जाता है। ऐसा कहना अशास्त्रीय भी है क्योंकि नाटक तो दस प्रकार के रूपकों में एक प्रकार का रूपक है। बहुधा नाटक को समस्त प्रकार के अभिनय काव्य की 'प्रकृति कहा गया है, परन्तु यह प्रस्ताव भी उचित नहीं है। नाटक, नाटिका, त्रोटक आदि रूपकों की 'प्रकृति बनने में भले ही समर्थ हो परन्तु वीथी, भाण एवं प्रहसन आदि की 'प्रकृति बनने में कदापि समर्थ नहीं हैं। नाटक, नाटिका, कथानक तथा रस-निष्पत्ति की दृष्टि से नाटक या त्रोटक बहुत कुछ नाट्य जैसे ही हैं। जैसे- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् रत्नावली नाटिका आदि में कुछ बातों को छोड़कर शेष में बहुत साम्य है।

---

1. सिद्धान्त कौमुदी भाग 3 पृ0 114

वीथी आदि में नायक विधान, अङ्क विधान, कथानक-विधान, रस-विधान आदि सभी नाटकों में सर्वथा भिन्न मिलते हैं।[1]

उदाहरणार्थ यदि नाटक में धीरोदात्त नरेश नायक है तो व्यायोग आदि में दिव्यादिव्य नायक (जैसे पंचपाण्डव) और डिम आदि में दिव्य कोटि का नायक होता है। इस प्रकार नाटक सभी अन्य प्रकार के रूपकों का प्रतिनिधि है। उदाहरण-प्रकरण और नाटक में बहुत कम भिन्नता है। दशरूपक के प्रकरण का लक्षण करते समय केवल मुख्य विशेषताओं को गिनाकर शेषनाटकवत् कहकर नाटक के प्रतिनिधित्व को प्रदर्शित किया गया है।

'प्रकृत आधुनिक नाटककार श्री मूलशंकर याज्ञिक भी पूर्व नाटककारों की तरह नाटक के प्रयोजन को बताते हुए कहते हैं कि रंगमंच का मुख्य उद्देश्य पात्र में वर्तमान अरुचिकर किन्तु हितकारी तिक्त पदार्थ को छलपूर्ण मधुरता का छद्म रूप देना है। इनके अनुसार काव्यात्मक रचना का मुख्य उद्देश्य संसाररूपी रंगमंच पर अपना दायित्व एवं अभिनय सफलता पूर्वक तथा मनोहारी रूप में सम्पन्न करना है। शौर्यमय एवं उदात्तक्रिया-कलापों के माध्यम से समाज को नैतिकता और धर्म के सर्वोच्च मार्ग पर अग्रसर करना है। ऐसी रचनाएँ दृश्यात्मक या श्रव्यात्मक हो सकती हैं। दृश्यात्मक रचना को ही रूपक कहा जाता है, क्योंकि इसके विभिन्न चरित्रों का अभिनय करते हुए अभिनेता इसे रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं। नाटक का

---

1. दशरूपक

कथानक सदैव किसी विश्रुत ऐतिहासिक घटना पर आधारित होता है। इसमें पाँच अवस्थाएँ ﴾1﴿ आरम्भ ﴾2﴿ चेष्टा ﴾3﴿ मूल उद्देश्य प्राप्ति की सम्भावना ﴾4﴿ वाञ्छित फल प्राप्ति का विश्वास ﴾5﴿ पूर्ण लक्ष्य प्राप्ति है। इन अवस्थाओं को जोड़ने वाली पाँच कड़ियाँ एवं पाँच माध्यम है, जो कथानक के क्रमिकविकास में सहायक होते हैं। नाटक मनोहारी, भव्य, सुखद, क्लेशकारी एवं विभिन्न रसों से युक्त होना चाहिए। नायक किसी सुविख्यात राजवंश का न्यायनिष्ठ राजा होना चाहिए, जो धीर, कुलीन एवं पराक्रमी हो, नायिका कोई कुँवारी कन्या अथवा उसी के समान शीलवती सामान्य नारी होनी चाहिए। नाट्य का अन्तिम लक्ष्य उद्देश्य प्राप्ति होना चाहिए। इस प्रकार संस्कृत नाटक प्राय: सुखान्त एवं आदर्शमय होते हैं।

इस प्रकार श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने इन बातों को ध्यान में रखकर वीर रस प्रधान नाटकों की रचना की है- जो निम्नलिखित हैं-

1. संयोगिता स्वयंवरम् ।
2. प्रतापविजयम् ।
3. छत्रपतिसाम्राज्यम् ।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड - 2

संस्कृत में राष्ट्रिय साहित्य

संस्कृत - काव्य के दीर्घ परम्परा का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत में राष्ट्रिय साहित्य की रचना प्राचीन काल से होती चली आयी है। संस्कृत वाङ्मय में राष्ट्रियता का आरम्भ वेदों के जन्म के साथ ही हो जाता है क्योंकि हमारी अति प्राचीन चिन्तन धारा के विषयकोष वेद ही हैं। हमारे प्राचीन ऋषियों ने मानव-जीवन के विविध पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा की है। उन सबके विचार के अनुसार मनुष्य को केवल सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक पक्षों का ही मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, बल्कि देशभक्ति एवं स्वराष्ट्र प्रेम के भाव को भी जागरित करना चाहिए। ऋषि-महर्षि इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे कि अपनी सामूहिक सम्मानपूर्ण सत्ता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि अपनी मातृभूमि एवं देश की तन, मन, धन से सुरक्षा की जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हम सब अपनी जन्मभूमि, अपनी धरती एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठावान् रहें, जिसके फलस्वरूप भारतीय ऋषि-महर्षियों ने भारतीय जन-मानस में देश-प्रेम की अदम्य भावना को भरने के लिए वेदों में अनेक स्थानों पर अपने देश, राष्ट्र एवं मातृभूमि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, जिसे पढ़कर या सुनकर हमारे मानस-पटल पर देश के प्रति गौरव का भाव पनपता है। स्वदेश को अपनी माता मानने की भावना सर्व प्रथम वेदों में ही मिलती है।

तन्वो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिताद्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥[1]

इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि को मातृभूमि कहकर सम्बोधित करने को शिक्षा भी वेदों से ही मिलती है।

इन्द्रो या चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्विसृजता मातापुत्राय मे पयः ॥[2]

पुराणों में भी राष्ट्रियता का पर्याप्त वर्णन किया गया है।पुराण हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के कोश हैं, एवं लौकिक एवं परलौकिक जीवन के अनुकरणीय आदर्श है। पुराण वेदों के ही सरलीकृत रूप हैं। ज्ञान,भक्ति एवं वैराग्य के पवित्र मिलनबिन्दु हैं। ये ही भारतवर्ष के वास्तविक भौगोलिक मानदण्ड है, भारत और भारतीयता के प्रबल प्रतीक हैं। पुराणों में भारतवर्ष नामक इस आर्यदेश को प्रतिष्ठा ,रक्षा,शालीनता और 'समृद्धि के प्रति मानव-चेतना को प्रबुद्ध किया गया है और आर्यदेश की संस्कृति एवं सभ्यता को महत्त्व प्रदान करके जगत् रूपी पटल पर अपनी भारतीयता के लिए आत्मसम्मान प्रकट किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के कारण पुराणों में राष्ट्रिय भावना की ऊष्मा का ज्ञान अत्यन्त नैसर्गिक है पुराणों में भारतभूमि की सीमा निर्धारण करने , उसकीपवित्रता , महत्ता, 'समृद्धता तथा रमणीयता पर पकाश डालने, भारतीय पर्वतों , वनों नदियों , सरोवरों समुद्रों,तीर्थस्थानों

- -

1. ऋग्वेद 1/89/4
2. अथर्ववेद 12/1/10

तथा नगरों का महत्त्वपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। आर्यदेश को रक्षा सुरक्षा करने वाले अनेक राजवंशों का इतिहास देने तथा उसकी सामाजिक उपयोगिता का ज्ञान कराने आदि के प्रसंग में निश्चय ही जन समूह में राष्ट्रियता के भावों को प्रदीप्त करने की दृष्टि से प्रस्तुत किये गये हैं।

ब्रह्मपुराण में ब्रह्माण्ड वर्णन के प्रसंग में जम्बूद्वीप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सागर के उत्तर दिशा की ओर और हिमगिरि से दक्षिण दिशा की ओर भारतवर्ष की स्थिति है इनमें जन्म लेने वाले भारतीय हैं-

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्तति:।।[1]

इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थानों पर राष्ट्रियता के भाव प्राप्त होते हैं।

संस्कृत के उपजीव्य काव्यों में भी राष्ट्रियता का वर्णन मिलता है। प्रत्येक विकसित एवं विकासशील देश में कुछ ऐसे ग्रन्थरत्न हुआ करते हैं जिसमें उस देश की संस्कृति, सभ्यता एवं धार्मिक मर्यादा आदि का मिलन होता है। ऐसे ही ग्रन्थ राष्ट्र के अमूल्य जीवन-स्रोत होते हैं। इन ग्रन्थों में राष्ट्र की साहित्यिक सुधा के भी अनेक आलम्बन होते हैं। जहाँ से स्वराष्ट्र अनुगामी रससिद्ध साहित्यकार अपनी संवेदना के ही अनुसार कथावस्तु का अपहरण कर अपनी योग्यता के बलपर राष्ट्र के चरित्र एवं धर्म के गौरव का विकास करता है।

---

1. ब्रह्मपुराण 19/1

हमारे भारत में राष्ट्रियता से परिपूर्ण तीन उपजीव्य काव्य प्राप्त होते हैं- (1) रामायण (2) महाभारत (3) श्रीमद्भागवत ।

आज भी हमारे भारतीय साहित्य के अधिकांश भाग इन्हीं तीन ग्रन्थों से पल्लवित एवं पुष्पित हो रहे हैं। संस्कृति, नीति, धर्म, दर्शन, राष्ट्रियता आदि इन्हीं ग्रन्थों पर मौलिक रूप से आधारित है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में अपने चरित नायक श्रीराम के समग्र जीवन चरित का अत्यन्त भव्य एवं हृदयाकर्षक वर्णन किया है । रामायण की प्रमुख घटना है- युद्ध में राम की रावणपर विजय । जिसका अध्ययन कर पाठक गण आत्मविभोर हो जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि की संवेदना राष्ट्र के विकास के प्रति पूर्णरूप से जागरित है। वाल्मीकि जी ने सम्राट् दशरथ एवं श्री रामजी के राज्यकाल में प्रजाजनों की स्थिति का वर्णन कर अपना मनोभाव प्रकट किया है कि राष्ट्र की प्रजा तन, मन और धन से समृद्ध होनी चाहिए। रामायण में यह भी वर्णन किया गया है कि राजा को सदैव अपने राष्ट्र की समृद्धि को बढ़ाते रहना चाहिए एवं राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सैन्य आदि की उत्तम व्यवस्था करनी चाहिए। संक्षेपत: यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि राजा को स्वराष्ट्र की अच्छी तरह देखभाल करनी चाहिए।

महर्षि वाल्मीकि भारतीय संस्कृति के प्रति भी जागरूक थे। सम्राट् दशरथ द्वारा सम्पन्न कराये गये पुत्रेष्टि यज्ञ में, श्री राम लक्ष्मण आदि के जन्म काल में, विश्वामित्र के यज्ञ अनुष्ठान में, श्रीराम के राज्याभिषेक महोत्सव में, दशरथ के अन्त्येष्टि संस्कार आदि यज्ञ एवं अनुष्ठान कार्यों में आदि कवि द्वारा भारतीय संस्कृति का पूर्णरूप से पालन किया गया है। इस प्रकार रामायण में पर्णरूपेण राष्ट्रियता के मूलभाव परिलक्षित होते हैं।

रामायण की ही भाँति महाभारत में भी राष्ट्रियता के गुण(भाव) मिलते हैं। महाभारत में भारत वर्ष के पुरातन वैभव एवं गौरव का लोमहर्षक इतिवृत्त मिलता है। यह अतिविशाल वीरकाव्य है। इस काव्य में अनेक अवान्तर कथाओं औरउपकथाओं को समेटे हुए, कौरव-पाण्डवों की युद्ध कथा का प्रमुखता से वर्णन किया गया है जो सर्वविदित है।

जहाँ तक इस महाकाव्य में राष्ट्रियता का प्रश्न है, इस काव्य का स्वाध्याय करने पर निराशा की अनुभूति नहीं होती है क्योंकि इस काव्य के प्रमुख पात्रों में भारतदेश और भारतीयता की रक्षा करने के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। महर्षि वेदव्यास जी ने भारत और भारतीयता के प्रति गौरवमयी भावना को उद्दीप्त करने की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत वर्ष का परिचयस्वरूप वर्णन भी किया है, जो भारत वर्ष की मर्यादा का सूचक है पाठकों के हृदयपटल पर भारतीयता के प्रति स्वाभिमान के भाव अंकित कर देता है।[1]

वेद व्यास जी ने भारतीय गणतन्त्र के दायित्वों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनका उपदेश है कि गणतन्त्र राज्य को पारस्परिक एकता निर्लोभता तथा सहनशीलता का व्यवहार करना चाहिए। पारस्परिक वैर एवं कलह को लेश-मात्र भी बढ़ावा नहीं देना चाहिए क्योंकि इनके कारण ही गणतन्त्र की सत्ता संकट ग्रस्त हो जाती है। अत: गणतन्त्र के नागरिकों एवं कर्णधारों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि राज्य में ऐसा कोई भी दुर्भाव न पनपने दे जो कि राज-नैतिक एवं राष्ट्रिय भावनापरक सत्ता का घातक हो।[2] अत: स्पष्ट है कि वेदव्यास जी के ये विचार निश्चित रूप से राष्ट्रिय भावना के अभिव्यन्जक हैं।

---

1. भीष्मपर्व 3/12
2. शान्तिपर्व अध्याय 107

वेद व्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत भी संस्कृत-साहित्य का एक अत्यन्त आकर्षक उपजीव्य काव्य है। इस ग्रन्थ में स्थान विशेष पर भारत,भारतीयता और भारत भक्ति भावना का भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं प्रभावशाली वर्णन हुआ है। जिसके पठन-पाठन से राष्ट्रिय भावना का उदय मनोमस्तिष्क में अनायास ही हो उठता है। भगवान ऋषभदेव के चरित वर्णन के प्रसंग में उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत के नाम पर इस देश का भारतवर्ष नाम-करण होनेका बड़े ही गौरव के साथ उल्लेख किया गया है।[1]

इस प्रकार व्यास जी ने राष्ट्र की कुशलता हेतु एक प्रजाप्रेमी देशभक्त शासक की अनिवार्यता को प्रकट करके अपने राष्ट्रिय भाव को उजागर किया है, इसमें किंचित् सन्देह नहीं है।

प्राचीन लौकिक संस्कृत साहित्य में भी राष्ट्रिय काव्य की रचना हुई है। ये संस्कृत काव्य अपनी गरिमा के लिए भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में ख्याति प्राप्त है, भास, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत साहित्यकारों की साहित्य-सम्पदा को प्रत्येक देश को संवेदनशील मनीषियोंनेमान्यता दी है। हमारे भारत देश में तो इनकी काव्यकला की कमनीयता को आज भी सभी विद्वत्-गण निष्पक्ष भाव से महनीय मानते हैं, जिसके फलस्वरूप यह राष्ट्रिय-साहित्य भारत राष्ट्र और भारतीयता के लिए सदैव मूल्यवान् रहा है और रहेगा।

---

1. श्रीमद्भागवत - 5/4/9

पुरातन संस्कृत काव्य का अध्ययन करते समय हमारे मानस पटल पर यह विषय भी अंकित हुआ है कि हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्यकारों में भी अनेक ऐसे साहित्यकार हुए है जिनकी रचनाओं में राष्ट्रिय भावना का सुरीला स्वर सुनाई पड़ता है। इन साहित्यकारों में भास , कालिदास,भवभूति विशाख-दत्त आदि प्रमुख हैं।

रामायण एवं महाभारत की कथाओं पर आधारित भास के रूपकों को पढ़कर पुरातन भारतीय गरिमा और महिमा के प्रति आकर्षण, आत्मीयता और स्वाभिमान के भावों की अनुभूति होने लगती है क्योंकि राम, लक्ष्मण युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण आदि भारतीय वीरों एवं कौशल्या, सुमित्रा, सीता आदि भारतीय आदर्श महिलाओं के स्वाभिमानपूर्ण रोमांचक चरितों का इन रूपकों में अत्यन्त ही सजीव चित्रण किया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि अधिसंख्यक रूपकों में भरतवाक्यों में तो भासनिष्ठ राष्ट्रिय भावना खुलकर सामने आयी है। भास भी भरतवाक्यो में कहते हैं-

भवन्त्वरजसो गाव: परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंह:प्रशास्तु न:।।[1]

स्वप्न वासवदत्त में भरतवाक्य निम्नवत् है-

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंह: प्रशास्तु न: ।।[2]

1• प्रतिज्ञायौगन्धरायण 4/25

2• स्वप्नवासवदत्तम् 6/19

आदि कवि वाल्मीकि की ही तरह भवभूति ने भी भारतवर्ष(आर्यदेश) भारतीय-संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति आस्था व्यक्त की है। भारतीय भूभागों के वर्णन में भी भवभूति की निष्ठा प्रशसनीय है। इनकी काव्य रचना में राष्ट्रिय-भावना का पुट है।

प्राचीन लौकिक संस्कृत साहित्य में कालिदास का अद्वितीय स्थान है। इन्होंने "रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत एवं ऋतुसंहार " नामक श्रव्यकाव्यों एवं अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्र नामक दृश्य काव्यों की रचना की है कालिदास के काव्यों से भारत एवं भारतीयता का ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास को भारत भूमि के कण-कण से प्रेम था। राजा रघु के दिग्विजय के वर्णन के प्रसंग का अध्ययन करने से यह धारणा बनती है कि उनकी दृष्टि में उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या कुमारी तक एवं पश्चिम में कम्बोज से लेकर पूर्व में कलिङ्ग तक एक महनीय भारतराष्ट्र की मूर्तिमती परिकल्पना है।[1]

हमारा विश्वास है कि कालिदास के काव्यों को पढ़कर किसी भी पाठक को यह आपत्ति नहीं होगी कि कालिदास के काव्यों में भारतराष्ट्र के सभी गौरवपूर्ण प्रतीकों का आकर्षक एवं प्रेरक वर्णन किया गया है। इसके फलस्वरूप उनकी काव्यसम्पदा में भारत - राष्ट्र की आत्मा ही प्रतिफलित हो उठी है। कालिदास के सभी काव्यों में पूर्णत: राष्ट्रियता का वर्णन मिलता है। अभिज्ञान शाकुन्तल के अन्त में भरत वाक्य कहा गया है -

---

1. रघुवंश - चतुर्थ अंक

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः, सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नील-लोहितः, पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।।[1]

संस्कृत-साहित्य की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि भारत में ही नहीं,अपितु संसार में कुछ वर्षो से आधुनिक संस्कृत-साहित्य जैसा अतिरमणीय शब्द प्रचलित होने लगा है। यह सुविदित है कि आज भी संस्कृत भाषा में राष्ट्रिय साहित्य की रचना पर्याप्त मात्रा में होने लगी है। संस्कृत भाषा भी अन्यभारतीय भाषाओं की तरह राष्ट्रियभावना के प्रति सचेत एवं सुसम्पन्न है।अत: जो लोग संस्कृत भाषा को मृतभाषा के रूप में मानते हैं वे बहुत ही घने अन्धकार से आच्छादित है, एवं अपने राष्ट्र की अत्यन्त महनीय सम्पत्ति से अनभिज्ञ हैं।

संस्कृत भाषा में राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण संस्कृत साहित्य की सीमा का निर्धारण करना हमाराउद्देश्य नहीं है, फिर भी प्राचीन काल से संस्कृत में राष्ट्रिय काव्यों की रचना की गयी है। आधुनिक समय में इसका विशेष उल्लेख मिलता है।

डा0 कान्ति किशोर भरतिया द्वारा आश्चर्य चूडामणि नाटककार शक्तिभद्र, हनुमन्नाटककार-दामोदर मिश्र, कुन्दमालाकार दिङ्नाथ,चन्द्रकौशिक नाटककार - क्षेमीश्वर, प्रबोध चन्द्रोदय कार - श्रीकृष्णमिश्र, प्रसन्नराघवकार- जयदेव तथाकर्पूर चरित कार-वत्सराज को आधुनिक काल का नाटक कार कहना

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7/35

चिन्तनीय है। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि संस्कृत के महाकवि प्रो0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने ईसु की सत्रहवीं शताब्दी को आधुनिक संस्कृत की पूर्व सीमा माना है जो कि ग्राह्य नहीं है। आधुनिक संस्कृत-साहित्य के सीमा-निर्धारण को अपूर्ण ही समझना चाहिए।

इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं कि हमारा आधुनिक संस्कृत-साहित्य लौकिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। हमारी दृष्टि में संस्कृत-साहित्य की वृद्धि करने वाले संस्कृत-साहित्यकारों की भूयसी संख्या है, परन्तु हमने उन्हीं संस्कृत-साहित्यकारों को अपनी लेखनी का विषय बनाया, जिन्होंने राष्ट्रियता से परिपूर्ण काव्यों को निरूपित किया है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि राष्ट्रभक्तिपरक साहित्यकारों की संख्या एक सौ से भी अधिक है एवं इनके द्वारा लिखित राष्ट्रिय-काव्यों की संख्या दो सौ से भी अधिक है।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य के इतिहास में राष्ट्रिय-भावना को सफल बनाने की इच्छा से कतिपय साहित्यकारों द्वारा रचित संस्कृत-काव्य आगे के विवेचन में संगृहीत हैं।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड -3

राष्ट्रभक्तिपरक-काव्यों की परम्परा

संस्कृत-काव्यों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि संस्कृत-साहित्य के कवियों ने अपने काव्यों के माध्यम से राष्ट्रभक्ति के लिए महनीय योगदान किया है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में जिस समय अपने भारत देश को स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रनेता प्रयासरत थे, उसी समय कवि गण अपनी लेखनी के माध्यम से जन-जन में राष्ट्रभक्ति के लिए प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध राष्ट्रिय-भावना की दिदृक्षा को सफल बनाने की कामना संस्कृत-साहित्य के राष्ट्रभावनाशील कतिपय साहित्यकारों की राष्ट्र-भावनापरक कृतियों का राष्ट्रिय-भावना मूलक विश्लेषण प्रस्तुत है जो अधोलिखित है।

शिवराजविजय -

श्री अम्बिकादत्त व्यास द्वारा [1888-1893 ई0 तक] प्रणीत यह संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त ही ओजस्वी एवं ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में छत्रपति शिवाजी द्वारा किये गये देशभक्ति एवं राष्ट्रिय भावना से परिपूर्ण राष्ट्र कल्याणपरक राजनैतिक कार्यकलापों का अत्यन्त ही सजीवचित्रण है। भारतीयता के विरोधी आक्रमणकारी मुगलसम्राट् औरंगजेब तथा उसके अधीनस्थ मुगलसेनापति शाइस्ता खाँ आदि यवनों के अत्यधिक अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता की रक्षा करने में प्राणों की परवाह न करने वाले शिवाजी ने अपने देश, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के लिए जो अनवरत् प्रयत्न किये, वह सदैव ही

भरत के इतिहास में स्वर्णांकित किये जाने योग्य है। व्यास जी ने उनमें से अधि-
कांश भाग प्रस्तुत उपन्यास में निबद्ध किया है। व्यास जी के अनुसार भारतवर्ष
की जनता तत्कालीन आक्रमणकारी यवनों के नृशंस अत्याचारों से पीड़ित हो रही
थी, कन्याएँ तथा महिलाएँ अपहृत एवं अपमानित की जा रही थी, देवालयों को
अश्वशाला या मस्जिदों में परिवर्तित किया जा रहा था या नष्ट किया जा रहा
था, पुराण आदि ग्रन्थों को पीस कर पानी में बहाया जा रहा था, मनुष्यों
की हत्या की जा रही थी या उन्हें जिन्दा ही जला दिया जाता था, गौएँ
बलि वेदी पर चढ़ा दी जा रही थी। इस प्रकार हिन्दू धर्म पर प्रत्यक्ष ही कुठा-
राघात किया जा रहा था।

व्यास जी ने यवनों के इन अत्याचारों के विरोध में शिवाजी, गौर-
सिंह आदि अनेक कथापात्रों को समर्पण भाव से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के
नायक छत्रपति शिवाजी ने देशभक्त वीर सैनिकों की सेना का गठन एवं संचालन कर
अपनी प्रतिभाशाली राजनैतिक निपुणता के कारण भारतवर्ष की गरिमा को सुर-
क्षित किया है। राष्ट्र के छली शत्रु को छलपूर्वक समाप्त करने में कोई अनैतिकता
नहीं मानी गयी है। व्यास जी राष्ट्र-द्रोहियों के प्रति घृणा एवं निन्दा के भाव
जगाने के लिए हमेशा जागरूक रहे हैं एवं जो राष्ट्रभक्त हैं, अपने देश की गरिमा
को सर्वथा समर्पित भाव से सुरक्षित रखने के लिए अपने सुखमय जीवन की उपेक्षा
करके सदैव कटिबद्ध रहे हैं, ऐसे राष्ट्रीय वीर पुरुषों के प्रति स्नेहसौरभ से युक्त
श्रद्धासुमन समर्पित किये हैं। व्यास जी ने प्रस्तुत कृति में अपने भारतदेश के द्रोहियों

के विनाश के लिए शंकर, दुर्गा, विष्णु इन्द्र आदि देवताओं को निष्कर्मण्य देखकर विस्मय प्रकट किया है। दैत्यारि विष्णु को उपालम्भ देते हैं कि वह भारत की दीन दशा की उपेक्षा कर क्षीर सागर मे सानन्द शयन कर रहे हैं, उन्हें अनेक प्रकार की स्तुति द्वारा भारत की दशा सुधारने हेतु उत्तेजित किया है। शंकर, कृष्ण एवं सिंहवाहिनी भगवती दुर्गा की शत्रुओं से रक्षा करने को प्रार्थना की गयी है।

व्यास जी द्वारा प्रस्तुत उपन्यास की एक प्रशंसनीय विशेषता यह भी है कि सभी यवनों के प्रति घृणा एवं विरोध के भाव को उजागर नहीं किया गया है, छत्रपति शिवाजी के राज्य में भारत और भारतीयता के प्रति आस्था रखने वाले यवनों के प्रति किसी प्रकार का अन्याय नहीं किया गया है। उनके साथ देशभक्त हिन्दुओं को तरह ही व्यवहार किया गया है। यवन कन्याओं के प्रणय का भी समान आदर किया गया है। इसके लिए शिवाजी एवं रसनारी के एक दूसरे के प्रति स्नेहपूर्ण आकर्षण को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। व्यास जी ने प्रस्तुत कृति में भूषण जैसे कवि का बड़ा ही अनूठा उदाहरण प्रस्तुत कर देशभक्त वीरों के प्रति उत्साहवर्धन किया है, जो औरंगजेब जैसे मुगलसम्राट् एवं उसकी अधीनता तले निवास करने वाले जयपुर नरेश जैसे हिन्दूसम्राट् की उपेक्षा कर छत्रपति शिवाजी की सभा में आकर रहने लगे थे। व्यास जी ने अपने भारत देश में तत्कालीन किये जा रहे राष्ट्रियता विरोधी कुंठा एवं जघन्य अत्याचारों के प्रति गम्भीर वेदना को सफलता पूर्वक व्यक्त किया है, जिसके फलस्वरूप उनकी संवेदना भारतीयों के मर्मस्थानों का स्पर्श कर जाती है जिससे उनमें राष्ट्रभक्ति परक भावना पुनः जागरित हो उठती है।

पृथ्वीराजचह्वाणचरितम्

श्री पादशास्त्री ह्सूरकर द्वारा लिखित "पृथ्वीराजचह्वाणचरितम्" एक गद्य काव्य है। देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण इस ऐतिहासिक काव्य में अन्तिम हिन्दू- दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान का सम्पूर्ण जीवन चरित वर्णित है। इस काव्य में कन्नौज नरेश-जयचन्द की अपने मातृष्वसेयबन्धु पृथ्वीराज के प्रति द्वेष का चित्रण किया गया है। ह्सूरकर जी ने अपने इस काव्य में भारतवर्ष के एक ऐसे अन्तिम हिन्दू सम्राट् की वीरगाथा का वर्णन किया है जिसने अपने देश की मान -मर्यादा की रक्षा के लिए, संस्कृति,सभ्यता एवं गरिमा की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है।यद्यपि पृथ्वीराज में कतिपय राजसुलभ दोष भी थे किन्तु उन दोषों का श्रेय उनके बल अभिमान के साथ ही साथ भारत वर्ष की उदार युद्ध नीति तथा उदार संस्कृति को भी जाता है। यही कारण है कि वह बार-बार शरणागत शत्रु को प्राणदान देकर उसे मुक्त करता रहा और अन्त में जो उसको दु:खद पराजय हुई उसमें भी उसके दोषों को कम और भारत की भवितव्यता को अधिक दोष जाता है। इस प्रकार ऐसे देश भक्त परमवीर दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज का यह चरितपरक काव्य नि:सन्देह स्वदेश अभिमान के लिए जन-जन में अवश्य ही प्रेरणा प्रदान करेगा। याज्ञिक जी द्वारा गृहीत पृथ्वीराज की कथा-पर काव्य रचना करने वाले ये एक अन्य कवि हैं जिन्होंने ने इस चरित वर्णन का सफल निर्वाह किया है।

श्रीशिवराज्योदयम्

प्रो0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा प्रणीत (1958-68) यह एक महाकाव्य है इस काव्य का प्रकाशन सन् 1972 ई0 में "शारदा गौरव ग्रन्थमाला" पूना से प्रकाशित किया गया। प्रो0 वर्णेकर ने प्रस्तुत काव्य में भारत,भारतीयता,भारतीय संस्कृति और सभ्यता के संरक्षक छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है। अपने देश,धर्म,सभ्यता एवं संस्कृति पर अभिमान रखने वाले एवं इन सब की प्रतिष्ठा मर्यादा आदि की प्राण के समान रक्षा करने वाले छत्रपति शिवाजी का चरित निश्चय ही भारतदेश की आत्मा का जाज्वल्यमान चिन्ह है। प्रो0 वर्णेकर जी ने इस ऐतिहासिक तथ्य पर गहरा दुःख व्यक्त किया है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को पददलित कर यवन सत्ता का आतंक फैल रहा था।[1]

प्रस्तुत कृति में शिवाजी की माता जीजाबाई द्वारा राष्ट्र रक्षा एवं धर्म रक्षा हेतु उपदेश दिया गया है। समर्थ गुरु रामदास जैसे राष्ट्रभक्त महात्माओं द्वारा शिवाजी को कपटी देश द्रोहियों पर विजय प्राप्त करने के लिए कपट का उपदेश दिया गया है। राष्ट्र के गौरव की रक्षा के लिए प्रयत्नरत वीरों के कल्याण हेतु ईश्वर से आराधना की गयी है एवं बाजी जैसे वीर सैनिकों द्वारा प्राणों की बाजी लगाकर देश की रक्षा करने जैसी घटना का रोमांचक वर्णन किया गया है। यवनराजभक्त जयसिंह के हृदय में राष्ट्र के प्रति प्रेम का अङ्कुरोपण किया गया है।

प्रो0 वर्णेकर जी ने प्रस्तुत कृति में मुगल सम्राट् औरंगजेब द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के निराकरण हेतु छत्रपति शिवाजी द्वारा किये जा रहे कार्य कलापों का रोमहर्षक वर्णन किया है और प्रस्तुत कृति के अन्त में राज्याभिषेक महोत्सव का बड़ा ही मनोरञ्जक वर्णन किया है। इस प्रकार प्रो0 वर्णेकर जी ने भारत और भारतीयता के उपासक एवं स्वाधीनता समर के प्रमुख छत्रपति शिवाजी के कृत्यों के माध्यम से स्वराष्ट्रवासियों को प्रेरणा प्रदान की है।

दयानन्ददिग्विजयम्

"दयानन्ददिग्विजयम्" नामक भव्य काव्य के रचयिता श्री अखिलानन्द शर्मा है। प्रस्तुत काव्य का प्रकाशन सन् 1906 ई0 में किया गया था। इस काव्य कृति में महर्षि स्वामीदयानन्दसरस्वती के जीवन चरित का विधिवत् वर्णन किया गया है। स्वामी दयानन्द जो भारतीय समाज की रक्षा के लिए अनेक कार्य किये, भारत राष्ट्र को कृषि प्रधानता को ध्यान में रखकर किसानों की सर्वस्व भूत गो जाति की रक्षा सुरक्षा के लिए गौरवानुभूति के भाव को जागरित किये हैं। श्री शर्मा जी ने प्रस्तुत काव्य में राष्ट्ररक्षकों द्वारा राष्ट्रभक्षकों का कार्य करते देखकर अत्यधिक दुःख प्रकट किया है। शर्मा जीनेप्रस्तुत कृति के माध्यम से भारतीय जन मानस में भारत एवं भारतीयता की रक्षा के लिए हार्दिक निष्ठा को जागरित किया है। भारतीयता के निवारण हेतु स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है -

दयामय निराधार जगदीश्वर सत्वरम् ।

भारते करुणा दृष्टिं कुरु भारत वत्सलम् ।।[1]

इस प्रकाश शर्मा जी ने दयानन्द सरस्वती जी द्वारा राष्ट्रप्रेम हेतु किये गये कृत्यों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

आर्योदयम्

आर्योदयम् नामक काव्य के माध्यम से पं0 गंगा प्रसाद उपाध्याय ने आत्मनिष्ठ राष्ट्रिय भावना का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए छत्रपति शिवाजी राणा प्रताप सिंह आदि महापुरुषों को गौरवमयी गाथा का वर्णन कर भारतवासियों में आत्म सम्मान को जागरित करने का कार्य किया है।

छत्रपतिचरितम्

डा0 उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी जी द्वारा वर्णित "छत्रपतिचरितम्" एक महाकाव्य है। इस 19 सर्ग वाले महाकाव्य का प्रथम प्रकाशन सन् 1974 ई0 में (आनन्दकानन प्रेस वाराणसी) हुआ। प्रस्तुत कृति में भी छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित का वर्णन किया गया है। इस काव्य में शिवाजी के माध्यम से भारत और भारतीयता की रक्षा का बड़ा ही अनूठा चित्रण किया गया है। इसमें भारत भूमि एवं संस्कृति का बहुत "ही सुन्दर वर्णन किया गया है, महारानी - लक्ष्मीबाई

- -

1• दयानन्ददिग्विजयम् 7/50

तात्यातोपे, तिलक,महात्मा गाँधी आदि भारतीय भक्तों को गौरव गाथा का वर्णन किया गया है। डा0 त्रिपाठो जो ने छत्रपति शिवाजी के प्रति आभार व्यक्त किया है क्योंकि वे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के रक्षक थे। कवि की मान्यता है कि काव्य सर्जना के लिए यदि छत्रपतिशिवाजी के समान नायक हो, संस्कृत जैसी भाषा हो और मातृभूमि जैसा प्रतिपाद्य विषय हो तो काव्य अच्छा हो सकता है -

शिव: पात्रं वचो ब्राह्मी प्रस्तावो मातृभूत्सव: ।
सर्वमेतत्परं दैवात् सूत्रधारोऽहमीदृश: ॥[1]

डा0 त्रिपाठी जी ने यह भी कहा है कि आज भारतवर्ष में जो कुछ भी भारतोय संस्कृति और सभ्यता अवशेष है वह छत्रपति शिवाजी के ही कारण है-

जाह्नवी- जाह्नवी येयं हिन्दवो - हिन्दवोऽथवा ।
भारतं - भारतं वाद्य तत्र हेतु: शिवोदय: ॥[2]

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य के माध्यम से हम सभी भारतीय जन को स्वातन्त्र्य बोध कराया है, राष्ट्रभावना को सर्वोपरि मानने को प्रेरणा दी है, और देश भक्त जनता को वर्णविशेष एवं जाति विशेष से ऊपर उठकर देखने की प्रेरणा दी है।

1· छत्रपतिचरितम् 1/16

2· छत्रपतिचरितम् 19/52

सत्याग्रहगीता

इस राष्ट्रिय काव्य की रचयिता पण्डिता क्षमाराव है। इस काव्य की सर्जना सन् 1931 ई0 को गयी थी। प्रस्तुत कृति में महात्मागाँधी जी द्वारा चलाये जा रहे सत्याग्रह आन्दोलन (1930) का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है। पण्डिताक्षमाराव ने स्वदेश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर इस काव्य कृति को रचना किया है। इस कृति में पराधीनता को राष्ट्र की मृत्युमाना गया है। पराधीनता की बेड़ी को तोड़कर स्वाधीनता का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया है। भारतीय जन समूह में राष्ट्रिय-भावना भरने के लिए पराधीनता कोनपुंसकता का पर्याय कहा गया है जो महनीय शोचनीय स्थिति होती है।[1] पण्डिता क्षमाराव ने प्रस्तुत कृति के माध्यम से अपने राष्ट्र के कल्याण हेतु सभी को एकत्रित होकर स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए रोमहर्षक सन्देश दिया है।[2]

महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गये सत्याग्रह आन्दोलन का प्रसंग भारतीय अहिंसक देश भक्त पुरूषों, महिलाओं एवं बालक-बालिकाओं पर अंग्रेज शासकों द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन निश्चय ही पाठक की धमनियों में बहते हुए रक्त को उष्ण किये बिना नहीं रहता है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रप्रेम का अमन्द संचार हो उठता है।

---

1. सत्याग्रह गीता 2/36
2. सत्याग्रह गीता 7/4

स्वराज्यविजय:

इस काव्य का लेखन कार्य सन् 1949 ई0 मे पण्डिता क्षमाराव द्वारा किया गया था। पण्डिता क्षमाराव जी ने इस काव्य में भी भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए महात्मागाँधी जी द्वारा किये गये कार्यों का उल्लेख किया है। इस कृति के माध्यम से भारतीय छात्रों में राष्ट्रिय-भावना को उद्दीप्त करने हेतु आचार संहिता प्रस्तुत की गयी है। लेखिका ने इस कृति के माध्यम से संदेश दिया है कि विदेशी वस्तुओं का त्यागकर स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करें। भारतीय भू क्षेत्र में रहने वाले हिन्दू एवं मुसलमान समुदाय की एकता हेतु अनेक प्रकार के प्रयत्नों का वर्णन किया गया है जिससे कि भारत देश को अखण्डता बनी रहे ।

प्रस्तुत कृति में भारत की अखण्डता की रक्षा के लिए राष्ट्र नेताओं द्वारा किये गये कृत्यों का वर्णन बड़ी ही भावुकता से किया गया है, जिन्ना जैसे दुराग्रही नेताओं के कारण भारत के विभाजन पर स्तवन्त्रता प्राप्ति के बावजूद भी दु:ख का वर्णन किया गया है। इस प्रकार क्षमाराव जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय प्रस्तुत कृति को रचना कर जन-जन को राष्ट्र के प्रति प्रेरणा प्रदान की है।

श्री रामदासचरितम्

एक अन्य कृति "श्रीरामदासचरितम्" के माध्यम से श्री पण्डिता क्षमाराव ने राष्ट्र रक्षा के लिए भारतीय जन समुदाय में प्रेरणापरक उपदेश दिया है। प्रस्तुत कृति में गुरुरामदास द्वारा छत्रपति शिवाजी की राष्ट्ररक्षा हेतु सहायता का बड़ा ही अनूठा चित्रण किया गया है, जिन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु

समय-समय राज्योचित उपदेश एवं प्रेरणा प्रदान की थी। इस प्रकार पण्डिता क्षमाराव द्वारा निबद्ध किये गये काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनकी भारत राष्ट्र के प्रति अटूट श्रद्धा थी, जिनको अपने काव्यों के माध्यम से जन-जन में पहुँचाने का कार्य किया।

दयानन्ददिग्विजयम्

आचार्य मेधाव्रत जी द्वारा लिखित प्रस्तुत काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1947 ई० में किया गया था। प्रस्तुत काव्य में आर्य समाज नामक भारतीय समाज सुधारक संस्था के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित का अत्यन्त ही सरस वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत काव्य में ब्रिटिश कालीन भारतवर्ष की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष में अध्यात्मवाद के स्थान पर फैलते हुए भोगवाद पर चिन्ता व्यक्त की गयी है।[1] भारतवर्ष की दीन दुर्दशा का ध्यान करा कर भोजन को विस्मृत कराया गया है एवं देशभक्त वीर सपूतों के निधन को देश का दुर्भाग्य कहा गया है।[2] प्रस्तुत कृति में भारतीय नरेशों द्वारा एक दूसरे के प्रति किये गये द्वेषभाव के परिणाम स्वरूप भारत देश में विदेशियों द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था पर गहरा दु:ख व्यक्त किया गया है।[3] भारतीय जन समुदाय में आत्मसम्मान की भावना जागरित करने के लिए भारत की प्राचीन गरिमा पर प्रकाश डाला गया है।

---

1. दयानन्ददिग्विजयम् 16/24
2. दयानन्ददिग्विजयम् 27/73
3. दयानन्ददिग्विजयम् 2/26-27

आचार्य मेधाव्रत ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के माध्यम से भारत-वासियों को जागरित करने हेतु उदाहरण प्रस्तुत किया है-

पुरातनीं भारतभाग्यसम्पदं गतां महोत्कर्षगिरीन्द्रमस्तकम् ।
विनिर्दिशन् वैदिककालशालिनीं जनान्य इत्थं समबोधयन्मुनिः।।
अशेषविद्याध्ययनाय भारते स्थले-स्थले योगिगुरोः कुलं बभौ ।
पृथक्पृथग्बालकबालिकागणैर्वृता र्थिब्रह्मनोभिरन्वितम् ।।[1]

कवि महोदय ने प्राचीन भारत के गौरव को प्रकट करने के लिए यहाँ की पुरातन पवित्र विद्यानिधि पर दृष्टि डाला है। मेधाव्रत जी ने भारत भूमि के प्रति भारतीय जनों में आकर्षण पैदा करने के लिए भारत की प्राकृतिक सम्पदा का बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। राष्ट्रिय भावना को संजोये रखने के लिये भारत में एक ही धर्म एवं एक ही भाषा पर बल दिया गया है।

गान्धीगीता

यह काव्यकृतिदाक्षिणात्य विद्वान श्री निवास ताडपत्रीकर द्वारा सन् 1932 ई0 में प्रकाशित है। प्रस्तुत काव्य में गाँधी जी के जीवन काल में घटित सभी घटनाओं का सुचारू रूप से वर्णन किया गया है-। ताडपत्रीकर जी ने प्रस्तुत कृति में महात्मा गान्धीके माध्यम से भारतीयों को अपने राष्ट्रधर्म का पालन करने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। लेखक का कथन है कि जिस प्रकार हम अपने माता-पिता एवं भगवान का आदर एवं सेवा करते हैं उसी प्रकार अपने राष्ट्र का

---

1. दयानन्ददिग्विजयम् 2/25-27

भी आदर एवं सम्मान करें। हमें अपने देश की कीर्ति को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाना चाहिए। स्वदेश के विकास के लिए किसी विदेशी की सेवा नहीं करनी चाहिए। राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए बड़े से बड़े कष्टों को भी हँसते-हँसते सहन करने के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए।[1] महिलाओं को अपने घर की चहार-दिवारी से बाहर निकल कर अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए क्योंकि राष्ट्र की महिमा को सिद्ध करने में उनका योगदान नि:सन्देह महत्वपूर्ण है।[2] ताड-पत्रीकर जी ने "अंग्रेजों द्वारा भारत वर्ष में कतिपय हिन्दू एव मुसलमान समुदाय में वैमनस्य एवं शत्रुता का दुर्भाव पैदा हुआ, भारत माता का शरीर विभाजित हुआ, हिन्दुओं एवं मुसलमानों के रक्त की नदियां बहीं एवं महिलाओं की लज्जा जो उनका सर्वस्व होती है और सभी के लिए आदरणीय होती है का लज्जाजनक एव कुत्सित अपहरण हुए, का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है एवं भारतीय जनसमुदाय में राष्ट्रानुराग की चेतना का प्रसार करने में महनीय योगदान किया है।

<u>स्वतन्त्र-भारतम्</u>

पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका नाम से विभक्त इस खण्ड काव्य के रचयिता महाकवि श्री बालकृष्ण भट्ट है इस काव्य का लेखनकार्य भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसर पर 1947 ई0 में कर लिया गया था। इस काव्य में भारतवर्ष के उत्थान, पतन एवं पुन: उत्थान का वर्णन किया गया है। इसमें प्राचीन हिन्दू

---

1. गान्धीगीता 3/34-49
2. गान्धीगीता 3/50-85

राजाओं के गौरव, यवन आक्रमण, अंग्रेजों द्वारा भारत की दुर्दशा, गान्धी, तिलक आदि राष्ट्रभक्तों द्वारा स्वतन्त्रता हेतु किये गये प्रयत्नों और अनेक प्रकार से किये गये आक्रमणों को रोकने के लिए भारत द्वारा किये गये सुरक्षा व्यवस्था आदि का अत्यन्त ही ओजस्वी भाषा शैली में वर्णन किया गया है। भट्ट जी को नितान्त संवेदन शील राष्ट्रियभावना का प्रस्तुत काव्य में पदे-पदे प्रयोग दर्शित होता है, जिसके परिणाम स्वरूप पाठकों के मस्तिष्क पर राष्ट्रभावना, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रानुराग आदि की अमिट छाप पड़ जाती है। भट्ट जी भारत को विश्व का भूषण मानते हैं। कवि ने भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू नरेशों के एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या द्वेष पर गहरा दु:ख प्रकट किया है, क्योंकि इन्हीं के फलस्वरूप यवन आक्रमणकारियों को सफलता प्राप्त हुई थी।

समस्त प्रकार के साहित्य से सम्पन्न भारतीय मातृभाषा संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति लोगों के मन में आशा का दीप जलाने के लिए भट्टजी ने महनीय प्रयत्न किया है। भारतीय संस्कृति के प्रति लोगों के हृदयों में आस्था को पुन: प्रदीप्त करने की चेष्टा की है। इन्होंने अपने देश की सेवा को ही सर्वस्व मानने की प्रेरणा दी है एवं तन, मन, धन से समर्पण हेतु भारतीयों को उद्वेलित किया है। कविवर भट्ट जी की भारतवर्ष की अखण्डता के प्रति अपरिहार्य आस्था है। इसी कारण अंग्रेजों के कपटकूट से प्रेरित जिन्ना द्वारा हिन्दू-मुस्लिम के भेद भाव को लेकर भारत भूमि के विभाजन पर गहरा दु:ख व्यक्त किया है।

प्रस्तुत कृति के माध्यम से भट्ट जी ने अपने देश की राजधानी दिल्ली स्वतन्त्रता दिवस(पन्द्रह अगस्त) और अपने राष्ट्र ध्वज (तिरंगे झण्डे) के प्रति भाव-विभोर होकर अपनी ऐकान्तिक एवं आत्यान्तिक निष्ठा प्रकट की है। महात्मा-गाँधी के अभीष्ट रामराज्य की परिकल्पना को साकार करने का उपदेश दिया है। भारत के विश्वप्रसिद्ध गौरव को पुन: जीवित करने की प्रेरणा दी गयी है तथा भारतीय शील एवं शक्ति के सम्बर्धन का सन्देश दिया गया है। इस प्रकार भट्ट जी ने महात्मा गान्धी के माध्यम से समस्त भारतीय जन समुदाय में राष्ट्र की रक्षा के लिए उपदेश दिया है।

श्री सुभाषचरितम्

श्री विश्वनाथ केशवछत्रे द्वारा लिखित इस काव्य में भारतीय स्वतन्त्रता के अनुपम सेनानी नेता जी श्री सुभाषचन्द्रबोस के जीवन चरित का वर्णन किया गया है। इस काव्य का प्रथम प्रकाशन स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद सन् 1963 ई0 में किया गया था। इस काव्य में श्री सुभाषचन्द बोस के पिता श्री जानकीनाथ एवं माता सुश्री प्रभावती का भी राष्ट्रभक्ति के प्रति प्रेम का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार इस काव्य के चरित नायक का सम्पूर्ण जीवन स्वदेश प्रेम एवं स्वराष्ट्र भावना से परि-पूर्ण रहा उसी प्रकार यह काव्य भी उपर्युक्त सभी राष्ट्रिय भावों से परिपूर्ण है। प्रस्तुत काव्य में वर्णन किया गया है कि अपने भारतदेश को विदेशी शासकों के पंजे से मुक्त कराने के लिए श्री सुभाषचन्द बोस जी ने अत्यन्त ही महनीय कार्य किया जो भारतीयस्वतन्त्रता का एक प्रमुख अंग है। केशवछत्रे जी ने राष्ट्रीय

भावनात्मक विषयों का अत्यन्त ही रोचक एवं उत्प्रेरक वर्णन करके पाठकों के हृदय में राष्ट्रिय भावना को उद्वेलित किया है।

श्री सुभाषचन्द बोस स्वराष्ट्र को ब्रिटिश शासन सत्ता से स्वतन्त्र कराने के लिए जर्मनी आदि देशों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए और अपनी आजाद-हिन्द-सेना का गठन करने के लिए ब्रिटिश करागार से मुक्ति और साहस पूर्वक निकलकर भारतछोड़ते हुए पेशावर के मार्ग से आगे अपने एक साथी के साथ पठान वेष धारण कर, राष्ट्रिय स्वतन्त्रता की अगाध भावना को संजोये हुए घने जंगल से चले जा रहे है-

स कंटकाकीर्णपथोऽथ उर्ध्व चण्डातपः कन्दफलाशनम् च ।

शय्या तृणे निर्झरवारिपानं स्वदेशसेवापथ ईदृगेकः ॥[1]

भारतवर्ष का शोषण करने वाले क्रूर ब्रिटिश-साम्राज्य की रक्षा हेतु जर्मन सेना से युद्ध करती हुई अपनी भारतीय सेना के सैनिकों के बीच नेता जी विमान द्वारा पर्चे बरसाते हैं। उनमें रोमहर्षक एवं देशभक्ति से परिपूर्ण उपदेश देते हैं-

पत्रेष्वाह वीरोऽसौ प्रक्षिप्तेषु विमानतः ।

भो बान्धवा इदं युद्धं भारतस्य न सम्मतम् ॥[2]

---

1. श्रीसुभाष चरितम् 7/47

2. श्रीसुभाष चरितम् 8/2

अपने देश को अंग्रेजी शासन सत्ता से मुक्ति दिलाने के लिए महान क्रान्तिकारी नेता श्री रासबिहारी बोस के आह्वाहन पर श्री सुभाषचन्द बोस जापान पहुँचते हैं, वहाँ से आकाशवाणी टोकियों द्वारा अपने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अब ब्रिटिश शासन के सूर्य का अस्त काल निकट आ गया है विशेषरूप से अपने भारतदेश में डूबने वाला ही है। अत: समस्त भारतवासी स्वतन्त्र राज्य हेतु जागउठे और मैं ब्रह्मा के रास्ते से अपनी आजाद हिन्द फौज लेकर पहुँच रहा हूँ। श्री सुभाषचन्द्र ने कहा कि लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का यह वाक्य कि "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" प्रत्येक भारतीय की प्रत्येक साँस में उच्चरित होना चाहिए।

इस प्रकार नेता जी श्री सुभाषचन्द बोस के अनेक ओजस्वी एवं राष्ट्र-भक्ति भावना से परिपूर्ण भाषण के प्रसारण से भारतीय क्षेत्र में सब ओर देश प्रेम की आग प्रज्वलित हो उठी, सब ओर आजादी के गीत गाएँ जाने लगे, "दिल्ली चलो" का नारा सर्वत्र गूँज उठा। प्रमाणिका छन्द में निबद्ध नेता जी की आजाद हिन्द सेना का संचालन गीत भी भारतीयों में राष्ट्रिय भावना को जागरित करता है। आजाद हिन्द फौज द्वारा गाये गये कतिपय गीत अधोलिखित है-

पदे-पदे चलाग्रतो मुदा च गायगीतिकाम् ।
जनेर्मुवस्तु जीवनमु, तदर्थमर्पतां त्वया ।।
प्रयाहि हिन्दकेसरिन् विभेहि मान्तकात् क्षमम्।
तथोत्पत त्वमक्रे यथोन्नमेन्तुं जन्मभू: ।।[1]

---

1. श्री सुभाषचरितम् 9/54 प्रयाणगीत

भारतशतकम्

इस काव्य की रचना आचार्य श्री महादेव पाण्डेय जी द्वारा की गयी है। इस काव्य कृति में पाण्डेय जी ने देश की परतन्त्रता के कष्टों एवं अपमानों का वर्णन किया है। परतन्त्रता से मुक्ति एवं स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु भारतीय वीर सपूतों द्वारा किये जाने वाले अनवरत अदम्य साहस सम्पन्न कार्यों की प्रशंसा करके भारतीयों को हृदय से अपने राष्ट्र के लिए तन,मन,धन को समर्पित करने के लिए प्रोत्साहित किया है ।

स्वराज्यविजयम्

बीस सर्गों वाले इस काव्य के प्रणेता महाकवि द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्तण्ड है। इस काव्य का सर्व प्रथम प्रकाशन सन् 1971 ई0 में हुआ। नाम से ही प्रतीत होता है कि यह काव्य पूर्णतया राष्ट्रिय है। इस काव्य में भारत भूमि के उत्तर दिशा में विद्यमान हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर एवं मध्य में सुशोभित विन्ध्य पर्वत का बड़ा ही मनोरञ्जक वर्णन किया गया है। कवि महोदय ने भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु जनजागरण को भी भारत देश के पुण्य विशेष का ही परिणाम माना है। ऊँच-नीच के पारस्परिक भेद भाव का त्यागकर और एकता के सूत्र में बंधकर अपने राष्ट्र के स्वातन्त्र्य की पताका को सबसे ऊँचा किये रखने का हम सभी भारतीयों को प्रेरणा प्रदान करता है।[1]

---

1. स्वराज्यविजयम् 6/30

विद्यामार्तण्ड जी ने प्रस्तुत काव्य में वर्णन किया है कि स्वराज्य प्राप्ति हेतु भारतवासियों के हृदय में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम, दासता के प्रति घृणा एवं पारस्परिक एकता की भावना का होना अत्यन्त ही आवश्यक है।[1]

अपनी भारत भूमि से विदेशियों की शासन सत्ता को उखाड़ फेंकने तथा स्वराज्य की स्थापना करने के लिए भारतीय नेताओं द्वारा किये गये अनवरत प्रयत्नों का पूर्णरूप से वर्णन किया गया है एवं असंख्य भारतीय नरनारियों के प्रयत्नों की प्रशंसा की गयी है। इसी प्रसंग में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को अद्भुत शौर्य-युक्त देशभक्ति का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया गया है। लेखक ने इस काव्य कृति में भारतीय वीर सपूतों द्वारा किये गये राष्ट्र कल्याण परक तथा राष्ट्रिय भावनात्मक कार्यों का वर्णन कर स्वयं की आस्था को राष्ट्र के प्रति व्यक्त किया है। इस प्रकार यह काव्यनि:सन्देश ही राष्ट्रिय भावना से परिपूर्ण है।

जवाहरतरंगिणी

डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा रचित प्रस्तुत काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन् सन् 1955 ई0 में किया गया है। प्रस्तुत काव्य कृति में डा0 वर्णेकर जी ने स्वतन्त्रभारतवर्ष के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू के व्यक्तिगत गुणों का उल्लेख किया है। कवि ने उन्हें जनता की शक्ति एवं विभूति बताया है। राष्ट्रभक्त होनें

- -

1. स्वराज्य विजयम् 6/8

जाता है। इसका कारण यह है कि रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों की दासता से भारत-देश को मुक्त कराने के लिए प्राणों की बाजी लगाकर समर यज्ञ में भाग लिया था। रानी द्वारा किये गये भीषण युद्ध की कथा को साधारण रूप में भी सुनकर भारतीय युवा-युवतियों में देश भक्ति की भावना बलवती हो उठती है, जिसके फलस्वरूप भारतीयों के शरीर में विद्यमान रुधिर में राष्ट्राभिमान की सुरभित उष्मा अभि-व्यक्त हो उठती है। झाँसी की रानी ने छत्रपति-शिवाजी एवं उनकी माता जीजा-बाई तथा अन्य देश भक्त महिलाओं के राष्ट्र भक्ति परक कार्य-कलापों से प्रेरणा प्राप्त कर भारत के अवशेष उद्धार कार्य को स्वयं ही पूराकरने का संकल्प लिया है। कवि ने प्रस्तुत काव्य में वर्णन किया है कि एक बार घुड़दौड़ की प्रतियोगिता में गिर जाने के कारण पीड़ा हत नाना पेशवा को सान्त्वना देने के प्रसंग में भी रानी लक्ष्मीबाई ने कहा कि भारत भूमि की मान मर्यादा की रक्षा हेतु भविष्य में अंग्रेजों के साथ होने वाले युद्ध में इससे भी अधिक चोटे लग सकती हैं तो क्या तुम उस समय भी वीर भाव का परित्यागकर इसी तरह कायर बने रहोगे। तुम्हें तो देश को पराधीनता से मुक्ति दिलानी है एवं स्वाधीनता हेतु नई जागृति लानी है। कवि ने रानी के प्रयत्नों का वर्णन करते हुए कहा है कि अपने देश की रक्षा के लिए विदेशी अंग्रेज शासकों की सेना के साथ चल रहे युद्ध के दिनों में रानी के ही प्रयत्नों से झाँसी की सेना तथा प्रजा में स्वराष्ट्र अभिमान की भावना जाग उठी थी। वे हार मानकर अपनी माँ के दूध को लज्जित नहीं होने देना चाहते थे।

के साथ उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय भावना से प्रेरित बताते हुए विश्व शान्ति का जनक बताया है। इन्हें शिवाजी जैसे राष्ट्रभक्त वीर पुरुष का भक्त कहा है।

कवि ने अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्र को अखण्डित बनाने तथा विश्व में सुख-शान्ति का प्रसार करने के लिए पं० नेहरू जी को राष्ट्रहित भावना को ध्यान में रखकर प्रस्तुत कृति के माध्यम से पाठक गण में राष्ट्र के प्रति संचार का कार्य किया है।

क्रान्तियुद्धम्

सन् 1957 ई0 में प्रकाशित प्रस्तुत कृति के प्रणेता वासुदेव शास्त्री वागेवाडीकर हैं। इस काव्य कृति में 1857 ई0 में हुए भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की कथा का वर्णन किया गया है। यह भारतीय स्वातन्त्र्य हेतु प्रथम समर युद्ध था जिसकी ज्वाला किसी स्थान विशेष पर नहीं बल्कि समूचे भारत में फैल गयी थी। अपने देश को अंग्रेजों को दासता से मुक्त कराने वाले भारतीय वीर सपूतों द्वारा प्रारम्भ किये गये स्वातन्त्र्य समर रूपी यज्ञ में पराक्रम स्वरूप अपने शरीर की तिलाञ्जलि देने वाले तात्यातोपे, नानासाहब, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, आदि देशभक्त भारतीय वीर योद्धाओं की शौर्य कथा का वर्णनकर भारतीय जन समूहों में राष्ट्रिय भावना का उत्प्रेरक उपदेश दिया गया है।

झाँसीश्वरीचरितम्

बाईस सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के रचयिता श्री सुबोध चन्द पन्त हैं। इस काव्य का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् 1955 ई0 में किया गया था। श्री पन्त जी ने इस काव्य कृति में विश्वविख्यात वीरांगना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई केजीवन चरित का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम भारत के इतिहास में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में बड़े गर्व एवं सम्मान से लिया

कवि ने अपने काव्य में एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जो भारतीयों के रोंगटे खड़े कर देती है। घटना यह है कि कुख्यातनामा दुल्हाजू ने अंग्रेजो से मिलकर रानी के साथ विश्वासघात कर उनकी हत्याकर दी। इस घटना के परिणाम स्वरूप भारतमाता को पराधीनता में 90 वर्ष की वृद्धि हो गयी । रानी लक्ष्मीबाई ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने भारतदेश,भूमि देशवासियों आदि को बड़ी ही भावुकता से याद किया था। कवि ने लक्ष्मीबाई के माध्यम से भारत के कण-कण की वन्दना की एवं उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं। कवि ने भारत देश के मान सम्मान, सर्वतन्त्र स्वातन्त्र्य की कामना की है,कवि द्वारा प्रस्तुत काव्य कृति को पढ़कर पाठक मन में राष्ट्रिय भावना का उद्गार हो उठता है।

भारत सन्देश

मेघदूत की शैली पर लिखा गया यह एक संदेश काव्य है। इस काव्य के रचयिता शिवप्रसाद भारद्वाज हैं। प्रस्तुत काव्य में भारद्वाज जी ने समस्त संसार के राष्ट्रों के लिए भारत राष्ट्र का शान्ति संदेश वर्णित किया है। कवि ने प्रस्तुत कृति में लिखा है कि किसी भी राष्ट्र के व्यक्तियों की राष्ट्रिय भावना तभी लोक-प्रिय हो सकती है जब उसमें विश्वमंगलकामना का भी महत्त्व उतना ही हो जितना कि स्वराष्ट्र मंगल कामना का। भारद्वाज जी ने अपने इस काव्य कृति में भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सन्देश को प्रसारित करने के लिए एक अत्यन्त ही मनोहर कल्पना प्रस्तुत की है। युद्ध की विभीषिका से त्रस्त विश्व के अनेक अशान्तराष्ट्र अपनी राष्ट्रिय शक्ति की खोज के लिए अपने-अपने प्रतिनिधियों को भारत भेजते हैं। इस प्रकार कवि ने इस कृति के माध्यम से भारतवर्ष की शान्ति वादी विचार धारा से सर्वजन को अवगत कराया है।

वीरोत्साहवर्धनम्

श्री सुरेश चन्द त्रिपाठी जी द्वारा रचित "वीरोत्साहवर्धनम्" नामक काव्य का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1962 ई0 में किया गया था। त्रिपाठी जी ने इस काव्य के माध्यम से भारतवर्ष और भारतीय वीर सैनिकों की विजय के प्रति अना अगाध उत्साह प्रकट किया है। कवि की दृष्टि में अपनी मातृभूमि की रक्षा न करने वाले मनुष्य व्यर्थ है एवं पृथ्वी पर भार के समान है।

त्रिपाठी जी ने अपने राष्ट्र की रक्षा हेतु अनवरत प्रयासरत सैनिकों को आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसम्पन्न करने की दृष्टि से अखण्ड भारत के नर-नारियों द्वारा अहमहमिकया किये गये स्वर्णाभरणों के दान की प्रशंसा करके भारतीयों की अनेकता में एकता की एवं राष्ट्रिय भावना को अभिव्यक्त किया है । कवि ने चीनी आक्रमणकारी सैनिकों के प्रति भारतीय सैनिकों द्वारा किये गये प्रतिरोध स्वरूप कार्यों का जो वर्णन किया है, वह भारतीय जनता में राष्ट्रियता के भाव को उद्दीप्त करता है। इस प्रकार यह काव्य कृति भारतीय जनता में राष्ट्रिय भावना का प्रचार एवं प्रसार करने की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

भगतसिंहचरितामृतम्

इस काव्य के रचयिता पं0 श्री चुन्नीलाल सूदन हैं। इस काव्य में भगतसिंह द्वारा किये गये कार्य कलापों का वर्णन किया गया है। इस काव्य में राष्ट्र एवं राष्ट्रिय-स्वतन्त्रता के लिए महनीय उदात्त भावना को प्रकट किया गया है। देश को दासता की बेड़ियों में बाँधने वाले अंग्रेज शासकों के प्रति पदे-पदे तीव्र आक्रोश दिखाया गया है। शिशुओं को लोरी सुनाते समय भारतीय माताओं

द्वारा देश के प्रति अनुराग , राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रिय-स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया गया है। मातृभूमि के सम्मान की रक्षा हेतु स्वआत्मना प्रयत्न करने के भाव को जागरित किया गया है अपने ही राष्ट्र में पुनः जन्म लेने की इच्छा प्रकट की गयी है। अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए प्राणों की भी चिन्ता न कर आत्मबलि देने वाले भारतीय वीर सपूतों के प्रति अतुलनीय श्रद्धाभाव को प्रदर्शित किया गया है। ऐसे ही वीर सपूतों को राष्ट्र का प्रतीक माना गया है। भारत की स्वतन्त्रता के लिए शहीद हुए वीर सैनिकों के रक्त से रंजित धूल को गंगा जल के समान पवित्र मानकर मस्तक पर लगाया गया है। ऐसे ही वीर सपूतों के माता-पिता को धन्य माना गया है। जिसके फल स्वरूप उसके त्याग से सम्पूर्ण देश में राष्ट्रिय चेतना झंझावात की तरह फैल गयी।

श्री भक्त-सिंहचरितम्

सात सर्गों में निबद्ध प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता आचार्य स्वयं,प्रकाश शर्मा है। इन्होंने भी अपने काव्य का नायक श्री भगत सिंह को ही बनाया है। इस काव्य में राष्ट्रिय भावना का प्रवाह सर्वत्र ही दिखाई पड़ता है। आचार्य स्वयंप्रकाश शर्मा जी ने प्रस्तुत कृति में अपने देश को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त कराने के लिए अपने प्राणों की चिन्ता न करने वाले भारतीय वीर सपूतों के कार्य-कलापों का गान करके अपनी लेखनी को पुण्य शालिनी बनाने की इच्छा प्रकट की है।[1]

---

1. श्री भक्त सिंह चरितम् 1/3

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए महात्मा गाँधी द्वारा चलाये जा रहे असहयोग आन्दोलन में श्री भगत सिंह सक्रिय होकर सहयोग देते हैं, किन्तु महात्मा गाँधी द्वारा असहयोग आन्दोलन को त्याग दिये जाने पर वे शान्ति मार्ग का त्याग कर क्रान्ति मार्ग का अनुसरण करते हैं। श्री भगतसिंह, श्री चन्द्रशेखर आजाद एवं राजगुरू के सहयोग से लालालाजपत राय के हत्यारे सैण्डरस को मारकर अंग्रेज शासकों को हिला देते हैं तथा भारतीयों में स्वाभिमान एवं स्वराष्ट्र के प्रति अभिमान की भावना को जागरित कर देते हैं।[1]

भगतसिंह ने समय-समय पर उद्दाम देश भक्ति परक जो गीत गाये हैं उनको शर्मा जी ने संस्कृत भाषा का रूप प्रदान कर निम्न रूप में निबद्ध किया है-

विक्रीय शीर्षं स्वकरैः सहर्षमाक्रेतुकामा निजदेशमानम् ।
स्पर्धेव पुष्टास्त्यसिबीर्यमद्ये पश्याम कं संवृणुते जयश्रीः।।[2]

भावार्थ -

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है ।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है ।।[2]

एक अन्य गीत कवि ने प्रस्तुत किया है -

हुतात्मराज्ञां चितिकासमक्षं प्रत्येक वर्षं भवितोत्सवैकम् ।
इदं हि तेषां स्मृतिचिन्हमेव तथैव ते सर्वजनैःस्मृताः स्युः।।[3]

भावार्थ -

शहीदों की चिताओं पर लगें ये हर बरस मेले ।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।[3]

- -

1. श्री भक्त सिंहचरितम् 3/1-29
2. श्री भक्तसिंहचरितम् 5/25
3. श्री भक्तसिंहचरितम् 5/27

अमर शहीद भगतसिंह के देशप्रेम से परिपूरित कतिपय गीतों की ध्वनि तरंगों को सुनकर कौन ऐसा भारतीय होगा जिसमें राष्ट्रियता के भाव जागरित न हो जाय। भगतसिंह ने अपने भारतीय स्वजनों को कारागार से अपना सन्देश भेजा। इन्होंने अपने दो अन्य साथियों राजगुरू एवं सुखदेव के साथ फाँसी के तख्ते पर भी "इन्क्लाब जिन्दाबाद एवं साम्राज्यवाद मुर्दाबाद" के बुलन्द भरी आवाज से नारे लगा कर फाँसी के फन्दे को चूमकर झूल गये और वीरगति को प्राप्त हो गये। इस प्रकार भगतसिंह द्वारा स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता हेतु किये गये कृत्यों को भारतीय इतिहास में सदैव ही स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा। ऐसे ही भारतीय वीर सपूतों को सदैव ही याद किया जाता है।

0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड- 4

राष्ट्रभक्तिपरक नाटकों की परम्परा

संस्कृत साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रभक्ति परक नाटकों का स्वतन्त्रता प्राप्ति काल में विशेष योगदान रहा है। जहाँ उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के समय राष्ट्र नेता अपने भारत देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्राणाहुति देने को तत्पर थे, वहीं कविगण अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय जन मानस में प्रेरणा का स्रोत भर रहे थे, जिससे उत्साहित होकर जन-जन ने राष्ट्र रक्षा हेतु स्वयं को समर्पित किया। इसकाल में संस्कृत भाषा में अनेक नाटकों कासर्जन कियागयाहै जो सभी किसी न किसी रूप में राष्ट्रहित की भावना को जागरित करते हैं राष्ट्रभक्ति परक कतिपय संस्कृत नाटक अधोलिखित है-

वीरप्रतापनाटकम्

श्री पं0 मथुरा प्रसाद दीक्षित जी द्वारा रचित "वीरप्रतापनाटकम्" नामक नाटक का प्रणयन् सन् 1935 ई0 में एवं प्रकाशन सन् 1965ई0हुआ। इस नाटक में भारतीय गौरव के महान उपासक मेवाड़नरेश महाराणा प्रतापसिंह की तत्कालीन मुगलसम्राट् अकबर के साथ हुए घोर संघर्ष की शौर्य कथा का वर्णन किया गया है।

मेवाड़ाधीश महाराणाप्रतापसिंह द्वारा स्वदेश के सम्मान एवं स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मुगलसम्राट् अकबर के साथ अनवरत समर यज्ञ की दीक्षा लेकर भीषण संकटों के समुद्र को अपने दुर्दमनीय साहस, धैर्य, शौर्य एवं चातुर्य आदि से सफलता प्राप्त कर लेना ही इस नाटक की मुख्या कथावस्तु है। श्री दीक्षित जी ने इस नाटक के

माध्यम से अपने देश के भावी वीर सपूतों को स्वराष्ट्र परक आत्मगौरव,साहस, सहिष्णुता आदि गुणों के विकास हेतु उत्तेजित किया है। स्वदेश को विदेशीसत्ता के पाश से छुड़ाने के लिए महनीय प्रयत्न किये गये हैं। देश की स्वतन्त्रता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। जो राजशासक स्वराष्ट्र को रक्षा नकर सका उसकी सदैव निन्दा को गयी है। स्वराष्ट्र को स्वतन्त्रता को रक्षा के लिए अपने शरीर में खून को अन्तिम बूँद तक संघर्ष रत रहने की प्रतिज्ञा को गयी है। देशद्रोही अपने सगे सम्बन्धियों के साथ मिलबैठकर भोजन करना भी देश को मान मर्यादा एवं स्वाभिमान के प्रतिकूल माना गया है।

प्रस्तुत नाटक में आर्यों (भारतीयों) एवं आर्यदेश (भारतदेश) की रक्षा के लिए साहसपूर्वक क्रियाशील रहने का व्रत लिया गया है, एवं 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' का उपदेश दिया गया है। दीक्षित जी ने प्रस्तुतनाटक में भारतीय नारी के सतीत्व, सम्मान एवं शौर्य की प्रशंसा करके उनके सम्मान एवं स्वाभिमान को प्रदर्शित किया है, जो अन्य देश की अबलाओं के लिए असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य ही है।

दीक्षित जी ने उस समय का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है- जब राणाप्रतापसिंह दुर्भाग्य वश हल्दीघाटी की लड़ाई में पराजय को प्राप्त होते हुए भी, स्वदेश की स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए ऊँचे-ऊँचे पर्वतों एवं घने जंगलों में सपरिवार रहकर क्षुधा और पिपासा की चिन्ता न कर दिन बिताये हैं। दीक्षित जी ने मानसिंह एवं समर सिंह जैसे देश-द्रोही भारतीय नरेशों के प्रति घृणा एवं निन्दा के भाव जागरित किये हैं एवं स्वदेशभक्त, देश रक्षक राष्ट्रउद्धारक और

राष्ट्रप्रेमी महाराणाप्रताप सिंह, रामगुरू भामागुप्त, झालामानसिंह आदि भारतीय वीर सपूतों के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किये हैं। इस प्रकार दीक्षित जी ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अनवरत तत्पर रहने का उपदेश दिया है।

वीरपृथ्वीराजविजय नाटकम्

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित जी द्वारा रचित इस नाटक का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1960 ई0 में किया गया था। इस नाटक में भी दीक्षित जी ने वीरप्रतापविजयम्" नाटक की तरह स्वराष्ट्र रक्षा हेतु किये गये प्रयत्नों का वर्णन किया है।

श्री दीक्षित जी ने प्रस्तुत नाटक में अन्तिम हिन्दू दिल्ली-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के जीवन चरित का वर्णन किया है। यह नाटक दु:खान्त होते हुए भी भारतीयता, हिन्दूधर्म और देश प्रेम की ज्योति जगाने एवं कन्नौज नरेश जयचन्द एवं मोदूसाह जैसे देश द्रोहियों के प्रति घृणा के भाव को उजागर करने में अत्यन्त ही सहयोगी सिद्ध हुआ है। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान ने अपने देश की मान मर्यादा की रक्षा-सुरक्षा हेतु यवन आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी से जिस वीरता एवं स्वाभिमान के साथ मुकाबला किया वह सदैव प्रशंसनीय रहेगा। पृथ्वीराज चौहान के बन्दी बनाए जाने का समाचार प्राप्त कर संयोगिता आदि क्षत्राणियों द्वारा आग की ज्वालाओं में आत्माहुति किये जाने का दृश्य भारतीय जन में राष्ट्रप्रीति भावना को जागरित कर देता है।

दीक्षित जी ने एक अन्य स्थान पर बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है, मुहम्मद गोरी द्वारा कैद में अन्धे बनाये गये पृथ्वीराज जब चन्द्रवरदाई के कौशल से आयोजित प्रदर्शन में अपने शब्द भेदी वाण से मुहम्मद गोरी की हत्या कर स्वयं अपने दुखी जीवन का अन्त चन्दबरदाई द्वारा करा लेते हैं और चन्दवर-दाई को इच्छानुसार उसका भी अन्त कर देते हैं। इस प्रकार भारत और भारतीयता की शान को रक्षा हेतु मर मिटने वाले दोनों ही अमर शहीदों के प्रति आदर की भावना भर जाती है एवं राष्ट्रिय भावना उद्दीप्त हो उठती है।

शिवाजीचरितम्

श्री हरिदास सिद्धान्त वागीश द्वारा रचित {शिवाजी चरितम्} नाटक का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1954 ई0 में किया गया था। नाटककार ने इस नाटककी सर्जना कर राष्ट्र को रक्षा हेतु भारतीय जन को उपदेश देने का कार्य किया है। प्रस्तुत कृति में छत्रपति शिवाजी के राजतिलकोपरान्त जीवन चरित का वर्णन किया गया है। नाटककार ने शिवाजी निष्ठ राष्ट्रिय भावना के सम्वादों, द्वयोंतथा कार्य कलापों का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है। वागीश जी ने प्रस्तुत नाटक में लिखा है कि शिवाजी ने अपनी माता जीजाबाई से प्रेरणा प्राप्त कर मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कार्यों को अध्ययन से कहीं अधिक आवश्यक माना है। वे अध्ययन - - - - - - - - - - कार्य मध्य में ही छोड़कर मातृभूमि की समृद्धि एवं मान मर्यादा की आजीवन रक्षा करने के लिए

व्रत लेते हैं, एवं एक दल तैयार करते हैं।[1]

शिवाजी बीजापुर के नवाब नादिरशाह को वीरता एवं चातुर्य से पराजित करते हैं एवं अफजल खाँ को 'शठेशाठ्यं समाचरेत'का अनुसरण कर मार डालते है।[2] शिवाजी का दमनकरने हेतु मुगलसम्राट् औरंगजेब द्वाराप्रेषित शाइस्ता खाँ पर स्वयं शिवाजी अपनी कूटनीति एवं वीरता से विजय प्राप्त कर लेते हैं। वे मुगल - सम्राट् औरंगजेब के प्रतिनिधि स्वरूप आये हुए सेनापति जयसिंह से सन्धि कर धोखे से दिल्ली में जाकर कैद में फँस जाते हैं किन्तु अपने चातुर्य एवं शौर्य से मिठाई के टोकरे में बैठकर निकल आते हैं। मुगलसेना, शिवाजी के राज्य पर आक्रमण हेतु आती है किन्तु शिवाजी उसे बुरी तरह पराजित कर देते हैं। अन्तत: शिवाजी एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल होते हैं।

भारतविजयनाटकम्

पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित जी द्वारा "भारतविजयनाटकम्" नाटक का लेखन कार्य 1937 ई0 एवं प्रथम प्रकाशन सन् 1948 ई0 किया गया है। दीक्षित जी ने भारतवर्ष में अंग्रेज कैसे आये, भारतवर्ष उनके अधीन किस प्रकार हुआ, भारतीयों में उनके विरूद्ध किस प्रकार भावना का जागरण हुआ, अंग्रेजों का भारतवर्ष से किस प्रकार पलायन हुआ आदि घटनाओं का प्रस्तुत नाटक में बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है। दीक्षित जी ने इस नाटक की सर्जना स्वतन्त्रता प्राप्ति के दस वर्ष पहले ही कर ली थी। सौभाग्यवश दीक्षित जी की यह कल्पना साकार सिद्ध हुई।प्रस्तुत नाटक

- -

1· शिवाजी चरितम् प्रथम अंक

2· शिवाजी चरितम् चतुर्थ अंक

के अध्ययन से ऐसे अनेक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं जहाँ पर हमारी राष्ट्रिय भावना तीव्र हो जाती है। कतिपय उदाहरण अधोलिखित हैं।

सर्व प्रथम अंग्रेजी व्यापारियों और भारतीय जुलाओं के प्रसंग को प्रस्तुत करते हैं। इसमें मुगल सम्राट की पुत्री की चिकित्सा करके अंग्रेज व्यापारी पुरस्कार स्वरूप माँग करता है कि वस्त्रों का क्रय विक्रय केवल अंग्रेज करे और राजकर भी न लिया जाय। मुगलसम्राट स्वीकृति दे देता है। स्वीकृति प्राप्त करने बाद अंग्रेज व्यापारी भारतीय जुलाहों की जीविका के पीछे पड़ जाते हैं, उन्हीं के द्वारा बनाए गये वस्त्रों को जनता के बीच बेचने नहीं देते हैं और उनके द्वारा बनाये गये बहुमूल्य वस्त्रों को अल्पमूल्य पर स्वयं बलपूर्वक खरीदते हैं जब वे इसका विरोध करते हैं तो उन्हें कोड़ो से पीटा जाता है। वस्त्र व्यवसाय के त्याग देने के तथ्य को सिद्ध करने के लिए अंग्रेजों द्वारा भारतीय जुलाओं के अंगूठे उन्ही से कटवा लिया जाता है।

ऐन्द्रजालिक वेष धारी शिवराम-नामक गुप्तचर और बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला का संवाद भी इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। शिवराम के मुख से अंग्रेजों के भारत विरोधी अनेक कार्यकलाप सुनने को मिलते हैं जो भारतीयों के शान्त रुधिर को उष्ण बना देते हैं।

बंगाल के सामन्त विशेष नन्दकुमार जो अंग्रेजों के कपट से परिचित होने पर भारत वर्ष के हिमायती बनने लगे थे, इन पर चलाया गया झूठा मुकदमा एवं उसे दिया गया अनुचित प्राण दण्ड भी प्रत्येक भारतीय के हृदय में स्वराष्ट्र के प्रति स्वातन्त्र्य राज्य की भावना जागरित करता है।

अवध के दिवंगत नबाव की बेगम को डाकुओं के समान अंग्रेजों द्वारा लुटते और पीटते देख भला कौन ऐसा भारतीय होगा जो अपने भारतदेश की मान-मर्यादा को मिटता हुआ मान कर उसकी रक्षा सुरक्षा के लिए व्रत नहीं लेगा। इस प्रकार अनेक प्रसंगों को उद्धृत कर दीक्षित जी ने भारतीय नर-नारियों को स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए प्रेरित किया है।

मेवाड़प्रतापम्

"मेवाड़प्रतापम्" नाटक की सर्जना श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश द्वारा की गयी है। इस नाटक का प्रथम प्रकाशन सन् 1947 ई0 में किया गया था। श्री वागीश जी ने प्रस्तुत नाटक में मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप सिंह के मुगल सम्राट् अकबर के साथ हुए संघर्ष की शौर्यकथा का प्रणयन किया है।

भारतीय संस्कृति को विदेशी आक्रामक यवनों से अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए महाराणा प्रतापसिंह एवं उनके सभी साथियों ने सादा भोजन करने एवं विलास प्रिय जीवन जीने को त्यागकर चटाई पर सोने कोप्रतिज्ञा की है, और भारतीय जन को स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता हेतु प्राणों तक का भी बलिदान करने की प्रेरणा दी है। श्री वागीश जी ने महाराणा प्रतापसिंह के मित्र एवं अकबर के दरबारी कवि पृथ्वीराज की पत्नी कमला देवी के माध्यम से इस कथावस्तु पर गहरा दुःख व्यक्त किया है कि भारतीय राजपूत नरेशों ने अपनी शौर्यमयी कीर्ति और स्वाभिमान का त्यागकर विदेशी यवनों के दास बन गये हैं। इस अवसर पर कमलादेवी ने महाराणाप्रताप की हृदय से प्रशंसा की है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता की रक्षा हेतु राणाप्रताप सिंह ने अकबर जैसे विशाल सैन्य समूह से सुसम्पन्न मुगल सम्राट् से अल्प सैन्यशक्ति होने के बावजूद भी निर्भीकता एवं वीरता से प्रतिरोध किया, एवं स्वयं चेतक पर सवार होकर मुगलसम्राट् की विशाल सेना को पराजित किया। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में असफलता प्राप्त होने पर भी प्रतापसिंह अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सपरिवार घने जंगलों में भटकते हैं, और घास की रोटियाँ खाकर जीवन व्यतीत करते हैं, फिर भी स्वदेश अभिमान का त्याग नहीं करते हैं। एक दिन जंगली बिल्ली द्वारा घास की भी रोटी छीन लिये जाने पर जब उनकी अल्पवयस्का पुत्री क्षुधा से पीड़ित होकर रोने लगती है तो उनका धैर्य टूट जाता है और अकबर के पास सन्धि पत्र भेज देते हैं, किन्तु अपने मित्र एवं अकबर के दरबारी कवि पृथ्वीराज द्वारा प्रोत्साहन पाकरउनका स्वदेश अभिमान पुनः जागरित हो जाता है - और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सक्रिय हो जाते हैं। अन्ततः राणा प्रताप सिंह को सफलता प्राप्त होती है। इस प्रकार नाटककार ने राणाप्रताप सिंह के माध्यम से भारतीय जन-जन को संदेश दिया है।

अमरमंगलम्

श्री पंचाननतर्करत्न द्वारा लिखित इस नाटक का प्रथम प्रकाशन सन् 1937 ई0 में किया गया। इस नाटक में इतिहास प्रसिद्ध मेवाड़ नरेश महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र अमर सिंह की चित्तौड़ विजय विषयक देशभक्ति पूर्ण शौर्य कथा का वर्णन किया गया है। इस नाटक का उद्देश्य है प्रत्येक भारतीय में राष्ट्रिय भावना

की अभिव्यक्ति का होना। नाटकार ने नाटक के अन्त में भरतवाक्यों द्वारा संपूर्ण भारतवासियों को उपदेश दिया है कि वे अपने भारतीय धर्म को अपनायें, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष को भुलाकर प्रेम को बढ़ाये, भेद भाव का त्याग कर मातृभूमि को माता की तरह पूजें और अपने राष्ट्र रक्षक राजा के प्रति निष्ठा भाव रखें।

छत्रपति श्रीशिवराज:

इस नाटक का प्रणयन श्री श्रीरामवेलणकर द्वारा किया गया है। इस नाटक का सर्व प्रथम प्रकाशन् सन् 1974 ई0 में "भारतीय विद्याभवन" बम्बई से किया गया।

श्री वेलणकर जी ने इस नाटक में शिवाजी के राष्ट्रिय भावों एवं कार्य कलापों का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है। छत्रपति शिवाजी विदेशी मुगल शासकों की सत्ता को समाप्त करने के लिए संकल्प लेकर सतत प्रयत्न करते हैं। वे स्वराष्ट्र वासियों में राष्ट्र के प्रति भाव का बीजारोपण कर उसे जिस अदम्य साहस और उत्साह के साथ सींचित किये हैं, इस प्रकार मर्म स्पर्शी वर्णन कर श्री वेलणकर जी ने भारतीयों के रुधिर में राष्ट्रियता के भाव को प्रवाहित किया है।

गान्धीविजयनाटकम्

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित जी ने प्रस्तुत नाटक का नायक राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी को बनाया है। दीक्षित जी ने प्रस्तुत नाटक में ब्रिटिश शासकों की भारत और भारतीय जनता के प्रति बुरी नीति ॠ एवं उसके निराकरण हेतु तिलक, गान्धी, मालवीय आदि स्वतन्त्रता प्रेमी राजनयिकों के अनवरत् प्रयत्नों

का वर्णन किया है। बालगंगाधरतिलक द्वारा थप्पड़ का जबाव पत्थर से देने तक की बात कही गयी है। गान्धी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह को दर्शाया गया है। "जलियाँवालाबाग" हत्याकाण्ड की तीव्र निन्दा की गयी है। अन्ततः देश को विभाजित करके अंग्रेजों की दासता से स्वतन्त्रता प्राप्त की गयी है।

शिवराजाभिषेकम्

डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा रचित इस नाटक का प्रथम प्रकाशन सन् 1974 ई० मे "शारदा गौरवग्रन्थमाला" पूना से किया गया था। डा० वर्णेकर जी ने प्रस्तुत नाटक में परमराष्ट्रभक्त छत्रपतिशिवाजी के राज्याभिषेक महोत्सव का वर्णन किया है। वर्णेकर जी ने नाटक के प्रारम्भ में ही गुरूकुल के विद्यार्थियों द्वारा खेले गये "पूर्वशिवचरितम्" नामक छाया नाटक में राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्र प्रणेता शिवाजी एवं सहयोगियों के स्वराष्ट्राभिमान मूलक शौर्ययुक्त कार्यकलापों का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है जिसे देखकर देश के दर्शकों में राष्ट्रिय भावना की अभिव्यक्ति होने लगती है।[1] स्वातन्त्र्य वीरों द्वारा बन्दिनी बनाई गयी और छत्रपति शिवाजी के पास लायी गयी यवनी के प्रति शिवाजी की भावना को देखकर दर्शकों में अतिमूल्यवती तथा साम्प्रदायिकता से रहित शुद्ध भारतीयता की भावना महनीय स्थान बना लेती है। जो वर्तमान भारत के लिए अत्यन्त आवश्यक है।[2]

- -

1• शिवराजाभिषेकम् – प्रथम अङ्क छायानाटक दृश्य 2-4

2• शिवराजाभिषेकम् – प्रथम अङ्क पंचम दृश्य

वर्णेकर जी ने नाटक के प्रथम दृश्य में लिखा है कि शिवाजी एवं उनके सहयोगी जब भगवान शंकर से प्रार्थना करते हैं कि हम सब ने भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए व्रतलिया है, अतः राष्ट्र रक्षा के लिए हमारे अश्वों में झझावात का वेग भर जायें, भाले भगवान शंकर के त्रिशूल समान हो जाय तथा भारत भूमि पर कोई भारत विरोधी न रह जाय। इस प्रकार के वर्णन से दर्शकों एवं पाठकों के हृदय में शान्त पड़ी राष्ट्रिय भावना तुरन्त ही अँगड़ाई लेकर उद्दीप्त हो उठती है।

छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक महोत्सव में भारत वर्ष के कोने-कोने से आये नर-नारियों का चित्रण भी भारतीय जनों में राष्ट्रनिष्ठा की पूर्ति करता है। इसी प्रकार शिवाजी की माता जीजाबाई द्वारा गाये गये गीत में स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु प्राणों की आहुति देने वाले वीरों को याद दिलाकर एवं उनके प्रति नतमस्तक होने का सन्देश देकर भारतीयों की राष्ट्रिय भावना वल्लरी को बड़ी ही भावुकता से सिंचित किया है। अंग्रेज व्यापारियों को अपने देश में मुद्रा ढालने की अनुमति न देने के प्रसंग में भी वर्णेकर जी ने छत्रपति शिवाजी की अन्तःस्थित राष्ट्रिय-भावना को प्रकाशित करना चाहा है।

हैदराबादविजयम्

"हैदराबादविजयम्" नाटक के प्रणयकर्त्ता श्री नीरपाजे भीमभट्ट ने प्रस्तुत नाटक में स्वतन्त्रभारत वर्ष के केन्द्रीय शासन तथा हैदराबाद के निजाम के मध्य हुए सैन्य संघर्ष का वर्णन किया है। भारत की राजनैतिक सत्ता को त्यागते समय अंग्रेजों ने अपनी कुटिलता से भारत को कई राज्यों में विभक्त कर दिया था

इसका उद्देश्य यह रहा होगा कि प्रत्येक राजा, महाराज,नवाब, निजाम सभी अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलापते रहेंगे और इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता पनप नहीं सकेगी, किन्तु तत्कालीन भारतीय नायकों (श्री राजगोपालाचारी, पं० नेहरू, और सरदार वल्लभभाई पटेल आदि) के राष्ट्र कल्याण परक एवं राष्ट्रिय भावनात्मक प्रयत्नों से सभी राजा, महाराजाओं,नवाबों ने अपने-अपने राज्य को सदैव के लिए भारतीय गणतन्त्र शासन में विलय कर दिया । इस प्रकार भारत वर्ष एक महान सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बन कर विश्व पटल पर उदित हो गया। हैदराबाद के निजाम ने इस विलय का प्रतिरोध किया, सरदार पटेल ने निजाम के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दिया जिसमें निजाम की बुरी तरह पराजय हुई और हैदराबाद को भारतीय शासन में मिला लिया गया है और यह सिद्ध कर दिया गया कि भारत अपनी अखण्डता एवं एकता के लिए पूर्णत: समर्थ है।

नाटककार श्री भट्ट जी ने उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों को बड़ी ही कुशलता से अर्पित किया है। वास्तविक घटनाओं के अनुरूप ही सुनियोजित दृश्यों को प्रस्तुत कर भारतीय पाठकों में राष्ट्रिय भावना को बड़ी तीव्रता के साथ उद्बुद्ध किया है।लेखक को पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत नाटक में अभिव्यक्ति को प्राप्त हुई स्वराष्ट्र भक्ति किं वा स्वराष्ट्र भावना का सभी भारतीय जन स्वागत करेंगे।

वंगीयप्रतापम्

श्री हरिदास सिद्धान्त वागीश द्वारा लिखित "वंगीयप्रतापम्" नाटक का प्रथमप्रकाशन् सन् 1945 ई० में किया गया था। इस नाटक में प्रतापादित्य के शौर्यकथा का चित्रण किया गया है, जिन्होंने विदेशी आक्रान्ता मुगल सम्राट् अकबर के अधीनस्थ मुगलशासक द्वारा बंगाल में किये गये भारतीय विरोधी अत्याचारों का

उन्मूलन किया था एवं मुगलसेनापति मानसिंह को परास्त किया था। श्री वागीश जी ने "मेवाड़प्रतापम्" नाटक की ही भाँति प्रस्तुत नाटक में भी राणाप्रताप सिंह द्वारा किये गये विदेशी आक्रान्ता से प्रतिरोध की शौर्य कथा का वर्णन किया है। इस नाटक में शंकर चक्रवर्ती जैसे देश भक्त नागरिक और प्रतापादित्य जैसे देश-भक्त युवराज द्वारा मिलकर विदेशी आक्रान्ताओं से अपने देश की मुक्ति हेतु प्रतिज्ञा की गयी है। इस में प्रतापादित्य द्वारा बंगाल के नवाब की पराजय को दर्शाया गया है और देशभक्ति एवं देश की प्रतिष्ठा की रक्षा को सर्वोपरि माना गया है। इस प्रकार वागीश जी ने राष्ट्रिय भावना से परिपूर्ण प्रस्तुत नाटक की रचना कर भारतीय जन को राष्ट्रिय भावना हेतु उपदेश दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त राष्ट्रभक्ति परक नाटकों के अतिरिक्त अनेक ऐसे नाटक लिखे गये है जिनके अध्ययन से राष्ट्रियता के भाव जागरित हो उठते है। जिन नाटककारों ने राष्ट्रिय भावनात्मक नाटकों की रचना की वे किसी न किसी रूप में राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना से परिवेष्टित थे जिनको भारतीय जन के समक्ष प्रस्तुत कर अपने अभिव्यक्ति की पूर्ति की।

0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
00000
000
0

खण्ड - 5

राष्ट्रीय नाटकों में प्रयुक्त कथ्य

जिन साहित्यकारों के हृदय में स्वराष्ट्र के प्रति प्रेम होता है,आत्म-गौरव होता है, भक्ति होती है, उत्तरोत्तर उन्नति की इच्छा होती है और राष्ट्र की रक्षा करने के लिए आत्मबलिदान तक करने की प्रबल इच्छा होती है उनके साहित्य में कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकार से राष्ट्रिय -भावना उदित हो उठती है। इस स्थिति का साहित्य पर देश काल की स्थिति का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह सार्वभौम सत्य है कि राष्ट्रिय -भावना का उत्प्रेरक प्रभाव स्वराष्ट्र पर अन्य राष्ट्र द्वारा आक्रमण करने के समय होता है,वह शान्ति के दिनों में नहीं होता है। क्योंकि युद्ध के दिनों में न केवल पूरे राष्ट्र की प्रतिष्ठा बल्कि सुख,समृद्धि भी संकटग्रस्त हो जाती है। अतः सभी लोग राष्ट्रिय-भावना से प्रेरित होकर तन,मन,धन से राष्ट्र या देश की प्रतिष्ठा एवं समृद्धि की प्रतिष्ठा हेतु जुट पड़ते हैं। किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि राष्ट्रिय भावना का प्रेरक तत्त्व केवल युद्ध पर ही निर्भर करता है बल्कि शान्ति के दिनों में भी जीवित रहता है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र में सुख-समृद्धि ,शान्ति, शालीनता आदि का वातावरण विकसित होता रहता है। हमारे कतिपय संस्कृत साहित्यकार भी राष्ट्र की दोनों [युद्धकाल एवं शान्ति काल] दशाओं से राष्ट्र वासियों के हृदय में बसी हुई राष्ट्रिय भावना को अपनी साहित्य सर्जना के माध्यम से प्रकाशित किया करते हैं।

इन संस्कृत -साहित्यकारों को राष्ट्रिय सम्पदा में राष्ट्रिय-भावना की अभिव्यक्ति राष्ट्र प्रेम, भौगोलिक स्थिति ,मातृभाव राष्ट्रसेवा,संस्कृति एवं सभ्यता आदि रूपों में हुआ करती है। वे अपनी नवोन्मेष प्रतिभा द्वारा राष्ट्रिय भावना को आलम्बन देने वाले और उद्दीप्त करने वाले अनेक प्रकार के प्रभावशाली विषयों की उद्भावना कर सकते हैं।

ऐसे ही संस्कृत-साहित्यकारों में प्रकृत कवि श्री मूलशंकर याज्ञिक जी का नाम लिया जाता है जिन्होंने अन्य नाटककारों की भाँति अपने नाटकों के माध्यम से राष्ट्ररक्षा हेतु भारतीय जन-जन में जागृति पैदा की है। याज्ञिक जी ने संस्कृतनाट्यसाहित्य में मुख्यतः तीन ही राष्ट्रिय नाटकों की सर्जना की है,लेकिन उन्होंने जिन भारतीय वीर सपूतों को अपने नाटक का नायक चुना है वे नायक [राणा प्रताप सिंह, पृथ्वीराज चौहान एवं छत्रपति शिवाजी] भारतीय इतिहास में अपनी वीरता के लिए सदैव स्मरणीय हैं। इन्हीं उत्कृष्ट कृतियों के कारण ही श्रीयाज्ञिक जी को बीसवीं शती के कवियों एवं नाटककारों में याद किया जाता है।

श्रीमूलशंकरयाज्ञिक जी 20 शती के गुर्जर प्रदेश एवं संस्कृत नाट्य साहित्य के ऐसे विभूति हैं जिससे हम गर्व से कह सकते हैं कि संस्कृत समृद्ध भाषा एवं उसका साहित्य जीवन्त है। समस्त संस्कृत साहित्य पौराणिक कथाओं पर आधारित काव्य नाटक एवं आख्यायिका से भरा है।कवियों ने इतिहास सम्बद्ध विषयों को अपनी कृति में कम स्थान दिया है। लेकिन जिस प्रकार 10 वीं, 11वीं शती के श्री परिमल पद्मगुप्त ने "नवसाहसाङ्कचरितम्" नामक महाकाव्य की सर्जना कर नयी परम्परा का श्री गणेश किया, उसी प्रकार प्रकृति कवि श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने बीसवीं शती में अपनी ऐतिहासिक नाट्य कृतियों से संस्कृत साहित्य के अभाव की पूर्ति की है।

याज्ञिक जी की संस्कृत साहित्य में तीन नाट्य कृतियाँ निम्नवत् हैं

1. छत्रपति-साम्राज्यम्
2. प्रताप-विजयम्
3. संयोगिता-स्वयंवरम् ।

प्रकृति कवि ने इन नाटकों को उस समय लेखबद्ध किया जब सम्पूर्ण भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु अग्नि में जल रहा था एवं सभी राष्ट्र नायक राष्ट्र की रक्षा हेतु प्रयासरत थे। कवि-गण अपनी लेखनी के माध्यम से उत्साह वर्धन कर रहे थे।

याज्ञिक जी द्वारा रचित राष्ट्रिय नाटकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

1. <u>छत्रपतिसाम्राज्यम्</u>

यह नाटक मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा 1929 ई० में प्रकाशित किया गया था।

प्रस्तुत नाटक में छत्रपति शिवाजी के जीवन कृत्य का वर्णन किया गया है। इस नाटक में प्रारम्भ से अपने देश के प्रति अनुराग की भावना व्यक्त की गयी है।

मुगलसम्राट् औरंगजेब द्वारा किये जा रहे अत्याचारों से मुक्ति हेतु शिवाजी ने स्वतन्त्र-साम्राज्य के लिए जिन उद्यमों का प्रयोग किया उसका बहुत ही रोचक वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत नाटक के प्रारम्भ में ही शिवाजी द्वारा अपने साथियों के साथ विचार विमर्श में अपने देश की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। शिवाजी कहते हैं जिस प्रकार राम,लक्ष्मण,कपि सेना के सहयोग से लंका पर विजय प्राप्त की उसी प्रकार वनवासी मावलों की सहायता से बीजापुर नरेश पर विजय करेंगे।

मुगल सम्राट् द्वारा रौंदे गये भारतीय जनों पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। बीजापुर के सैनिकों द्वारा नेता जी की हत्या एवं उनकी भगिनी का अपहरण सुनकर शिवाजी क्रोधाग्नि मे डूब जाते हैं और कहते हैं कि इस भारत भूमि में जन्म लेने वाले उस क्षत्रिय का जन्म व्यर्थ है जिसने आर्तों की बात सुनकर उनके रक्षार्थ शस्त्र नही उठाया और अनाचारी राजा के प्रति युद्ध की तैयारी न की।

पराधीनता से मुक्ति पाने एवं स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना हेतु शिवा जी संकल्प लेते हैं इस संकल्प हेतु अन्य भारतीय वीर सहयोग देने का वचन देते हैं। शिवाजी यवन आक्रान्ताओं से मुक्ति हेतु भवानी देवी से प्रार्थना करते हैं। शिवाजी की इस देश भक्ति परक प्रार्थना से प्रसन्न होकर भवानी भगवती मार्ग दर्शन कराती है, शिवाजी राष्ट्र रक्षा हेतु असीमित उत्साह से सैन्यसंगठन एकत्र कर अग्रसर होते हैं।

याज्ञिक जी ने नेता जी जैसे वीर सैनिक के मारे जाने का रोम हर्षक दृश्य वर्णित किया है जिसको पढ़कर पाठकगणों में राष्ट्र द्रोहियों के प्रति कटुता की भावना भर जाती है। पुरन्दर दुर्ग का स्वामी अपने दुर्ग की रक्षा हेतु जिस प्रकार सैकड़ों मुगल सैनिकों का वध कर वीरगति को प्राप्त हुआ , किस भारतीय राष्ट्र भक्त को राष्ट्र हेतु उत्प्रेरित नहीं करेगा। इस प्रकार की वीरता को देखकर औरंग-जेब जैसा धर्मान्ध मुगल शासक आश्चर्य में पढ़कर कहता है कि ईश्वर ही ऐसे वीर पैदा कर सकता है।

जयसिंह की बात मानकर शिवाजी औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होते हैं लेकिन वे औरंगजेब द्वारा अपमानित किये जाने पर क्रोधाग्नि में डूब जाते हैं। इसके उपरान्त युक्ति पूर्वक मिठाई के टोकरे में बैठकर भाग निकलने में सफल हो जाते हैं। पुन: वे दुर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं।

याज्ञिक जी ने स्वतन्त्रता संग्राम के लिए समर्पित राष्ट्रभक्ति वीरों के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किया है। प्रस्तुत कृति में स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वनों-दुर्गों आदि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए तन-मन,धन से किये गये समर्पण का आदर्श दर्शाया गया है।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने प्रस्तुतनाटक के माध्यम से भारतीय जन-जन में राष्ट्र रक्षा हेतु संदेश दिया है।

2· प्रतापविजयम्

राष्ट्रिय भावना से परिपूर्ण इस नाटक में स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु मेवाड़ाधिप राणा प्रताप सिंह द्वारा किये गये कृत्यों का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत नाटक का शुभारम्भ मेवाड़नरेश महाराणाप्रतापसिंह एवं मुगल सम्राट् अकबर की अधीनता तले रहने वाले मानसिंह के बीच वार्तालाप से होताहै । मानसिंह, राणाप्रताप सिंह को मुगल सेना में सर्वोच्च पद प्राप्त कर अकबर की अधीनता स्वीकार करने का प्रलोभन देता है, लेकिन प्रताप सिंह कहते हैं कि सूर्य कुल में उत्पन्न राणाप्रताप एवं यवन कुल में उत्पन्न अकबर में मैत्री भाव असम्भव है। इस प्रकार राणा प्रताप सिंह ने अपने राष्ट्र एवं राष्ट्रिय धर्म की मानमर्यादा की रक्षा करने के लिए अकबर जैसे पराक्रमी मुगल बादशाह का प्रतिरोध कर राष्ट्रिय स्वतन्त्रता की रक्षा की।

याज्ञिक जी ने हल्दी घाटी युद्ध का इतना उत्तेजक वर्णन किया है कि पाठक मन को धमनियों में रुधिर गर्म होकर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए उत्तेजना की भावना भर जाती है।

याज्ञिक जी प्रताप सिंह को माध्यम बना कर कहते है कि केवल पेट का पालन करने वाले अपने कार्यो का फल भोगकर समय पर सभी मरते हैं, लेकिन धन्य वही हैं जो राष्ट्र की सेवा में तत्पर रह कर इस धरती पर मरता है, इस प्रकारकेकथनों द्वारा जन-जन में राष्ट्रियता के प्रति भाव जगाये गए हैं। गान्धार विद्रोह में जिस प्रकार नारियों ने चण्डी का रूप धारण कर राष्ट्र की रक्षा की वह सदैव स्मरणीय रहेगा। दूसरे की अधीनता तले सुख से जीने की अपेक्षा, स्वतन्त्र जीवन दु:ख के साथ जीना श्रेयस्कर बतलाया गया है।

राणाप्रताप सिंह हल्दी घाटी कीपराजय के बाद वनों, पर्वतों एवं पहाड़ों पर घूमते हुए वनवासियों कीसहायता से राष्ट्र की रक्षा के लिए कर्तव्यनिष्ठ है। वे लौकिक एवं पारलौकिक सुखों की तिलांजलि देकरराष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए उपदेश दिये है। अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखने वाले जन की प्रशंसा की गयी है- राणाप्रताप सिंह का मित्र एवं अकबर का दरबारी कवि पृथ्वीराज अकबर की अधीनता तले रहकर भी अकबर की यह बातसुनकर कि "राणा प्रताप यवन नरेश की शरण चाहता है" ऐसा कभी नहीं हो सकता। वे कहते है कि अगर ऐसा हुआ तो सूर्य पूर्व से पश्चिम में उगेगा एवं गंगाउल्टी बहेगी, जो कि सत्य सिद्ध होता है।

प्रतापसिंह अन्त समय तक राष्ट्र की रक्षा के लिए मुगल सैनिकों से लड़ते रहते है अन्तत: राणाप्रताप सिंह की विजय होती है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने राष्ट्र के वीरों को राष्ट्र की शान माना है। राष्ट्रविरोधियों के प्रति घृणा के भाव जगाये हैं इस प्रकार की कृतियों की रचना कर याज्ञिक जी ने राष्ट्रिय नाटकोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है।

3. संयोगिता-स्वयंवरम्

यद्यपि कि याज्ञिक जी की यह कृति श्रृंगारिक है, जिसमें अन्तिम हिन्दू-दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान एवं जयचन्द की पुत्री संयोगिता के प्रेम विवाह का वर्णन किया गया है। फिर भी पृथ्वीराज ने अपने राष्ट्र के लिए जिस प्रकार के कृत्य किये हैं, वे राष्ट्रियता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। पृथ्वीराज ने यवन आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी का जिस तरह प्रतिरोध किया वह राष्ट्र की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण कदम था लेकिन जयचन्द ने जिस प्रकार यवन आक्रमण कारी का साथ देकर राष्ट्र द्रोह का परिचय दिया वह हमेशा के लिए घृणा का पात्र बना। इस प्रकारप्रस्तुत नाटक में राष्ट्ररक्षा के प्रति सम्मान एवं राष्ट्र विरोधियों के प्रति घृणा के भाव जगाये हैं।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने राष्ट्र के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए ऐतिहासिकतथ्यों पर आधारित तीनों राष्ट्रिय नाटकों की रचना कर संस्कृत नाटककारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। इन्होंने राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना को भरने हेतु वीर रस का आधान किया है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने 20 वीं शती में ऐतिहासिक नाट्य कृतियों की रचना कर संस्कृत साहित्य के एक विशेष अभाव की पूर्ति की है।

द्वितीयोऽध्याय:

मूलशंकर याज्ञिक का व्यक्तित्वएवं कृतित्व परिचय

अध्याय 2

मूलशंकर याज्ञिक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय

1· जीवन परिचय :- 19 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एव 20 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत के अस्तित्व-संघर्ष का समय था। स्वतन्त्रता की लड़ाई अपनी परिणति को व्यग्रता में उत्कर्ष को प्राप्त थी। बलिदान के इतिहास का यह वह स्वर्णिम समय था जब बालक से वृद्ध तक में अपना जीवन न्यौछावर करने की एक सी व्यग्रता दिखायी पड़ रही थी। सम्पूर्ण भारत में स्वतन्त्रता संग्राम का अथाह सागर हिलोरें ले रहा था, इन लहरों से आन्दोलित साहित्यकार उन्हें उत्तुङ्ग बनाने में अपना सक्रिय योगदान दे रहे थे। ऐसे समय में अन्य सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत-भाषा का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। इन दिव्यों राष्ट्रिय भावना से ओतप्रोत रचनाओं ने भारतीय जन-मानस में नव जागरण का मंत्र फूंका।

20 वीं शताब्दी में संस्कृत-साहित्याकाश में अनेक नक्षत्रों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी लेखनी के प्रकाश से सम्पूर्ण भारत को आलोकित कर परतन्त्रता के अन्धकार से मुक्ति प्रदान की, ऐसे नक्षत्रों में श्री मूलशंकर याज्ञिक का नाम अग्रगण्य है। भारतीय साहित्य की यह विडम्बना ही रही है कि अनेक मूर्धन्य लेखकों एवं कवियों की भाँति याज्ञिक जी के जीवन के सन्दर्भ में भी हमें विस्तृत परिचय नहीं प्राप्त हो सका है।

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी गुर्जर-प्रदेश [गुजरात प्रदेश] की वह विभूति हैं-जिन्होंने अपनी लेखनी से ऐतिहासिक नाट्य कृतियों की रचना करके संस्कृत-साहित्य के इस क्षेत्र के अभाव की पूर्ति में महान योगदान किया है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में

पौराणिक कथाओं पर आधारित महाकाव्य,नाटक,गद्यकाव्य एवं आख्यायिकाओं की प्रचुरता रही है। विशुद्ध इतिहास - सम्बद्ध विषयों को कम ही कवियों ने अपनी कृतियों में स्थान दिया है।

मूलशंकर याज्ञिक जी का जन्म गुजरात प्रदेशान्तर्गत खेड़ा जनपद के नड़ियाद नामक ग्राम में गौतमगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में इकतीस जनवरी सन् अट्ठारह सौ छियासी ई0[31-01-1886ई0] को हुआ था। उनके पिता का नाम माणिक्यलाल एवं माता का नाम अतिलक्ष्मी था। उस समय सम्भवतः नड़ियाद का नाम नटपुर था, जिसका उल्लेख उनके नाटकों- प्रतापविजयम्,छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं संयोगिता-स्वयंवरम्" में हुआ है।

"अद्य खलु नटपुरवास्तव्यमूलशङ्करविरचितेन[1] ....।"

याज्ञिक जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा नड़ियाद ग्राम में प्राप्त करने के उपरान्त उच्चशिक्षा हेतु बड़ौदा कालेज में प्रवेश लिया। यह वह समय था जब बड़ौदा कालेज के आचार्य श्री अरविन्द घोष थे। वहाँ से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे कुछ समय तक इण्डिया स्पी0सी0बैंक बम्बई में कार्य किये, तत्पश्चात् इन्दौर भड़ौच आदि स्थानों में विविध पदों पर कार्य करने के उपरान्त 1942 ई0 में सिनोर में शिक्षक हुए। शिक्षक पद पर सेवारत रहते ही उनकी रुचि लेखन कार्य की तरफ प्रवृत्त हुई। तीस वर्ष की आयु में तत्कालीन

---

1. छत्रपति साम्राज्यम् - पृ0 14
   प्रतापविजयम् - पृ0 02
   संयोगिता स्वयंवरम्-पृ0 03

महाराज सयाजीराव जी के आमन्त्रण पर राजकीय कालेज बड़ौदा में प्राचार्य पद पर आसीन हुए और सोलह वर्ष तक इस पद पर सेवा करते हुए उन्होंने अपनी विद्वत्ता से ज्ञानपिपासु छात्रों को तृप्त किया, अवकाश प्राप्त करने के बाद याज्ञिक जी शेष जीवन नड़ियाद में व्यतीत किये । नड़ियाद में निवास करते हुए ही तेरह नवम्बर उन्नीस सौ पैंसठ ई0॥13•11•1965ई0॥ को दिवंगत हो गये।

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी की संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि थी।। अपने अध्यवसाय और चिन्तन-मनन के परिणाम स्वरूप उसके अधिकारी विद्वान् हुए। अपनी प्रतिभा के बल पर याज्ञिक जी ने अपने जीवन काल में पर्याप्त सम्मान अर्जित किया। वाराणसी की विद्वत्परिषद ने उन्हें "साहित्यमणि" की उपाधि से अलंकृत किया तथा सन् 1916 ई0 में शिवगंगापीठ के शंकराचार्य ने उन्हें "श्री विद्यासम्प्रदाय" में दीक्षित किया। उनकी विद्वता से प्रभावित होकर महाराज सयाजीरावजी ने उन्हें संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य पद को अलंकृत करने का आमन्त्रण दिया।

व्यक्तित्व परिचय :-

याज्ञिक जी का सम्पूर्ण जीवन तपोमय था। लक्ष्मी तथा सरस्वती के सनातन विरोध से प्रभावित सारा जीवन निर्धनता से संघर्ष करते ही बीत गया, फिर भी उन्होंने अपनी साधना के बल पर संस्कृत-साहित्य को अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ प्रदान कर समृद्ध बनाया ।

कवि का व्यक्तित्व उसकी कृतियों से स्पष्ट ज्ञात होता है, यदि किसी कवि की रचनाओं का गहन अनुशीलन किया जाय तो उसके व्यक्तित्व का सहज आकलन हो जाता है, क्योंकि कवि अपनी कृतियों में अनेक स्थलों पर पात्रों के संवादों,उक्तियों के माध्यम से अपने ही विचारों एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करता है, और कवि उन्हीं कृतियों के संयोजन में सफल सिद्ध होता है, जिसका वर्ण्य-विषय आदि उसके स्वभावों तथा विचारों के अनुरूप होता है। स्वभाव और रुचि के विरुद्ध वर्ण्य विषय कवि को अपेक्षित सफलता दिलापाने में असमर्थ सिद्ध होता है।

संस्कृत के कवियों द्वारा अपने सम्बन्ध में आत्मपरिचय के रूप में कुछ भी न लिखने की परम्परा रही है, किन्तु समीक्षक उनके ग्रन्थों के आधार पर ही उनके व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं। परम्परानुसार याज्ञिक जी ने भी अपने विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है। उनकी कृतियों के अध्ययन द्वारा ही उनके व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है।

मूलशंकर याज्ञिक जी का व्यक्तित्व श्री अरविन्दघोष की प्रतिभातले पल्लवित एवं पुष्पित हुआ, अतः अरविन्द घोष के राष्ट्रवादी विचारों तथा तत्कालीन नव जागरणका उनके ऊपर गहन प्रभाव पड़ा। कविवर याज्ञिक जी की रचनाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त स्वाभिमानी,भारतीय संस्कृति के समुपासक अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित नेताओं के प्रति असीम श्रद्धावान् मनस्वी राष्ट्र कवि थे। वे स्वतन्त्रता के पुजारी थे। उनकी नाट्य कृतियों में

पग-पग पर उनका स्वातन्त्र्य प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। याज्ञिक जी राष्ट्रनिर्माता महापुरुषों के जीवन चरित का अध्ययन कर मध्यकालीन भारतीय इतिहास के योद्धाओं महाराणाप्रतापसिंह, छत्रपति शिवराज, अन्तिमहिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान को अपने नाटकों का नायक बनाकर अपनी राष्ट्रीय-भावना को अभिव्यक्ति दी। ये नाटक याज्ञिक जी के राष्ट्रवादी विचारों को भलीभाँति व्यक्त करते हैं। इनके नाटकों के कथोपकथन का प्रत्येक शब्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रप्रेम को अभिव्यक्त करता है।

याज्ञिक जी अपनी कृतियों के माध्यम से देश-वासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पारस्परिक भेद-भाव एवं मतभेद को भुलाकर एकता के सूत्र में बँधने की प्रेरणा देते हैं, एक जुट होकर संघर्ष करने को प्रेरित करते हैं और अधम शत्रु के प्रति साम आदि नीतियों, छल-कपट एवं माया प्रयोग को भी उचित ठहराते हैं। ये सब कथन उनके स्वातन्त्र्य प्रेम के अभिव्यंजक हैं।

श्री याज्ञिक जी प्रारम्भ से ही अत्यन्त मेधावी एवं प्रतिभासम्पन्न थे, अति महत्वाकांक्षा उन्हें छू भी नहीं सकी थी, शिनोर में शिक्षक पद पर कार्य करने में उन्हें पूर्णतः सन्तोष था। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले वे एक आदर्श गुरु थे, उन्होंने अपनी ज्ञानगंगा से छात्रों की जिज्ञासाओं को तृप्त किया। माता-पिता एवं गुरुजनों के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी, गुरु को सर्वोपरि मानने वाले याज्ञिक जी की मान्यता है कि शिष्य यदि उत्कर्ष को प्राप्त होता है तो यह गुरु का अमोघ प्रभाव ही है।[1]

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् 1/3

विनम्र, सुशील, दयालु एवं संयत स्वभाव वाले याज्ञिक जी का जीवन सादा जीवन उच्च विचार का पर्याय था। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, अपने नाटकों की नान्दी में उन्होंने भगवान् शिव तथा श्रीकृष्ण की आराधना की है। छत्रपति-साम्राज्यम् नामक नाटक में शिवाजी द्वारा भवानी मन्दिर में स्तुति करना भी इस तथ्य को उद्घाटित करता है।

श्री याज्ञिक जी ने वेद, वेदाङ्ग, न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा एवं वेदान्त, धर्मशास्त्र, पुराण, काव्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, काव्यशास्त्रफलित राजनीति शास्त्र तथा इतिहास आदि विषयों का विधिवत् अध्ययन किया है। इसका ज्ञान उनकी कृतियों से प्राप्त होता है, क्योंकि यथा स्थान उन्होंने इन विषयों का वर्णन किया है।

इतिहाससम्मत कथावस्तु वाले संस्कृत नाटकों तथा अन्य गुर्जर भाषा की कृतियों से उनका इतिहास के प्रति गम्भीर ज्ञान प्रदर्शित होता है। राजनीति-शास्त्र के वे महापण्डित थे। "छत्रपतिसाम्राज्यम्" तथा "प्रतापविजयम्" नामक नाटक इस बात की पुष्टि करते हैं। राजनीति सम्बन्धी ज्ञान इन नाटकों में स्थान विशेष पर बिखरा हुआ है। वे "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति के अनुगामी थे। उनका विचार था कि अधम शत्रु के प्रति छल, कपट व माया का सहारा लेने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। साम, दाम, दण्ड व भेद नीति का विस्तृत वर्णन मिलता है तथा राज्य प्रशासन-सम्बन्धी अन्य विचार भी है कि पारस्परिक द्वेष विनाश का कारण होता है। राजा के दुर्वृत्त हो जाने पर मंत्री, सचिव सभी

अपना कर्तव्य भुला देते है। प्रजा का अपनी सन्तान की तरह पालन करना राजा का धर्म है, बलवान से शत्रुता लेना हानि प्रद होता है, इत्यादि उनको राजनीति में प्रवीणता को प्रकट करते है।

याज्ञिक जी के नाटकों में गेय पदोंकीप्रचुरता है, जिससे संगीत में उनकी योग्यता तथा उसके प्रति प्रेम प्रकट होता है। नाटकों में मात्र गेय पदों को ही समावेश नहीं , वरन् उन्होंने प्रत्येक पद किस राग में निबद्ध हो एवं किस ताल में गाया जाय यह भी उल्लिखित किया है जो उनको शास्त्रीय संड्गीत मर्मज्ञता को प्रकट करता है।

उनका गीतिकाव्य"विजयलहरी" भी उनके सड्गीत स्वरूप को दर्शाता है। याज्ञिक जी के संगीत स्वरूप को दर्शाने वाले कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रस्तुत गीत विहाग राग तेवरा ताल में उस समय- नर्तकियाँ गाती है जब शिवराज जयसिंह के कहने पर सन्धि स्वीकार कर लेते है-

{विहागरागेण तेवरातालेन गीयते}

सुमसुकुमार । नयनविहार ।
हृदयाधार । यौवनसार । प्रणयापारपारावार । सुम० ।। 1 ।
जलदश्याम धव । सुखधाम । कुसुमललामवपुष्पकदाम । सुम० ।। 2 ।
अयि भुवनेश । मानवपेश । रमय रमेश । मां रसिकेश ।
सुमसुकुमार । नयनविहार । ।। 3 ।

- -

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् पृ0 127

"प्रताप विजयम्" नामक नाटक में मानसिंह के स्वागत हेतु भूपकल्याण राग, मठताल में बड़ा ही सुन्दर गीत का वर्णन द्रष्टव्य है- दो वीणावादक वीणा बजाकर गाते है-

{भूपकल्याणरागेण मठतालेन गीयते}

सुन्दरवनमाली मदयति हृदयमालि ।

प्रमुदितनयनसारप्रणयिमनोविहारविलुलितकुसुमहारशालीवनमाली ।।

मद० ।। 1 ।।

ललितगमनविलासनवरसपरीहासयौवनमदविकासशाली वनमाली ।

मद० ।। 2 ।।

गोकुलकुललललामपरमसुखेक्धामरसिकमनोभिराम आलि। हृदयमाली ।

मद० ।। 3 ।।

याज्ञिक जी ने "संयोगितास्वयंवरम्" नाटक में भी संगीत का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है -

{आसावरीरागेण त्रितालेन गीयते}

भारतराजकुलेश कृपालो ।।

अनुपममहिम गुणानामाकर ।

रसमयिसरितामयि रत्नाकर ।

कविवरवरदयनेश ।। भारत० ।। 1 ।।

- -

1. प्रताप विजयम्'-पृ० 8-9

सुरपतिसमितिविकासितविक्रम ।
स्वविलासिनीवासितविक्रम ।
अभयवरदकमलेश ।भारत० ।। 2 ।।
निजजनपरिपालनदीक्षित ।
अशरणमितीव सुवीक्षित ।
जीव चिरं भुवनेश ।भारत० ।। 3 ।।

इस प्रकार याज्ञिक जी के नाटकों में गेय पदों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

राग और ताल देने की प्रवृत्ति यह द्योतित करती है कि कवि ने सङ्गीत के इन तत्त्वों का सम्यक् प्रकार से ज्ञान कर रखा है कि संङ्गीत के किस राग-ताल को किस भाव के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जाय। यह संङ्गीत पद्धति जयदेव के गीतगोविन्द की पद्धति से परिलक्षित होती है।

इसके अतिरिक्त मधुर स्वभाव, प्राणिमात्र की कल्याणकामना, उद्यमशीलता, धैर्य, बुद्धिमत्ता आदि इनके व्यक्तित्व के अन्य गुण हैं। इनके मतानुसार यह वसुन्धरा स्वर्णपुष्प को विकसित करने वाली है। तीन प्रकार के व्यक्ति उस पुष्प को प्राप्त कर सकते हैं। शूर, उद्यमी तथा जो युक्ति पूर्वक सेवा करने में समर्थ हो। जो सतत् प्रयत्न नहीं करते हैं, वे संसार में जीवन पर्यन्त निराशा एवं अभाव में भटकते

---

1. संयोगितास्वयंवरम् पृ० 94

रहते हैं। अतएव मानव के स्वयं में आत्महीनता की भावना कभी भी नहीं आने देनी चाहिए। दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ की प्राप्ति के लिए मानव को सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा तथा विलक्षण काव्य प्रतिभा के धनी थे। उनके व्यक्तित्व में वैदुष्य तथा प्रतिभा का मणि-काञ्चन - संयोग था। उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से आधुनिक संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि ऐसे समय में की जबकि संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशक,श्रोता एवं ग्राहक प्रायः दुर्लभ थे, उस समय याज्ञिक जी ने संस्कृत काव्य का सृजन किया। यह उनकी संस्कृत-भाषा में अत्यधिक अभिरुचि को प्रकट करता है।

याज्ञिक जी संस्कृत भाषा की ऐतिहासिक नाट्य परम्परा एवं आधुनिक साहित्यकारों में अपनी कृतियोंके कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं।

<u>कृतित्व परिचय :-</u>

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने संस्कृत भाषा के साथ-साथ मातृभाषा गुजराती में भी अनेक महत्त्व पूर्ण रचनाएँ करके साहित्य को अपना बहुमूल्य योग-दान किया है। गुर्जर प्रदेश के साहित्य सृजकों की दृष्टि नाटक रचना की ओर नहीं गयी थी, श्री याज्ञिक जी ने अपनी कृतियों के माध्यम से साहित्यिकों को आकृष्ट कर लिया और साहित्य-समाज में एक नयी परम्परा का श्रीगणेश किया।

संस्कृतभाषा की कृतियाँ :-

संस्कृत भाषा की प्रमुख रचनाओं में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित याज्ञिक जी के तीन प्रमुख नाटक हैं।

1. छत्रपति साम्राज्यम् ।
2. प्रतापविजयम् ।
3. संयोगितास्वयंवरम् ।

इसके अतिरिक्त "विजय लहरी" गीतिकाव्य एवं विष्णुपुराण पर आधारित एक कथा पुस्तक "पुराणकथा तरंगिणी" तथा संस्कृत भाषा की अन्य कृतियाँ हैं।

गुर्जरभाषा की कृतियाँ :-

याज्ञिक जी ने गुर्जर भाषा में भी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार "हर्षदिग्विजयम्" नामक नाटक तथा मेवाणप्रतिष्ठा नामक ऐतिहासिक कृतियों की रचना की। इसके अतिरिक्त "नैषधचरितम्, तुलनात्मक धर्मविचार आपण प्राचीन राज्यतन्त्र एवं सत्यधर्म प्रकाश" याज्ञिक जी की गुजराती भाषा की रचनाएँ हैं।

याज्ञिक जी का भाष्य ग्रन्थ संस्कृत में "सप्तर्षिदृष्टवेदसर्वस्वम्" है। इस ग्रन्थ में सात आदिम ऋषियों की प्रथम कृतियाँ हैं। जो लगभग 6000 वर्ष पूर्व (याज्ञिक जी की वंश तालिका के अनुसार) विवस्वान् के समय फले-फूले और वैदिक ऋचाओं के प्रथम द्रष्टा थे। उन्हें ऋग्वेद संहिता से स्वयं किया गया है, जहाँ वे अपने दृष्टान्तों के विशेष नामोल्लेख के साथ मिलती हैं।

कृतियों का सामान्य परिचय :-

श्री याज्ञिक जी की संस्कृत- नाट्य कृतियाँ उनके बड़ौदा में संस्कृत महाविद्यालय के आचार्यत्व काल में (1926-1933 ई0 में) ही प्रकाशित हो गयी थी। जो क्रमशः निम्नवत् द्रष्टव्य है-

1	संयोगितास्वयंवरम्	1928 ई0 ।
2.	छत्रपतिसाम्राज्यम्	1929 ई0 ।
3.	प्रतापविजयम्	1931 ई0 ।

1. संयोगितास्वयंवरम् :-

वीररस से परिपूर्ण अन्य दो नाटकों (छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं प्रताप-विजयम्) के विपरीत "संयोगितास्वयंवरम्" नामक नाटक श्रृंगार रस प्रधान है। इसमें दिल्ली के प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान एवं कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री राजकुमारी संयोगिता की प्रणयकथा का अनुपम वर्णन किया गया है। इस नाटक के प्रमुख पात्र दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान, कन्नौजाधिप की पुत्री संयोगिता, जयचन्द, पृथ्वीराज के मित्र कविचन्द आदि हैं। सम्राट् पृथ्वी-राज शूरवीर शासक हैं, संयोगिता के प्रेम में भी वे अपने राज्य कर्तव्य को नहीं भूलते हैं। संयोगिता एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित है जो एक बार किसी को पति के रूप में वरण कर लेने पर उसके लिए सभी कष्टों को सहन करने में दृढ़ संकल्प है।

छत्रपतिसाम्राज्यम् :-

"छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक में मध्यकालीन भारत के एक शूरवीर छत्रपति शिवाजी की वीरता एवं स्वातन्त्र्य प्रेम की कथावस्तु है, जिसने मुगलबादशाह औरंगजेब को समस्त कुटिल चालों को असफल करते हुए अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की। यह वीररस प्रधान नाटक है।

इस नाटक के प्रमुख पात्र शिवराज के अतिरिक्त उनके मित्र एवं वीर सैनिक एसाजी, तानाजी, बाजी एवं प्रान्ताधिप आबाजी हैं। शिवाजी की भाँति उनके मित्र भी स्वतन्त्रता के पुजारी तथा स्वतन्त्रता के लिए आत्मबलिदान को सदैव तत्पर रहते हैं। स्त्री पात्रों में शिवाजी की माँ जीजाबाई मुख्य हैं, जिन्होंने बचपन से ही वीरों की शौर्यमयी गाथाएँ सुना-सुनाकर अपने पुत्र को भारत माता का अनन्य उपासक बनाया तथा भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए तन, मन, धन अर्पित कर देने की भावना को कूट-कूट कर भरा है। महाराजशिवाजी पदासीन होने पर भी प्रत्येक कठिनाई के निवारण हेतु उनसे विचार-विमर्श करते हैं।

प्रताप-विजयम्:-

जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि "प्रतापविजयम्" नाटक मेवाड़ केसरी महाराणाप्रतापसिंह की गौरव गाथा है। यह वीर रस प्रधान नाटक है। मेवाड़केसरी राणाप्रतापसिंह एवं मुगलबादशाह अकबर के बीच हुए प्रसिद्ध हल्दीघाटी युद्ध की कथा इस नाटक की कथावस्तु है, जिसके माध्यम से याज्ञिक जी ने तत्कालीन आंग्लशासक के प्रति विद्रोह की भावना को व्यक्त किया है तथा भारतीय जनता को संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

सशक्त कथावस्तु वाले इस नाटक के प्रमुख पात्र महाराणाप्रतापसिंह, मुगलसम्राट् अकबर, मानसिंह,भीमाशा, झालामानसिंह आदि है। महाराणाप्रताप-सिंह एवं उनके परिवार जन भीमाशा आदि अनेक अमात्य तथा सेनापति स्वातन्त्र्य प्रेम के अमूर्त रूप है तथा स्वाधीनता की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हैं।

मानसिंह का चरित्र उन राष्ट्रद्रोहियों का प्रतीक है, जिन्होंने विदेशियों को अपनी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया ।

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

तृतीय अध्याय
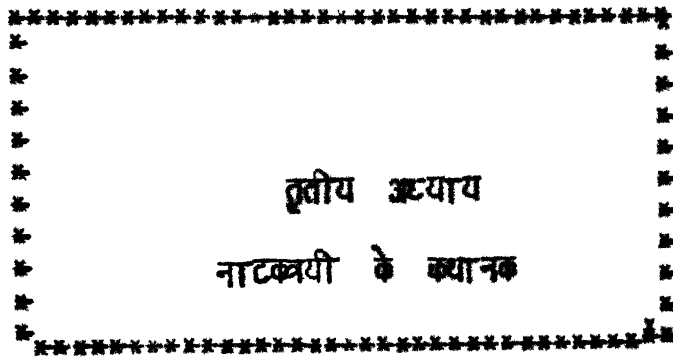
नाटकत्रयी के कथानक

खण्ड - 1

नाटकत्रयी के कथानक

प्रतापविजयम्

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा सन् 1926 ई0 में लिखित एवं सन् 1931 में प्रकाशित इस ऐतिहासिक नाटक में नौ अंक है। लेखक के इस नाटक की कथावस्तु मेवाड़केसरी महाराणाप्रताप सिंह के जीवन चरित को प्रस्तुत करती है। याज्ञिक जी इस नाटक की कथावस्तु को निम्नलिखित ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं।

1. महामहोपाध्याय आ0वी0गौरीशंकर एच0 ओझा का "वीरशिरोमणि-महाराणाप्रतापसिंह"।
2. श्रीपादशास्त्री का "श्री महाराणा प्रताप सिंह चरितम्"।
3. आइनेअकबरी [अबुल फजल] ।
4. जहाँगीर के संस्मरण ।

वर्तमान में इस कृति का "कौशाम्बी प्रकाशन दारागंज,प्रयाग " से प्रभात-शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित संस्करण उपलब्ध है।

कथावस्तु :-"प्रतापविजयम्" नामक नाटक का अंकानुसार संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है।

प्रथम अङ्क:-प्रस्तावना के पश्चात् महाराणाप्रताप सिंह अपने मंत्रीगण के साथ विचार विमर्श करते हुए दिखाई देते हैं। क्षत्रिय राजामानसिंह ने मुगल बादशाह अकबर की

अधीनता स्वीकार कर ली है और उसे नीति प्रयोग द्वारा अन्यराजाओं को वशवर्ती करने हेतु भेजा गया है। इस समय वह मेवाड़ की ओर बढ़ रहा है। मेवाड़ राज्य की रक्षा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते हुए प्रतापसिंह क्षत्रिय कुल को दूषित करने वाले राजाओं के कृत्यों तथा भारत-दुर्दशा पर दुःखप्रकट करते हैं। बैठक में मानसिंह को उचित आतिथ्य मानकर मानसिंह के आगमन पर कुशल क्षेम पूछने के अनन्तर प्रतापसिंह एवं मानसिंह की वार्ता प्रारम्भ होती है। मानसिंह अनेक उदाहरण देकर प्रतापसिंह को मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए बल देता है, परन्तु प्रताप सिंह कहते हैं कि क्या सूर्य कुल में जन्म लेने वाले नरेशों के लिए यह शोभनीय है ?[1]

तेजस्वी, पराक्रमी, शौर्यादि गुणों से सम्पन्न सूर्यवंशी कष्टों से परिवेष्ठित होने पर भी पराधीनता स्वीकार नहीं करते हैं। युवराज अमरसिंह, मानसिंह के आतिथ्य सत्कार हेतु नियुक्त किये जाते है। अमरसिंह, मानसिंह को मेवाड़ भूमि की रमणीयता के दर्शन कराते हैं। आतिथ्य सत्कार करते हुए भी प्रतापसिंह मानसिंह के साथ भोजन करना स्वीकार नहीं करते है, और भोजन के समय पेट में तीव्र पीड़ा का बहाना बनाते हैं। किन्तु मानसिंह इस पीड़ा को समझ जाता है।

मानसिंह अत्यन्त क्रोधित होता है, और शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना के साथ मेवाड़-मर्दन हेतु आने की चेतावनी देता है। मानसिंह के जाने के बाद मंत्रिगण विचार-विमर्श करते हैं कि मानसिंह अवश्य आयेगा, अतः युद्ध हेतु सेनाको तैयार होना चाहिए।

---

1. प्रतापविजयम् - पृ0 10

प्रतापसिंह कहते हैं कि मेवाड़ के पर्वत प्रदेश सदैव ही हमारे रक्षक रहे हैं। वहाँ छिपकर हम यवनों के विशाल सैन्य बल को नष्ट कर सकते हैं। अत: सेनापति को सेना सहित पर्वत प्रदेश को चलने की आज्ञा देते हैं।

द्वितीय अङ्क -

हल्दीघाटी के समीप सैन्य शिविर में मंत्री,सेनापति एवंसामन्त समूह से घिरे हुए प्रताप सिंह आते हैं। गुप्तचर समाचार लाता है कि मानसिंह आखेट क्रीड़ा के बहाने थोड़ी दूर पर सैन्यबल के साथ घूम रहा है। सेनापति का विचार है कि उसे पकड़ लेना चाहिये,लेकिन प्रतापसिंह इस पक्ष में नहीं हैं कि निहत्थे शत्रु पर वार किया जाय। वे रणभूमि में ही शत्रु को बाहुबल से परास्त करना ही श्रेष्ठ समझते हैं।

रात्रि के समाप्ति पर प्रतापसिंह युद्ध हेतु सैनिकों को तैयार करते हैं। सामन्त झालामानसिंह कहते हैं कि हम सभी ने राष्ट्ररक्षा का व्रत लिया है,उसी के लिए हमारा शरीर तत्पर है। सेनापति के आदेशानुसार सेना प्रस्थान करती है । शिविर की व्यवस्था करने के पश्चात् प्रतापसिंह भी चेतक पर सवार होकर युद्ध क्षेत्र की ओर उन्मुख होते हैं।

प्रशास्ता और निवेशाध्यक्ष के बीच विचार-विमर्श होता है कि कभी हमारे यहाँ ही सामन्त रहे राजा आज यवनों के वशीभूत होकर हमें नष्ट करना चाहते हैं, फिर भी अल्पसंख्यक होने पर हमारी विजय सुनिश्चित है। तभी समाचार मिलता है कि प्रतापसिंह के भाले से मानसिंह का हृदय भिद् गया है।

प्रशास्ता कहता है कि मानसिंह को अपनी कृतघ्नता का दारुण फल शीघ्र ही प्राप्त हो गया। अब हमारे चिकित्सकों को युद्ध क्षेत्र में घायलों को चिकित्सा के लिये पहुँचना चाहिये। तभी अश्वचार द्वारा समाचारमिलता है कि मानसिंह तो बच गया है, परन्तु युद्ध में घायल चेतक स्वामी को लेकर वापस आ रहा है।

उपचार से निवृत्त होने के पश्चात् प्रतापसिंह को समाचार मिलता है कि चेतनाहीन मानसिंह को देखकर दाढ़ी को संवारे हुए यवन-सैनिक भय से चारों ओर भागने लगे। तभी चेतना प्राप्त होते ही मानसिंह ने अपने सैनिकों को प्रोत्साहन दिया और सभी सैनिक राजछत्र धारण किये हुए सामन्त झालामानसिंह पर टूट पड़े। इसी बीच चेतक प्राण त्याग देता है। प्रताप चेतक की प्रशंसा करते हैं तथा दूसरे सिंधी घोड़े पर सवार देवविजय के लिये प्रस्थान करते हैं। तभी पुनः दुःखद समाचार प्राप्त होता है कि सामान्त झालामानसिंह वीरगति कोप्राप्त हो गये। झालामानसिंह की मृत्यु परप्रताप व सभी सैनिक शोकातुर हो जाते हैं।

उसकी मृत्यु से व्याकुल राजपूत सेना तीव्रआक्रमण कर यवन सैनिकों को रणक्षेत्र छोड़ने के लिए विवश कर देती है।

यद्यपि यवन सेना वापस चली जाती है, परन्तु पुनः उसके आक्रमण की आशंका बनी हुई है, अतः मंत्री कूटनीति से युद्ध करने की सलाह देता है। इसके लिये प्रतापसिंह सभी को कुम्भल गढ़ दुर्ग में स्थित होने का आदेश देते हैं।

तृतीय अङ्क :-

मुगल सेना शिविर के उद्यान में मानसिंह एवं सेनापति टहलते हैं। तभी सेनापति कहता है कि यह युद्ध हमारे श्रेष्ठ वीरों को नष्ट कर दे रहा है। मानसिंह कहते हैं कि मैंने सोचा था कि प्रतापसिंह शीघ्र वशवर्ती हो जायेगा, लेकिन उसने युद्ध प्रारम्भकर दिया, तभी मुगल बादशाह अकबर दोनों को बुलवाते हैं। सहयोगियों सहित अकबर प्रवेश करते हैं। वहींपर हृदय से राणाप्रताप का पक्षपाती पृथ्वीराज भी उपस्थित

है। मुगल सम्राट् अकबर कहते हैं कि हमारी उपस्थिति पूरी सेना को क्यों नहीं प्रेरित कर रही है। सेनानायक कहता है कि हमारे, शत्रु के गुप्त स्थान पर पहुँचने पर शत्रु वहाँ से चला जाता है। बनवासी एवं नगरवासी दण्ड देने पर भी कुछ भी नहीं बताते हैं। सेनापति एवं मानसिंह कहते हैं कि भेदनीति का प्रयोग करके मंत्री आदि को अपने पक्ष में करना ही उचित है। किन्तु सम्राट् कहते हैं कि यह असम्भव है क्योंकि साहसी, पराक्रमी और प्रजा के अनुराग पात्र राजा से प्रजा कभी भी अलग नहीं होती है। तदन्तर दिल्ली से संदेशवाहक आकर सूचना देता है कि गान्धार में विद्रोह प्रारम्भ हो गया है। पृथ्वीराज अकबर के गान्धार पहुँचने एवं राणाप्रतापसिंह से मैत्री करने का सुझाव देता है तथा पूर्व हुए चित्तौणगढ़ के युद्ध की स्मृति दिलाते हैं, जहाँ पर स्त्रियों ने चण्डी का वेश धारण कर युद्ध में भाग लिया था। आबालवृद्ध शौर्य तथा देशभक्ति युक्त जनता वाले राज्य को जीतना कठिन नहीं होता है। अकबर पृथ्वीराज के सुझाव से सहमत हो जाते हैं। तभी भगवानसिंह से प्रताप सिंह के सम्बन्ध में नकारात्मक

उत्तर पाकर तथा मानसिंह की चाटुकारितापूर्ण वचन सुनकर क्रुद्ध अकबर दोनों का राजमहल में प्रवेश वर्जित कर देता है। क्षमायाचना करने के बाद दोनों (मानसिंह एवं भगवानसिंह) (शत्रु) को पकड़ने के लिये आदेश देकर स्वयं दिल्ली की ओर प्रस्थान करता है।

चतुर्थ अङ्क :-

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में ज्ञात होता है कि सम्राट दिल्ली वापस चला गया है तथा दुर्ग को महाराणाप्रतापसिंह ने जीत लिया है। तभी शत्रु को दूतआता है जो अमात्य से भेद नीति का प्रयोग करता है। अमात्य प्रताप सिंह से जाकर सब कुछ बताता है तथा भेद नीति व कूटनीति के माध्यम से बलवान शत्रु से युद्ध करने को सलाह देता है। मन्त्री इसकी बातों से सहमत हो जाता है, वह वैभव से युक्त तथा निकलने के मार्ग वाले किसी पर्वत प्रदेश का आश्रय लेकर लड़ने की इच्छा प्रकट करता है। प्रतापसिंह भी सहमत हो जाते हैं। किंतु समय की प्रतिकूलता के कारण प्रताप सिंह का अंतः करण दुःखी होता है। " क्योंकि अनुपम शौर्य प्रकट करने वाले प्रसिद्ध श्रेष्ठ नरेश निश्चित रूप से विनाश को प्राप्त हो गये हैं।"[1]

फिर भी प्रताप सिंह सेना व नगर वासियों को आदेश देते हैं कि सभी लोग पर्वत प्रदेश में शरण ले लें। इसके बाद निकल्पति का प्रवेश होता है और वह परिवारकों के समूह में प्रवेश पाने के लिए प्रार्थना करता है। प्रताप सिंह उसके राजभक्ति से सन्तुष्ट होकर उसे अपना सहायक बनाते हैं, क्योंकि वह पर्वत प्रदेश से पूर्णरूप से परिचित है। इसके बाद प्रताप सिंह का अन्तःपुर में प्रवेश होता है।

---

1. प्रतापविजयम् 4/7

राजमहिषी तथा पृथ्वीराज की बहन भी मंगोलों की राजधानी के विलासों को छोड़करपर्वत प्रदेश में निवास का अभिनन्दन करती हैं। वे कहती हैं कि क्षत्राणियों के लिए वन-प्रदेश, नन्दन वन के समान होता है। तभी युवराज आकर बताते हैं कि प्रजा ने राजा के आदेश का स्वागत किया है।

युवराज और राजपुत्री के मन में एक दूसरे को देखकर वाक्-विकार उत्पन्न होता है। प्रताप अंत:पुर की स्त्रियोंको शीघ्र प्रस्थान करने की आज्ञा देते हैं।

पंचम अङ्क :-

पर्वत की ऊपरी समतल भूमि पर राज कन्यायें क्रीड़ा कर रही हैं। उनमें से एक पृथ्वीराज की बहन है। वह सोचती है कि संकेत का समय हो गया है। तभी युवराज का आगमन होता है। राजकन्या उनका स्वागत करती है। युवराज एकनिष्ठ प्रेम देखकर कहते हैं कि मैं पिता के अधीन हूँ, तुम मुझ में ऐसा भाव न रखो क्योंकि दृढ़ अनुराग के द्वारा वश में कर लिये जाने पर भी मैं मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ। राजकुमारी कहती है कि अभीष्ठ फल की प्राप्ति के लिये क्षत्रिय ललनायें कभी भी हतोत्साहित नहीं होती हैं। मैं महाराज की आज्ञा प्राप्त करूँगी।

तभी प्रतिहारी प्रवेश कर सूचित करता है कि पर्वत चोटी पर महाराज उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तभी कवीश्वर का आगमन होता है। प्रतापसिंह उन्हें राज-शिविर में ठहराने का आदेश देते हैं। इसके पश्चात् पृथ्वीराज की बहन अपने अभीष्ट वर की प्रार्थना करती है। किंतु महाराज जीवन भर पुत्री तुल्य अपने कुल में निवास करने की बात करते हैं। वह अपने को अनुग्रहीत मानकर चली जाती है। प्रधानमंत्री बताते हैं कि एक राष्ट्रद्रोही किसान ने राष्ट्रद्रोह किया है। अत: उसे दण्ड देने हेतु प्रस्थान करें।

षष्ठ'अड्क :-

मुगल सम्राट् अकबर राज-उत्सव की तैयारी में लगेहुए हैं। प्रतापसिंह का कोई समाचार ज्ञात नहीं है। राष्ट्र द्रोही किसान को मार डाला गया है। सेनापति कहता है कि प्रताप सिंह सम्राट् की शरण चाहता है। इसके बाद मंत्री व परिवार सहित अकबर का आगमन होता है। गुप्तचर समाचार देता है कि प्रतापसिंह व्यापारियों को मार्ग में रोककर राज्य उपयोगी बहुमूल्य रत्नों को स्वयं ही खरीदकर लौटा देता है। इस समाचार को सुनकर पुन: प्रतापसिंह विचार-विमर्श का लक्ष्य बन जाता है।

प्रतापसिंह के शरण आगमन की बात पर अकबर को विश्वास नहीं होता है, फिर भी पृथ्वीराज से साभिप्राय मुस्कराकर कहता है कि तुम्हारा स्वातन्त्रय प्रेमी अद्वितीय मित्र वीर प्रताप सिंह शरण चाहता है।

पृथ्वीराज कहता है कि यह असत्य है तब मुगल सम्राट्, पृथ्वीराज को सत्य का पता लगाने के लिये कहता है। पृथ्वीराज, प्रताप सिंह को पत्र लिखता है।अन्त: पुर में राजमहिषी अकबर को बताती है कि पृथ्वीराज की बहन मुगलशासन में रहना स्वीकार नहीं करती है। अकबर कहता है कि भारत दुर्दशा के मूल में यह पारस्परिक राग-द्वेष ही है, अन्यथा भारत'समृद्ध बना रहता। वह प्रतापसिंह को वशवर्ती करने की प्रतिज्ञा करता है।

सप्तम'अड्क :-

पहाड़ की चोटीपर प्रतापसिंह मंत्री के साथ बैठे हुए हैं। दिल्ली से पृथ्वीराज का पत्र प्रतापसिंह को पत्रवाहक के माध्यम से प्राप्त होता है। पृथ्वीराज ने पत्र में लिखा है कि शीघ्र ही मेवाड़ नरेश मुझे सम्राट् अकबर मेरी शरण दूँगा।

तब मैने आपका पक्ष लेते हुए खण्डन किया और कहा कि अजेय प्रतापसिंह के ऐसा कहने पर गंगा उल्टी बहेगी तथा सूर्य पूरब में न निकलकर पश्चिम दिशा में निकलेगा। मेरा यह कथन मुझे लज्जित तो नहीं करेगा ? प्रताप सिंह उत्तर में पत्र लिखते हैं कि यह कहने के लिये आपको कभी भी लज्जित नहीं होना पड़ेगा। तदन्तर यवनों के द्वारा पर्वत प्रदेश घेर लिये जाने पर दूसरे पर्वत प्रदेश पर जाने का निश्चय होता है।

राज-परिवार की महिलाओं को अन्यत्र ले जाने का कार्यभार युवराज को दिया जाता है। अन्त:पुर में काम से पीड़ित राजकुमारी अपने भाग्य को दोष देती हुई मृत्यु की कामना करती है, जिससे कि अगले जन्म में युवराज को प्राप्त कर सके। युवराज क्षमा माँगते हैं कि हे राजकुमारी कुल को कलंक से बचाने के लिये ही मैंने तुम्हें अस्वीकार किया है। तभी निषादपति युवराज को बुलाकर कहता है कि मैं एक अन्य पर्वत प्रदेश ढूढ़ लिया हूँ। उसे देखने के लिये दोनों चले जाते हैं।

अष्टम् अङ्क :-

गुप्त पर्वत प्रदेश में राजशिविर में प्रतापसिंह का राजमहिषी के साथ प्रवेश होता है। प्रतापसिंह कहते हैं कि मेरे स्वातन्त्र्य के दुराग्रह से आप को कष्ट हो रहा है, किन्तु महारानी कहती हैं कि आप जैसा वीर पति पाकर मेरा जन्म सफल हो गया पराधीनता के वैभव की अपेक्षा यह वन-प्रवास अधिक आनन्द दायक है। तभी उनके पुत्र का आगमन होता है, एवं कुम्भलगढ़ दुर्ग में जाने की इच्छा प्रकट करता है। महारानी कुमार को समझाती हैं, प्रतापसिंह भी कुमार को रोते देखकर दु:खी होते हैं।

पर्वत चोटी पर पहुँचने पर मंत्रीगण प्रतापसिंह से कहते हैं कि वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के कारण यवन सेना वापस जा रही है, अत: शीघ्र ही मेवाड़ भूमि अधीन कर लेनी चाहिये। अवसर की अनुकूलता को देखकर सेना को एकत्रित करके मेवाड़ भूमि को अधीन करने के लिये प्रयाण का आदेश दिया जाता है।

नवम अङ्क :-

मेवाड़ जनपद में स्वतंत्रता का सुप्रभात होता है। एक वर्ष के भीतर ही मेवाड़ केसरी महाप्रतापी महाराजा राणा प्रतापसिंह ने यवन समूह से मातृभूमि को मुक्त करा लिया है। महाराज के विजय महोत्सव का नागरिक अभिनन्दन कर रहे हैं। नगर सजा हुआ है, राजमार्ग ध्वजों एवं कमलों की मालाओं से अलंकृत है, मंगल वाद्य बज रहे हैं तथा महिलायें मांगलिक गीत गा रही हैं।

सभामण्डप में शोभायमान प्रतापसिंह भी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। दिल्ली से पृथ्वीराज का पत्र आया है जिससे ज्ञात होता है कि दिल्ली सम्राट् ने भी प्रतापसिंह के निर्विघ्न शासन की कामना प्रकट की है।

प्रतापसिंह विद्वान, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, कविवरों आदि को बहुमूल्य रत्न आदि भेंट प्रदान कर सम्मानित करते हैं। अन्त में प्रतापसिंह भारतवर्ष की सुख समृद्धि तथा स्वतन्त्रता की आकांक्षा प्रकट करते हैं।

छत्रपतिसाम्राज्यम्

मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा लिखित "छत्रपतिसाम्राज्यम्" नामक नाटक का प्रकाशन सन् 1929 ई0 में हुआ। इस कृतिकादारागंज, इलाहाबाद से प्रकाशित संस्करण उपलब्ध है। इस नाटक में दस अङ्क हैं। यह नाटक नामानुकूल मध्यकालीन भारत के एक ऐतिहासिक पुरुष छत्रपतिशिवाजी द्वारा स्वराज्य स्थापना की यशोगाथा को प्रस्तुत करता है।

प्रथम अङ्क :-

नान्दी के पश्चात् शिवाजी का मित्रों सहित प्रवेश होता है। वे आपस में प्राचीन गौरव एवं वर्तमान राजाओं की क्षुद्र प्रवृत्तियों, कलह तथा भोगविलास का वर्णन करते हैं, और भारत की दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हैं। इस प्रकार मित्रों से वार्तालाप के समय ही शिवराज स्वराज्य-स्थापना का व्रत लेते हैं,अन्तत: वार्तालाप में वहीं यह निश्चित होता है कि पहले बीजापुर नरेश पर विजय प्राप्त की जाय। तभी अनुचर द्वारा समाचार मिलता है कि अपनी भगिनी को अपने बहनोई के गाँव ले जाते समय बीजापुर के सैनिकों ने नेताजी पर आक्रमण कर मार डाला और उनकी भगिनी का अपहरण कर लिया है।

शिवाजी यह समाचार सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं। येसाजी एवं दादो जी देशमुख धर्मराज्य की स्थापना हेतु शिवाजी से सहमत होते हैं तथा जीवन पर्यन्त साथ देने का व्रत लेते हैं। तभी दादाजी कोण्डदेव का प्रवेश होता है। वे शिवराज को ऐसा दु:साहस करने से रोकते हैं, किन्तु शिवराज पर उनकी बात का कोई प्रभाव नहीं होता है। वे अपने व्रत पर अन्तत: अटल रहते हैं। दादोजी कोण्ड देव शिवराज को सफलता का आशीर्वाद देते हैं, तभी तोरणदुर्ग के दुर्गपाल का आगमन होता है एवं लक्ष्य प्राप्ति हेतु तोरणदुर्ग को शिवाजी के अधिकार में देने

का वचन देता है ।

द्वितीय अङ्क :-

ऐसा जी एवं ताना जी का प्रवेश होता है। कांकण कोण्डले एवं पुरन्दर दुर्ग शिवाजी के अधिकार में आ गये हैं, तथा महत्त्वपूर्ण समाचार यह प्राप्त होता है कि नेताजी मृत समझकर यवनों द्वारा छोड़ दिये गये थे। वे माथेरान-पर्वती देश में शस्त्रास्त्रों में निपुणता प्राप्त कर चुके हैं तथा राजमाची (लोहगढ़) दुर्ग में स्वामी के साथ स्थित हैं। तोरण दुर्ग के उपवन में शिवराज चिन्तित खड़े हैं क्योंकि चालीस हजार मावल जन उनकी सेना में सम्मिलित होना चाहते हैं किन्तु धनाभाव के कारण उन्हें नियुक्त करने का साहस नहीं हो रहा है। नेताजी के साथ इस समस्या के समाधान हेतु विचार-विमर्श होता है, उसके बाद शिवाजी भवानी मन्दिर में आराधना हेतु जाते हैं। आकाशवाणी द्वारा अभीष्ट सिद्धि की घोषणा होती है। नेताजी का यह विश्वास है कि इस जीर्ण मन्दिर के कोने में खुदवायें तो प्रस्तर से ढकी हुई विशाल धनराशि प्राप्त होगी। खुदाई होने पर विशाल धनराशि की प्राप्ति होती है तथा धन की समस्या का समाधान हो जाता है। एक विदेशी व्यापारी से शिवाजी शस्त्रास्त्रों को खरीदते हैं, तत्पश्चात् प्राकारादि से घिरे हुए दुर्जेय दुर्ग के निर्माण का आदेश देते हैं। नेताजी एवं आबाजी मावलों की सेना तैयार करते हैं, स्वयं शिवाजी कोंकण दुर्ग विजय के लिए प्रस्थान करते हैं।

तृतीय अङ्क :-

बीजापुर नरेश के आक्रमण की आशंका पर विचारविमर्श करते हुए शिवाजी , मंत्री के साथ राजगढ़ दुर्ग में स्थित हैं, तभी कोकण-प्रदेश से सामन्त आकर भवानी-देवी का दिया हुआ कृपाण भेंट करता है।

इसके पश्चात् कल्याण-प्रान्त के अधिपति की पुत्रवधू सहित आवाजी का आगमन होता है। एक स्त्री को बन्दी बनाने के कारण शिवाजी उन्हें फटकारते हैं एवं कल्याण-प्रान्ताधिप की पुत्र-वधू को छोड़ने का आदेश देते हैं। तदन्तर द्वारपाल आकर कहता है कि महाराज के यशस्वी विजय से आकर्षित होकर सात सौ गान्धारसैनिक आप की सेना में सम्मिलित होना चाहते हैं। मंत्रीगण से विचार-विमर्श के पश्चात् शिवराज उन्हें सेना में सम्मिलित होने का आदेश देते हैं । तभी समाचार मिलता है कि स्वराज्य स्थापना हेतु प्रयासरत शिवाजी के पिता को बीजापुर नरेश ने कारागार में डाल दिया है, उनकी मुक्ति हेतु मुगल बादशाह को प्रार्थना पत्र लिखा जाता है। अन्त:पुर में शिवराज की माता भी शिवाजी की व्यवस्था का अनुमोदन करती हैं। उनका सुझाव है कि लक्ष्य प्राप्ति हेतु श्रेष्ठ वीरों को अपने पक्ष में किया जाय, इस हेतु बजाजीराव के पुत्र को अपनी पुत्री प्रदान करने का प्रस्ताव रखती है। शिवाजी उनके प्रस्ताव से सहमत होते हैं।

चतुर्थ अङ्क :-

गुरुरामदास राज्य में पधारे हुए हैं उनके आगमन पर राज्य में उत्सव मनाया जा रहा है। गुरुरामदास के साथ शिवाजी का प्रवेश होता है। वे शिवराज को लक्ष्य प्राप्ति हेतु सफलता का आशीर्वाद देते हैं तथा राज्यधर्म सम्बन्धी

उपदेश देते हैं। वे स्वयं राष्ट्र की रक्षा हेतु प्रत्येक मठ में राष्ट्रीय भावना का समावेश करते हैं।

मंत्रणागृह में गुप्तचर द्वारा समाचार प्राप्त होता है कि बीजापुर नरेश का पापात्मा सेनापति बारह सौ [1200] सैनिकों के साथ आक्रमण हेतु आ रहा है। शिवाजी नेताजी को सेना तैयार करने की आज्ञा देते हैं। तत्पश्चात् शत्रु का दूत आता है कि महाराज शिवराज बीजापुर नरेश का सेवक धर्म स्वीकार कर लें। शिवराज अपने चातुर्य से शत्रुदूत को अपने पक्ष में कर लेते हैं एवं सेनापति की वास्तविक इच्छा भी उससे जान लेते हैं। इसके बाद शिवाजी दूत के माध्यम से संदेश भेजवाते हैं कि वह उससे एकान्त में मिलना चाहते हैं।

अन्तःपुर में राजमाता एवं राज्ञी का प्रवेश होता है। शिवराज अन्तःपुर में जाकर अपनी माता को सभी समाचार सुनाते हैं, किन्तु उनका हृदय आशंकित रहता है। वे अपनी माता से कहते हैं कि यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो भी उनके कार्य को चलाती रहें। तत्पश्चात् मंत्रणागृह में व्यवस्था निश्चित कर सभी लोग चले जाते हैं।

<u>पंचम अङ्क :-</u>

शिवराज यवन सेनापति का वधकर बीजापुर के सैनिकों को परास्त कर देते हैं, साथ ही पन्हाला और कुन्नार आदि दुर्ग भी जीत लेते हैं। विशालगढ़ दुर्ग के समीप मुगल सैनिकों के आ जाने पर बाजी भी कहते हैं कि आप दुर्ग में

पहुँचकर पाँच तोपों के माध्यम से उपस्थिति की सूचना दें। शिवाजी सुरक्षित पहुँच जाते हैं, किन्तु बाजी युद्ध में मारे जाते हैं। उधर दिल्ली से समाचार प्राप्त होता है कि औरंगजेब अपने पिता को बन्दी बनाकर सिंहासनारूढ हो गया है। राजमद से उद्दण्ड होकर वह दक्षिणाधिपति को चाकण दुर्ग पर आक्रमण हेतु भेज रहा है। गुप्तचर को आगे की गतिविधि को जानने हेतु भेजकर शिवाजी कार्य के निरीक्षण हेतु जाते हैं।

षष्ठ अङ्क:-

सिंहगढ़ दुर्ग में मन्त्रियों का प्रवेश होता है। मोरोपन्तपिङ्गले प्रधानमंत्री बनते हैं। शिवाजी कहते हैं कि शक्तिशाली बीजापुर नरेश से तो विरोध समाप्त हो गया है परन्तु उससे प्रबल एक नवीनयुद्ध मुगलसम्राट् से उपस्थित हो रहा है। दिल्ली से यवन तपस्वी आकर बताता है कि दिल्ली सम्राट् ने आपको (शिवाजी को) पकड़ने हेतु दक्षिण के राज्यपाल को आदेश दिया है। इस समय वह आप के महल में ही अपने सेवकों के साथ भोग-विलास में लिप्त है उसके (राज्यपाल के) नाश हेतु शिवराज वर यात्रा का छद्म रचाते हैं। पच्चीस वीरों के साथ स्वयं शिवराज सदस्य रूप में प्रवेश करते हैं। यवन तपस्वी रूपी दूत को मुगल सेनापति के पास वरयात्रा के अनुमति पत्र हेतु भेजा जाता है, इस प्रकार सभी तैयारी हेतु चले जाते हैं।

सप्तम अङ्क :-

दो मुगलसेनापति एक -दूसरे से बात करते हैं कि पराजित होकर दक्षिण का राज्यपाल रात्रि के अन्धकार में भाग गया है। प्रात: काल उसकी सेना द्वारा घेर लिए जाने पर शिवराज ने तोपों के प्रहार से उसे नष्ट कर दिया है। अब शिवराज को पकड़ने के लिए मुगलबादशाह ने समर विजयी जयसिंह को नियुक्त किया है। शिवाजी द्वारा भेजे गये रघुनाथपन्त एवं महाराज के बीच सन्धिवार्ता चल रही है तथा सन्धि का निर्णय लेने के लिए शिवराज स्वयं वहाँ उपस्थित है। पुरन्दर दुर्ग में शिवाजी के प्रवेश करते ही मुगल सैनिक उन्हें घेर लेते हैं। शिवराज आश्चर्य चकित हो जाते हैं। उदयसिंह उन्हें राजशिविर में ले जाते हैं, जहाँ रघुनाथपन्त भी जयसिंह के साथ उपस्थित हैं।

जयसिंह संधि हेतु संधिपत्र हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत करता है। सार्वभौम बहुमूल्य वस्त्राभूषण राजाज्ञा भेजते हैं। नर्तकियाँ नृत्य से मनोरंजन करती है, किन्तु शिवराज का हृदय आशंकित है। दोनों शयन हेतु चले जाते हैं।

अष्टम अङ्क :-

शिवराज मुगल-सम्राट् से मिलने हेतु उत्सुक हैं, किन्तु दरबार में उचित स्वागत नहीं होता है। जयसिंह का पुत्र रामसिंह दिल्ली सम्राट् को अपने सामाजिक व्यवहार से अपरिचित कहकर शिवाजी को शान्त करना चाहता है, किन्तु छोटे सामन्त के समान स्थान मिलने से अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं। महल में स्थित शिवराज को यह ज्ञात होता है कि उसे बन्दी बनाया गया है और उनका स्वच्छन्दविचरण निषिद्ध है तथा चारो तरफ से महल सैनिकों से घिरा हुआ है।

शिवराज इस विपत्ति से निकलने हेतु उपाय सोचते हैं। अपने आगमन पर पर-चित क्षत्रियों के घर उपहार स्वरूप मिठाई के बड़े-बड़े टोकरे भेजने की योजना बनती है, उन्हीं टोकरों में से किसी एक में बैठकर शिवराज बाहर निकल जाते हैं। रोगाक्रान्त का बहाना बनाकर वहाँ हीरोजी कुछ देर शिवराज रूप में स्थित रहता है, फिर संकेत स्थान पर चला जाता है। शिवराज को अकेले निद्रमग्न देखकर आश्चर्यचकित मुगलरक्षक जब पास आकर देखते हैं तो वहाँ कोई नहीं मिलता है।

नवम अङ्क :-

अन्तर्गृह में राजमाता का प्रवेश होता है। राजमाता को सूचना मिलती है कि मुगल अधिकारियों को धोखा देकर देश-देशान्तर का भ्रमण करते हुए आप का पुत्र करवीर क्षेत्र में आने वाला है। शिवाजी के राज्याभिषेक हेतु सह्य दुर्ग पर अधिकार कर लिया जाता है। साधुवेश में आकर शिवराज माता को प्रणाम करते हैं। माता, शिवाजी को महाराष्ट्र प्रदेश को जीतने का आदेश देती हैं। उधर दिल्ली सम्राट् "औरंगजेब" जयसिंह पर यह आरोप लगाते हुए पदच्युत कर देता है कि उसने शिवराज के साथ पक्षपात किया है। इधर जयसिंह अपनी भूल मानकर प्राण त्याग देता है। शिवाजी अन्य दुर्गों को जीतने हेतु उपाय करते हैं। सिंहगढ़ दुर्ग विजय हेतु तानाजी पुत्र के विवाह का कार्यभार शिवाजी की माता (जीजाबाई) के ऊपर छोड़कर प्रस्थान करते हैं। मुगलसम्राट् चहोत के दो राज्यों का चतुर्थांश ग्रहण करने हेतु शिवराज को अधिकार प्रदान करता है। शिवराज इसका लाभ प्राप्त कर सम्पूर्ण महाराष्ट्र प्रान्त को अपने अधिकार में कर लेते हैं।

दशम अङ्क :-

अन्ततः पुनः शिवराज का महाराष्ट्र प्रदेश पर अधिकार हो जाता है। सिंहगढ़ दुर्ग की विजय हेतु गये ताना जी वीर गति को प्राप्त होते हैं। अन्य मित्रों की सहायता से अन्यदुर्ग भी विजित कर लिये गये हैं।काशी निवासी साक्षात् वेदमूर्ति गंगाभट्ट राज्याभिषेक सम्पादित कराने हेतु आते हैं। इसके बाद राज्याभिषेक समारोह होता है। वैतालिक व वीणावादक मंगल गीत गाते हैं। सभी ब्राह्मणों,श्रेष्ठ वीर सैनिकों को बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण उपहार स्वरूप दिये जाते हैं। अन्त में गुरूरामदास का प्रवेश होता है, वे शिवाजी से वरदान माँगने हेतु कहते हैं। शिवाजी गुरूरामदास से भारत वर्ष की हर प्रकार से सुख-समृद्धि की कामना करते हैं।

संयोगितास्वयंवरम्

श्रीमूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा विरचित "संयोगितास्वयंवरम्" नामक नाटक श्रृङ्गाररस प्रधान है। इस नाटक का प्रकाशन सन् 1928 ई0 में "दि बड़ौदा प्रिंटिंग प्रेस" से किया गया था। इस नाटक में सात अङ्क हैं। प्रस्तुत नाटक में दिल्ली के प्रसिद्ध अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान एवं कन्नौजाधिप जय-चन्द की अति लावण्यमयी पुत्री संयोगिता की प्रेम कथा का वर्णन किया गया है।

प्रथम अङ्क:-

नान्दी के पश्चात प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि कन्नौज नरेश जयचन्द ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया है। जयचन्द अपने मंत्रीगण के साथ बैठे हैं। विचार विमर्श से ज्ञात होता है कि राजसूय यज्ञ की सभी तैयारियाँ

पूरी हो गयी हैं। सभी राजाओं का आगमन होता है। मंत्री सुमति जयचन्द से कहता है कि पृथ्वीराज को राजसूययज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रण हेतु पत्र दिया जाय। कन्नौज नरेश पत्र लिखवाता है कि पृथ्वीराज राजसूय यज्ञ में आकर नरेश के यहाँ प्रतिहारी का कार्य करे अन्यथा युद्ध के लिये तैयार हो जाय। पत्रोंत्तर में पृथ्वीराज विरोधपत्र भेजते हैं। क्रोधित होकर जयचन्द पृथ्वीराज तथा उसके मित्र समरसिंह के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करता है। अपने भाई बालुकाराय को सेनापति बनाकर युद्ध हेतु भेजता है। बालुकाराय दस हजार ;; सेना के साथ युद्ध हेतु प्रस्थान करता है।

राजसूय यज्ञ के साथ ही कन्नौजाधिप ने अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी आयोजित किया है। संयोगिता अपने विवाह की बात सुनकर अप्रसन्न है। जयचन्द, संयोगिता की उदासीनता के कारण दुःखी है। मंत्री सुमति सलाह देता है कि बसन्त का समय है, राजकन्या संयोगिता के मनोभाव को जानने के लिए बसन्तोत्सव का आयोजन कराना चाहिए। जयचन्द इस सुझाव से सहमत होकर आज्ञा देता है कि उद्यान में संयोगिता, समान अवस्था वाली सखियों के साथ बसन्तोत्सव मनाये एवं महारानी छिपकर उनके वार्तालाप आदि के द्वारा उसके मनोविकार को जानें।

<u>द्वितीय अङ्क</u> :-

संयोगिता अपनी सखियों के साथ उद्यान में प्रवेश करती है, वहाँ सखियाँ कहती है कि तुम्हारे विनोद के लिए पिता ने बसन्तोत्सव का आयोजन किया है। वहाँ प्रसन्न मुख वाली सखियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रीड़ायें उल्लासपूर्वक करती हैं। नृत्य क्रीड़ा आदि के बाद संयोगिता कामदेव पूजन हेतु जाती है। पूजन की

समाप्ति पर संयोगिता, दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान की कामना में मूर्च्छित हो जाती है। चातुरिका द्वारा मूर्छा का कारण पूछने पर संयोगिता अपने अनुराग को प्रकट करती है। चातुरिका समझाती है कि पृथ्वीराज कन्नौज नरेश का शत्रु है। चातुरिका यह भी बताती है कि उसके प्रति प्रेम भावना आप के लिए अनुचित है। महारानी वृक्षों की ओट से सभी बात सुनती है। महारानी भी बाद में संयोगिता को समझाती हैं, किन्तु संयोगिता अपनी बात पर दृढ़ संकल्प है। महारानी जयचन्द को यह समाचार बतलाती हैं, जिसको सुनकर कन्नौजाधिप जयचन्द क्रोधित होकर संयोगिता को गंगातट पर नवनिर्मित महल में आजीवन निवास हेतु आदेश देता है, जिसे संयोगिता हर्षपूर्वक स्वीकार कर लेती है।

तृतीय अङ्क :-

अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि जयचन्द द्वारा युद्ध हेतु भेजा गया बालुकाराय शत्रु सेना द्वारा मार डाला गया तथा सैनिक बन्दी बना लिये गये हैं। भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर कन्नौज नरेश जयचन्द राजसूय यज्ञ स्थगित कर देता है। इधर पृथ्वीराज का गुप्तचर दो विरोधी समाचार देता है। कन्नौज प्रान्त से आया हुआ गुप्तचर वीरसिंह बताता है कि जयचन्द की अतिलावण्यमयी पुत्री संयोगिता पृथ्वीराज के प्रति अनुरक्त है जिसे जानकर जयचन्द ने गंगातट पर नवनिर्मित महल में आजीवन रहने का दण्ड दिया है। दूसरे द्वारा यह समाचार मिलता है कि मुहम्मद गोरी पुनः आक्रमण करने के लिए उद्यत हो रहा है। ये दोनों समाचार पृथ्वीराज को अन्तर्द्वन्द्व में डाल देते हैं कि एक तरफ संयोगिता है, जो उसी के कारण इस दशा को प्राप्त हुई है और दूसरी ओर यवन आक्रमणकारी से देश रक्षा।

कन्नौज से अन्तःपुर की प्रधान परिचारिका कर्णाटकी, मदनिका के माध्यम से पृथ्वीराज को संयोगिता के प्रेम पत्र के साथ एक पत्र को भेजती है। मदनिका पत्र के साथ पृथ्वीराज के दरबार में जाती है। पत्र के माध्यम से पृथ्वीराज अपने शीघ्र आगमन का कर्णाटकी को आश्वासन देता है, इसके बाद पृथ्वीराज पटरानी इच्छिनी के पास जाता है तथा कन्नौज प्रयाण के विषय में बताकर उन्हें राजभार सौंप देता है।

मंत्रणागृह में मंत्रीगण, विदूषक तथा कविचन्द के साथ विचार-विमर्श होता है जिसमें निर्णय लिया जाता है कि इस समय कन्नौजपर आक्रमण उचित नहीं है। कविचन्द कवि होने के कारण कहीं भी भेजे जा सकते हैं। अतः यह योजना बनायी जाती है कि कविचन्द के सेवक के रूप में छद्मवेष धारण कर पृथ्वीराज और अन्य मंत्रीगण कन्नौज-प्रान्त में प्रवेश करें। सभी इस योजना से सहमत होते हैं। समर सिंह को मुहम्मद गोरी के आक्रमण से देश रक्षा के लिए दिल्ली में ही छोड़ दिया जाता है।

<u>चतुर्थ अङ्क</u> :-

पूर्व योजनानुसार पृथ्वीराज व अन्य मंत्रीगण कविचन्द के सेवक के रूप में जयचन्द के दरबार में आते हैं। सुमति के द्वारा जयचन्द को सूचना मिलती है कि पृथ्वीराज कन्नौज -प्रान्त में प्रवेश किया है। कवि के सेवक पर संदेह होने के कारण कर्णाटकी को बुलाया जाता है जो दिल्ली नरेश पृथ्वीराज को पहचानते हुए भी रहस्य को उद्घाटित नहीं करती है, बल्कि इसके विपरीत पृथ्वीराज को कुछ संकेत करती है।

कन्नौज नरेश जयचन्द, कविचन्द और सेवकों को एक महल में रहने की व्यवस्था करते हैं, जहाँ कर्णाटकी कविचन्द से मिलने के बहाने आती है तथा संयोगिता से मिलने का उपाय बताती है। पृथ्वीराज युद्ध हेतु उद्यत होता है किन्तु कविचन्द मना कर देते हैं एवं गुप्त रूप से ही मिलने को उचित समझते हैं। गुप्त मिलन के साथ किसी भी सम्भावित युद्ध के लिए सेनापति कान्ह तथा लङ्गरीराय को तैयार रहने के लिए कहा जाता है। योजनानुसार अर्धरात्रि में पृथ्वीराज, वीरसिंह के साथ संयोगिता की खोज में भागीरथी तट पर जाता है।

पंचम अङ्क :-

जयचन्द की पुत्री; पृथ्वीराज के विरह में अत्यन्त व्याकुल है। कर्णाटकी के आश्वासन देने पर भी कि पृथ्वीराज उससे मिलने के लिए आ रहा है, उसे सान्त्वना नहीं मिलती है, वह उसे परिहास समझती है। अर्धरात्रि में पृथ्वीराज महल में पहुँचता है। कर्णाटकी; पृथ्वीराज और संयोगिता को परिणय सूत्र में बाँधती है, जिससे संयोगिता प्रसन्न होती है।

षष्ठ अङ्क :-

रात्रि व्यतीत करने के उपरान्त पृथ्वीराज ने दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दियह है। संयोगिता उनका वियोग एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर पा रही है। संकेत काल के समाप्त हो जाने पर वह और भी व्याकुल हो जाती है। कर्णाटकी भिन्न-भिन्न प्रकार से आश्वासन देने के बावजूद भी असफल रहती है। पूर्णतैयारी के साथ पृथ्वीराज, संयोगिता को लेने हेतु आते हैं। कर्णाटकी और

सारी सखियाँ भारी हृदय से विदा की तैयारी करती हैं। प्रस्थान करने के पूर्व कर्णाटकी अपना रहस्य बताती है कि वह कर्णाटक की राजपुत्री है, पृथ्वीराज के प्रेम के कारण वह नर्तकी बनी है, वह शेष जीवन उसके {पृथ्वीराज के} संरक्षण में व्यतीत करना चाहती है। पृथ्वीराज पूर्ण वृतान्त से अवगत होकर कर्णाटकी को अन्त:पुर की प्रधाननियुक्त करता है तथा सभी सखियों को विवाहोत्सव में सम्मिलित होने हेतु आमन्त्रित करता है। इसके उपरान्त पृथ्वीराज, संयोगिता को लेकर प्रस्थान कर देता है।

सप्तम अङ्क :-

अङ्क के प्रारम्भ में रामगुरू पुरोहित और कविचन्द का प्रवेश होता है, दोनों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि जयचन्द ने दिल्ली पर चारों ओर से आक्रमण किया है, रामगुरू चिन्तित है, किन्तु कविचन्द {चन्दवरदाई} बताते हैं, कि जयचन्द पुरानी शत्रुता को भुलाकर संयोगिता का विवाह पृथ्वीराज से करने को तैयार हैं, अत: चिन्ता की कोई बात नहीं है। कविचन्द से यह बात सुनकर पृथ्वीराज अति प्रसन्न होते हैं तथा संयोगिता को भी यह शुभ समाचार सुनाते हैं।पृथ्वीराज एवं संयोगिता का राजदरबार में आगमन होता है, जहाँ कन्नौज नरेश जयचन्द एवं दिल्लीश्वर पृथ्वीराज एक दूसरे से प्रसन्नता पूर्वक मिलते हैं। सभी वीर योद्धाओं को पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। कर्णाटकी को अन्त:पुर का प्रधान नियुक्त किया जाता है। अन्त में एक वृद्ध तपस्वी का आगमन होता है, जो राजरानी को आशीर्वाद देता है। अन्त में भारतवाक्य कहा जाता है।

खण्ड -2

नाटकत्रयी में लक्षणों की सङ्गति

त्रिविधा च शास्त्रस्य प्रवृत्ति: उद्देश्यो, लक्षणं परीक्षा च। इस सिद्धान्त के अनुसार शास्त्र की परीक्षा हेतु क्रमश: प्रवृत्ति , उद्देश्य एवं लक्षण आते हैं। यहाँ पर हम नाटक के लक्षण का उल्लेख करते है-

ख्याताद्यराजचरितं धर्मकामार्थसत्फलम् ।
साङ्कोपाय-दशा-सन्धि-दिव्याङ्गं तत्र नाटकम्।।[1]

उन [रूपकभेदों] में से धर्म, अर्थ और काव्य [इन तीन] फलों वाला अङ्क उपाय दशा एवं सन्धि से युक्त देवता आदि [प्रधान नायक] जिसमें सहायक हो, इस प्रकार के पूर्व प्रसिद्ध राजाओं का चरित [अभिनय] नाटक कहा जाता है। नाटक के लक्षण हेतु अङ्क, उपाय[अर्थप्रकृति] दशा[अवस्था] एवं सन्धि आवश्यक तत्त्व हैं।

आचार्य धनञ्जय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं-वस्तु, नेता एवं रस।

"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदक:"।[2]

इसमें वस्तु का महत्त्व अधिक होता है। इसे ही कथावस्तु या इतिवृत्त कहते हैं। नाटकों में केवल पूर्वकाल के प्रसिद्ध राजाओं को हीनायक के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, वर्तमान एवं भविष्य के राजाओं को नहीं। अभिनवभारतीकार

---

1. हिन्दी नाट्यदर्पण-सूत्र 4 [रामचन्द्र-गुणचन्द्र कृत]
2. दशरूपक -1/210

अभिनवगुप्त ने भी प्रथम अध्याय में इसी विषय पर विवेचना की है। भरत के नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में वर्णित है-

तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः ।[1]

इसमें इन्द्र की सभा के देवताओं द्वारा दैत्यों पर विजय प्राप्त करने की बात लिखी है। कुछ टीकाकारों के अनुसार अपने स्वामी, राजा आदि को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी उनके चरित का भी अभिनय दिखलाना चाहिए, परन्तु अभिनव गुप्त इसे अस्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त नाटककारों के मतों का अनुसरण कर ही याज्ञिक जी ने अपने नाटक की कथावस्तु हेतु ऐतिहासिक पुरुषों को ही चुना है,जो अपने महनीयकृत्यों से सम्पूर्ण भारत में याद किये जाते हैं, ये नायक हैं"छत्रपतिशिवाजी,राणाप्रताप सिंह एवं पृथ्वीराज चौहान। इन नायकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्ररक्षा हेतु समर्पित कर दिया। इन तीनों प्रसिद्ध वीर पुरुषों ने मध्य कालीन भारतीय इतिहास के समय विदेशी आक्रान्ताओं से राष्ट्र की रक्षा हेतु युद्ध किया था जिसमें सफल भी हुए। नायक के चार प्रकार के भेद बतलाये गये हैं।

उद्धतोदान्त ललित-शान्ता धीरविशेषणाः ।
वर्ण्याः स्वभावाश्चत्वारो नेतृणां मध्यमोत्तमाः।।[2]

---

1. नाट्यशास्त्र 1/57
2. हिन्दी नाट्य दर्पण सूत्र 5

अर्थात् नायकों मे धीर विशेषण से युक्त उद्धत, उदात्त,ललित एवं प्रशान्त चार प्रकार के स्वभाव को उत्तम एवं मध्यम दो रूपों में वर्णन किया जाना चाहिए अधममेंनहीं।

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में धीरोदात्त नायकों की प्रतिष्ठा की है। शिवाजी एवं राणाप्रताप सिंह इसी तरह के धीर, गम्भीर वीर हैं एवं पृथ्वीराज का चरित प्रेम के प्रसंग से युक्त होने पर भी उदात्त गुणों से युक्त हैं।

नाटक के लिए अङ्क भेद का निरूपण होना चाहिए, जो कम से कम पाँच एवं अधिक से अधिक दस अङ्कों का होना चाहिए। याज्ञिक जी ने इन्हीं नियमों का अनुसरण करते हुए संयोगितास्वयंवरम् को सात अङ्कों में,प्रतापविजयम् को नौ अङ्कों में एवं छत्रपतिसाम्राज्यम् को दस अङ्कों में निबद्ध किया है। प्राचीन आचार्यों के मतानुसार नाटक का लक्षण बतलाते समय कुछ बातों का वर्णन नहीं करना चाहिए, जिनमें सबसे मुख्य है प्रधान नायक का अभिघात। अभिघात का अर्थ है रक्त प्रभावित कर देने वाला प्रहार। जैसा कि याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में नायकों का प्रयोग करते समय किया है। उन्होंने पृथ्वीराज को मुहम्मद गोरी द्वारा कैद तक किये जाने का वर्णन नहीं किया है। और अपने नाटक का अन्त पृथ्वीराज एवं संयोगिता परिणय तक ही किया है। संस्कृत नाटक में वीर एवं शृंगार रस को ही अङ्गी रस के रूप में प्रयोग करना चाहिए, जैसा कि याज्ञिक जी ने "छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं प्रतापविजयम्" नाटक में वीर रस एवं संयोगितास्वयंवरम्

में श्रृंगार रस को अङ्गी रस के रूप में प्रयुक्त कर विधिपूर्ण आदर्शों का पालन किया है।

नाटकीय कथावस्तु के लिए पाँच प्रकार के उपाय (अर्थप्रकृति) बतलाये गये हैं। आचार्य धनञ्जय एवं विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है-प्रयोजन सिद्धि हेतव:। अर्थात् जो प्रयोजन की सिद्धि के कारण हो। ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य1 याज्ञिक जी के नाटकों में मुख्यरूप से दो प्रकार के ही अर्थप्रकृतियों का प्रयोग मिलता है। वे है- बीज एवं कार्य । बीज ही नायक के मुख्यफल का कारण होता है। कार्य का अर्थ फल होता है। जिस फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है, जो साध्य रूप होता है उसे कार्य कहते हैं। याज्ञिक जी के नाटकों में बीज रूप में स्वतन्त्रता प्राप्ति को अपनाया गया है। कार्य की सिद्धि के लिए पृथ्वीराज चौहान, राणाप्रतापसिंह एवं शिवाजी द्वारा विदेशीआक्रमणकारियों के साथ अनवरत युद्ध आदि किये गये यत्न है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के फल के लिए जितने ही यत्न किये गये, वे कार्य हैं। इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने नाटकों की कथावस्तुओं में दो प्रकार के उपायों (अर्थप्रकृतियों) का विशेषरूप से उल्लेख किया है।

नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उनकी प्रगति के लिए पाँच प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ ही नाटक की गतिविधि को सूचित करती हैं। ये है- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं आरम्भ।

---

1. दशरूपक 1/19, साहित्यदर्पण 6/70-71

याज्ञिक जी के नाटकों में सभी प्रकार की अवस्थाएँ मिलती है, क्योंकि याज्ञिक जी के वीर रस प्रधान "छत्रपतिसाम्राज्यम्" एव प्रतापविजयम् में शिवाजी एवं राणाप्रताप सिंह द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना जैसे फल की सिद्धि के लिए उत्सुकता दिखलाई गयी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शिवाजी एवं राणाप्रताप सिंह वेगपूर्वक प्रयत्न करते हैं एवं अनुकूल परिस्थिति होने पर भी उनकी फलप्राप्ति में विघ्न उत्पन्न होता है, और इन विघ्नों के हट जाने के कारण स्वतन्त्रता की प्राप्ति निश्चित होती दिखाई देती है। अन्ततः फल की प्राप्ति ‖स्वतन्त्रताप्राप्ति‖ हो जाती है। इसी प्रकार "संयोगितास्वयंवरम्" नामक शृंगार प्रधान नाटक में पृथ्वीराज को अनेक विघ्नों के बाद भी अपने उद्देश्य संयोगिता से विवाह-सम्बन्ध में सफलता प्राप्त होती है। इस प्रकार याज्ञिक जी के नाटकों में सभी पाँचों प्रकार की अवस्थाओं का प्रयोग क्रमशः किया गया है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकीय कथावस्तु हेतु पाँच प्रकार की सन्धियों का होना आवश्यक होता है। ये सन्धियाँ पाँचों प्रकार की अवस्थाओं एवं उपायों ‖अर्थप्रकृतियों‖ के सम्बन्ध से होती हैं। ये सन्धियाँ है-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण। याज्ञिक जी के नाटकों में सन्धियों का प्रयोग सरलता से किया गया है, इनके नाटकों में सभीसन्धियाँ मिलती है। मुख आदि सन्धियों का प्रयोग यथास्थान नियमानुसार किया गया है।

जहाँ तक नाटकों में पात्रों की बात का प्रश्न है ? नाटक में एक मुख्य नायक एवं तीन या चार गौण नायक के रूप में होना चाहिए। याज्ञिक जी उक्त नियम का अनुसरण कर "छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक में मुख्यनायक के रूप में शिवाजी

एवं गौण नायक के रूप में औरंगजेब, जयसिंह गुरु रामदास आदि तथा "प्रताप-विजयम्" नाटक में मुख्य नायक के रूप में राणाप्रताप सिंह एवं गौण रूप में मुख्य अकबर, मानसिंह, झालामान सिंह आदि और "संयोगिता स्वयंवरम्" नाटक में मुख्य नायक के रूप में पृथ्वीराज चौहान एवं गौणरूप में जयचन्द , संयोगिता, मुहम्मदगोरी आदि का उल्लेख किया है। इस प्रकार याज्ञिक जी द्वारा रचित तीनों नाटक नाट्य शास्त्रीय नियमों एवं लक्षणों की परिधि में ही आबद्ध हैं और नाट्य की रचना में उन्होंने शास्त्रीय परम्परा का पालन किया है।

0 0 0
0

खण्ड - 3

नाटक त्रयी की ऐतिहासिकता

काव्य या नाटक में इतिवृत्त ही मूल आधार होता है उसी को लेकर कविगण काव्य या नाटक की रचना करने में प्रवृत्त होते हैं चरित्र प्रधान कृतियों मे इतिवृत्त प्राय: ऐतिहासिक होता है। साहित्यदर्पण के रचयिता कविराज विश्वनाथ ने ऐतिहासिक इतिवृत्त से सम्बद्ध अपनी आस्था प्रकट की है।

"इतिहासोद्भवं वृत्तम् अन्यद् वा सज्जनाश्रयम्"।[1]

कविराज विश्वनाथ ने प्रस्तुत कथन में इतिवृत्त के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

इतिवृत्त ऐतिहासिक होना चाहिए या किसी सज्जन पुरुष को लक्ष्य करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए। काव्य या नाटक में नायक की प्रधानता होती है। अत: नायक की स्थिति के विषय में प्रकाश डालते हुए आचार्य धनञ्जय "दशरूपक" में लिखते हैं कि इतिवृत्त में रमणीय गुणों से युक्त धीरोदात्त, कीर्ति की लालसा रखने वाला , अत्यन्त उत्साही , तीनों वेदों का रक्षककर्ता, पृथ्वी का पालन कर्त्ता प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न कोई राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष नायक होना चाहिए इस प्रकार प्रस्तुत इतिवृत्त को इतिहास प्रसिद्ध इतिवृत्त का आधिकारिक कथा-वस्तु बनाना चाहिए।

---

1. साहित्यदर्पण 6/118

अभिगम्यगुणैर्युक्तो, धीरोदात्त: प्रतापवान् ।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यात्राता महीपति: ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायक: ।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं ' वृत्तमत्राधिकारिकम् ।।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं आचार्य धनञ्जय भी नाटक की रचना के लिए ऐतिहासिक इतिवृत्त की ओर ही संकेत कर रहे हैं। संस्कृत साहित्य के नाटकों के अनुसरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उनमें प्राय: ऐतिहासिक इतिवृत्त ही प्रयुक्त हुआ है और ऐतिहासिक इतिवृत्त वाले नाटकों का ही अधिक आदर हुआ है। ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित नाटकों की अपेक्षा अन्य इतिवृत्त पर आधारित नाटक कम प्रसिद्ध हुए हैं।

भास, कालिदास , भवभूति आदि प्रख्यात नाटककारों ने अधिकाधिक ऐतिहासिक इतिवृत्त का ही चुनाव किया है। इन महाकवियों ने ऐतिहासिक इतिवृत्त को नाटक के लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये है। ऐतिहासिकइतिवृत्त की नाटक में प्रधानता के अनेक कारण हैं । नाटक के नायक का कार्य प्राय: समाजविरोधी ताकतों का उन्मूलन कर धर्म एवं मर्यादा की रक्षा करना होता है। अत: 'सहृदय प्रस्तुत कर्ता को उसके हर एक कार्य में पूर्ण निष्ठा एवं उत्सुकता बनी रहती है, उसका यह उद्देश्य होता है कि प्रिय

---

1. दशरूपक - 3/22-23

नायक आसुरी शक्तियों का नाश करे। इस प्रकार नायक के कार्य को देखकर उसके हृदय में सहज ही आनन्द के भाव भर जाते हैं, एवं परिचित इतिवृत्त होने के कारण सहृदय सामाजिक जन को रसानुभूति लेने में बाधा नहीं पड़ती है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य के महाकवियों की नाटक रचना में ऐतिहासिक इतिवृत्त की योजना के पीछे एक निश्चित मानसिकता रही है जो कि उन्हें निश्चित लक्ष्य प्राप्ति हेतु सहायता प्रदान करती रही है।

संस्कृत-साहित्य के सुप्रतिष्ठित पूर्व कवियों से सम्प्रभावित होकर कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने भी अपने नाटक के लिए ऐतिहासिक कथावस्तु को मूलआधार के रूप में ग्रहण किया है।प्रस्तुत नाटकों में याज्ञिक जी ने अपने समय के भारतप्रसिद्ध ऐतिहासिक नायक वीर शिवराज, राणाप्रताप सिंह एवं पृथ्वीराज चौहान को नेता के रूप में चुना । इससे उन्होंने जहाँ एक ओर श्रेष्ठ नाटकीय परम्परा का अनुसरण किया है वहीं दूसरी ओर आधुनिक भारतीय नायकों को उपन्यस्त कर नाटक रचना में नवीनता प्रवर्तित की है। अतः कथावस्तु के चयन के विषय में इनकी प्रतिभा, मौलिकता एवं विद्वत्ता श्लाघ्य रही है। इनकी ऐतिहासिकता नाटक को सफलरूप में प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है।

"छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक की ऐतिहासिकता

मानवजीवन-दर्शन में व्यक्तित्व की स्थिति सर्वोपरि है। उच्चकोटि का व्यक्तित्व केवल वर्तमान तक सीमित न रहकर वह मानव हृदय -पटल पर इस

प्रकार अंकित हो जाता है कि भावी समाज और मानवता को प्रभावित करता है। भारतीय इतिहास में वर्णन किये गये वीर शिवराज का व्यक्तित्व उपर्युक्त कसौटी पर खरा उतरने योग्य है। शिवराज के अदम्य उत्साह , साहस,अलौकिक अनुभव, दिव्यप्रभाव एवं गुणों से निर्मित अद्वितीय ... व्यक्तित्व ने वर्तमान को तो प्रभावित किया ही, आने वाली पीढ़ी के लिए एक आदर्श उदाहरण बनकर देशकाल की सीमाओं से अपरिचित न रहा ।

आधुनिक भारत में जिन महापुरूषों ने जन्म लिया एवं भारत माता की सेवा कर न केवल स्वयं को अपितु समस्त भारतवासियों को कृतार्थ किया, उन भारत माता के सुपुत्रों में वीर,प्रतापी, राष्ट्र सेवानुरक्त छत्रपति शिवाजी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये भारतीयता के सच्चे संरक्षक, मानवता के पुजारी एवं स्वतन्त्रता के सजग प्रहरी हैं।

ऐतिहासिक कथावस्तु में नायक की प्रकृति एवं नाटक के प्रमुख रस के प्रतिकूल जो कोई विषय प्रस्तुत हो जाता है कवि उसे इस प्रकार परिवर्तित कर देता है कि जिससे नायक का वह दोष न रहने पाये एवं रस विधायक तत्त्व हट जाय । इस प्रकार आचार्य धनञ्जय ने लिखा है-

> यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा ।
>
> विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत ।।[1]

---

1. दशरूपक 3/24

"छत्रपति-साम्राज्यम्" नामक नाटक केप्रणेता कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने आचार्य धनञ्जय के उपर्युक्त निर्देश का विधिवत पालन किया है । याज्ञिक जी ने शिवाजी के उदात्त चरित की रक्षा के लिए एवं वीर रस की अभिव्यंजना के लिए यदि कोई प्रतिकूल विषय प्रस्तुत हुआ है तो या तो उसका परित्याग कर दिया है या उसमें परिवर्तन कर उसे प्रस्तुत किया है। इस प्रकार याज्ञिकजी ने शिवाजी के चरित को निबद्ध किया है।

शिवाजी के ऐतिहासिक कथावस्तु के विषय पर इतिहासकारों नेसर्वप्रथम महाराष्ट्र की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है, किन्तु "छत्रपति-साम्राज्यम्" में इन विषयों की चर्चा न कर कवि ने मुख्य विषय शिवराज के शौर्य को प्रतिपादित किया है। अतएव याज्ञिक जी ने वीर रस व्यञ्जनापरक कथानकों को चुनकर नाटक की रचना की है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों में जीजाबाई को अत्यन्त ही धार्मिक'प्रवृत्ति का बतलाया गया है, जिसका प्रभाव शिवाजी पर पड़ा है। कवि ने इस विषय को अत्यधिक महत्त्व दिया है"छत्रपतिसाम्राज्यम्" में प्रस्तावना के बाद शिवाजी अपने प्रियमित्र एसाजी, तानाजी, बाजी के साथ'प्रवृत्त होते हैं। देश की दुर्दशा पर चिन्तित एवं खिन्न होकर निवारण हेतु भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। शिवाजी कहते हैं कि साहस में ही श्री का निवास है, निर्भीक व्यक्तित्व ही कुछ करने में समर्थ हो पाता है। इसलिए साहस के साथ स्वातन्त्र्य युद्ध में जुटना

चाहिए, किन्तु इतिहास में यह बतलाया गया है कि शिवराज महाभारत एवं रामायण की कथाओं के श्रवण,राजनीति, रणचातुर्य आदि का ज्ञान प्राप्त किया था, एवं उन्हें सत्संग अत्यधिक प्रिय था। इस प्रकार उनके मन में स्वाधीन जीवन की लहर उठने लगी थी। उन्हें किसी मुस्लिम राजा के अधीन रहकर सुख की लालसा रुचिकर नहीं थी,स्वाधीन राजा होना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था।

"छत्रपतिसाम्राज्यम्" में कवि द्वारा जो यह कथा प्रस्तुत की गयी है कि अपनी भगिनी को ग्राम ले जाते समय बान्धवों समेत नेताजी को बीजापुर के सैनिकों ने मार डाला एवं उनकी भगिनी का अपहरण कर लिया है। ऐतिहा-सिक ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि कवि ने इस कथा कोप्रस्तुत कर शिवाजी के क्रोधोद्दीपन के लिए कल्पित किया है, जिसमें कवि को पूर्ण सफलता मिली है। इस घटना को सुनकर शिवराज कहते हैं कि क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हम लोग इस अपराध को कैसे सहन कर सकते हैं। अत: धर्मराज्य की स्थापना की घोषणा करते हैं जिसे सभी सहयोगी स्वीकार करते हैं।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार शिवाजी ने बीस वर्ष की अवस्था में युद्ध विद्या एवं जमींदारी चलाने की प्रथा का कार्य सीख लिया था। बाजी, एसाजी एवं ताना जी का शिवाजी के सहयोगियों के रूप में छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं ऐतिहासिक ग्रन्थो में समान रूप से वर्णनमिलता है।

"छत्रपति साम्राज्यम् " में वर्णन मिलता है कि शिवराज ने वाकण दुर्ग पर अधिकार कर लिया है एवं मृत नेता जी के सम्बन्ध में सूचना मिलती है कि यवन सैनिकों द्वारा मृतसमझ कर छोड़े गये नेताजी चेतना अवस्था को प्राप्त कर राजमाची दुर्ग में प्रविष्ट हो गये हैं और बीजापुर के सैनिकों ने उन्हें बन्दी बना लिया है। इतिहास में वाकण दुर्ग की कथा का तो वर्णन मिलता है लेकिन नेता जी से सम्बन्धित कथा कवि कल्पित है। "छत्रपति साम्राज्यम्" में वर्णन मिलता है कि धनाभाव के कारण शिवाजी को सैन्य संगठन में कठिनाई हो रही थी। अतः उन्होंने भवानी मन्दिर में भवानी देवी की आराधना की, उन्हें आकाशवाणी हुई कि निराश न हो , सहायकों द्वारा सिद्धि प्राप्ति होगी । शिवाजी को जीर्ण मन्दिर के कोने से अतुल धन की प्राप्ति होती है, जिससे वे विदेशी व्यापारियों से शस्त्रास्त्र खरीदते हैं, किन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह कथा इस रूप में नहीं पायी जाती है। इसके अनुसार शिवाजी भवानी देवी के अनन्य भक्त थे, उन्होने प्रतापगढ़ दुर्ग में भवानी देवी की मूर्ति स्थापित कराई थी, वहाँ वे बार-बार दर्शन हेतु गये एवं प्रचुर धन मिला।

कवि ने नाटक में शिवराज के गुरू रामदास को विधिवत् प्रस्तुत किया है वे स्वराज्य स्थापना के लिए शिवाजी को आशीर्वाद एवं मंगलकामना देते हैं एवं साथ ही साथ यह भी सूचित करते हैं कि प्रत्येक मठ में नवयुवकों को व्यायाम आदि से पुष्ट कर उनमें राष्ट्रिय भावना का संचार करें। जो कि भविष्य में युद्ध में सहायक होगें। इतिहास में गुरू रामदास के महनीय व्यक्तित्व एवं चरित्र का विधिवत निरूपण किया गया है एवं शिवराज के व्यक्तित्व के विकास में उनके योग-दान का सम्यक् मूल्यांकन किया गयाहै। इस प्रकार नाटक एवं इतिहास दोनों में

गुरुरामदास के महत्त्व का अपने-अपने ढंग से निरूपण हुआ है। शत्रुदल से युद्ध करते हुए वाजी को वीरगति का वर्णन दोनों ही स्थलों पर प्राप्त होता है।

ऐतिहासिक-ग्रन्थों एवं छत्रपतिसाम्राज्यम् दोनोंमेंमिलता है कि शिव-राज ने अत्यधिक साहस के साथ रात्रि में सम्राट् के मामा के महल में घुसकर उसकी उँगलियों को काट डाला एवं सहायता के लिए उपस्थित उसके पुत्र को शिवाजी के अंगरक्षकों ने मार डाला। जयसिंह से सम्बन्धित कथावस्तु इतिहास ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक मिलतो है। जयसिंह की व्यवस्थित युद्ध योजना एवं अपार सैन्य शक्ति के समक्ष मराठा सैनिक अभिभूत हो जाते हैं। इस प्रसंग में शिवाजी के अपमानित होने की भी बात कही गयी है।परन्तु कविवर याज्ञिक को धीरोदात्त नायक के लिए यह उचित प्रतीत नहीं होता। अत: परिवर्तन कर देते हैं। ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार जयसिंह से सन्धिवार्ता के पश्चात् मुगल दरबार में ले जाने पर शिवा जी को बन्दी बना लिया जाता है, लेकिन शिवराज मिठाई की टोकरी में बैठकर पुत्र सहित भाग निकलने में सफल हो जाते हैं। याज्ञिक जी ने नाटक में वर्णन किया है कि जयसिंह शिवराज को बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं, किन्तु जब वे मुगलसम्राट् के पास जाते हैं, तो उन्हें बन्दी बना लिया जाता है किन्तु चतुर शिव-राज द्वारा मिष्ठान की टोकरियाँ मगाई जाती हैं, जिसमें पहले पाँच टोकरियों में परिचित क्षत्रियों के घर मिठाई भेजवाते हैं, मुगलरक्षक निरीक्षण कर सन्तुष्ट हो जाते है कि इसमें कोई छल नहीं है, ऐसी स्थिति में शिवराज पुत्र सहित टोकरी में बैठ-कर निकल जाते हैं।

यहाँ पर याज्ञिक जी ने अत्यन्त ही चतुराई से शिवराज के उदात्त चरित की रक्षा की है। अन्त में वर्णन मिलता है कि शिवराज सन्यासी के वेष में अपनी माता के समीप पहुँचते हैं, राजमाता उनसे मिलकर पूर्ण आनन्द का अनुभव करती हैं। परन्तु छत्रपतिसाम्राज्यम् में शिवराज के पहुँचने के पूर्व प्रधानमंत्री द्वारा राजमाता को सूचना प्राप्त होती है कि छ: दुर्गों में से पाँच पर अधिकार कर लिया गया है। तत्पश्चात् शिवराज माता के पास पहुँचते हैं । शिवराज की विजय का वर्णन इतिहास एवं छत्रपतिसाम्राज्यम् दोनों में एक समान मिलता है।

शिवाजी के राज्याभिषेक का विस्तृत वर्णन ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं छत्र - पतिसाम्राज्यम् दोनों में मिलता है। छत्रपतिसाम्राज्यम् में नाटकीय विधान के अनुसार नाटक के अन्त में पूज्य गुरुवर श्री रामदास उपस्थित होकर राष्ट्रसमृद्धि हेतु आशीष के रूप में भरतवाक्य प्रस्तुत करते हैं। इतिहास ग्रन्थ के अनुसार शिवराज अपने सम्पू - र्ण राज्य वैभव को श्री रामदास के चरणों में समर्पित कर प्रतिनिधित्व में राजकार्य सम्पादित करते हैं।

इस प्रकार छत्रपति शिवाजी ने अपने अलौकिक अनुभव एवं विलक्षण कार्यों द्वारा यश अर्पित किया है। भारतीय इतिहास में उन्हें स्वर्णाक्षरों से अंकित किया गया है, इसमें सन्देह नहीं है कि शिवराज के विभिन्न कार्यकलापों और अनुकरणीय चरित ने भारतीयों के हृदय को आकृष्ट कर लिया हो। भारतीय जन-मानस की उनके प्रति अगाध श्रद्धा है। उनके साहस पूर्ण व्यक्तित्व एवं चरित्र के अध्ययन एवं स्मरण से यहाँ के लोगों को अपूर्व स्फूर्ति साहस एवं शौर्य की प्रेरणा प्राप्त हुई है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने "छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक की रचना ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर नाममात्र परिवर्तन के साथ की है और यह नाटक भारतीय इतिहास में अपना अद्वितीय स्थान रखता है।

"प्रतापविजयम्" नाटक की ऐतिहासिकता

"प्रतापविजय" नाटक के प्रणेता कविवर श्री याज्ञिक जी ने "छत्रपति-साम्राज्यम्" नाटक की ही भाँति इस नाटक में भी आचार्य धनन्जय के निर्देश का विधिपूर्वक पालन किया है। याज्ञिक जी ने राणाप्रताप सिंह के उदात्त चरित की रक्षा के लिए और वीररस की व्यन्जना के लिए आवश्यतानुसार ऐतिहासकि कथा-वस्तु से अपने नाटक की कथावस्तु में कुछ परिवर्तन कर दिया, जो कि नाटक की कथावस्तु के लिए आवश्यक भी है। यहाँ हम राणाप्रतापसिंह के ऐतिहासिक चरित को लेकर कवि द्वारा कल्पित वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं।

कविवर याज्ञिक जी ने प्रताप सिंह के वीर चरित को नाटकीय रूप प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम नान्दी की प्रस्तुति की है। यहाँ पर नाटक के अनुकूल कवि द्वारा मौलिक कथा वर्णित है। ऐतिहासिक कथावस्तु में इतिहासकारों ने सर्व-प्रथम मेवाड़ की स्थिति प्रकृति आदि का वर्णन करते हुए भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है। इतिहास ग्रन्थों में प्रतापसिंह के पूर्वजों का भी वर्णन मिलता है, किन्तु "प्रतापविजय" नाटक में इन विषयों का वर्णन नहीं है। कारण यह है कि कवि का मुख्य उद्देश्य प्रतापसिंह की शौर्य कथा का वर्णन करना है। अत: उन्होंने वीर रस से युक्त इस कथावस्तु को चुना एवं प्रस्तुत नाटक की रचना की।

कविवर याज्ञिक जी ने "प्रतापविजय" नाटक का शुभारम्भ मेवाड़ के राणा प्रताप सिंह एवं मुगलसम्राट अकबर के सेनापति मानसिंह के बीच वार्तालाप से किया है। मुगलसम्राट् ने मेवाड़ के आस पास के क्षेत्रीय राजाओं को अपना वशवर्ती बना लिया है, एवं बहुतों के साथ विवाह-सम्बन्ध भी कर लिया है। वह मेवाड़ के

नरेश के पास मानसिंह को भेजता है और कहता है कि वह प्रतापसिंह को समझाये कि मुगलशासक की अधीनता स्वीकार कर लें एवं अकबर को सर्वोपरि -शक्ति मान ले। मुगल सेनापति मानसिंह, राणाप्रतापसिंह के पास पहुँचता है एवं मुगल शासक अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए कहता है, लेकिन राणाप्रतापसिंह उसकी बातों से सहमत नहीं होता है और कहता है-सूर्यकुल में उत्पन्न होने वाले क्षत्रिय के लिए यह असंभव है।[1]

प्रतापसिंह द्वारा मानसिंह के आतिथ्य सत्कार हेतु भोज का आयोजन किया जाता है जिसमें राणा अपने पुत्र अमर सिंह को मानसिंह के साथ भेजकर स्वयं अनुपस्थित रहता है। मानसिंह द्वारा यह पूछे जाने पर कि महाराणा भोज में नहीं आये तो अमरसिंह बताता है कि पेट में पीड़ा होने के कारण आज महाराज को भोजन करने की इच्छा नहीं है, यह सुनकर मानसिंह क्रोधित होता है और कहता है कि मैं उसका उपचार भलीभाँति जानता हूँ। वहाँ से क्रुद्ध होकर चल देता है। अत: उपर्युक्त वर्णन पूर्णत: ऐतिहासिक है, क्योंकि यह वर्णन ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं "प्रतापविजयनाटक" दोनों में एक समान मिलता है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मानसिंह के असफल होने पर भगवानदास एवं टोडरमल को भी प्रताप सिंह को समझाने के लिए भेजा गया था लेकिन याज्ञिक जी ने इसका वर्णन नहीं किया है।

इतिहास ग्रन्थों एवं "प्रतापविजय" नाटक दोनों में समानत: वर्णन मिलता है कि अकबर मेवाड़ की स्वतन्त्रता समाप्त करने पर तुला हुआ था और

---

1. प्रतापविजयम् पृ0 10

प्रतापसिंह उसकी रक्षा करने का व्रत लिये हुए था। इस प्रकार दोनों को ज्ञात हो गया कि मेवाड़ की समस्या का निराकरण बिना युद्ध के नहीं हो सकता है। मुगलसम्राट् अकबर ने मानसिंह के नेतृत्व में हल्दीघाटी के मैदान में सैनिक दल को भेजा, जिसके विरोध में राणा प्रताप सिंह भी सेना तैयार कर हल्दीघाटी के मैदान की ओर चल दिया।

ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं "प्रतापविजयम्" नाटक दोनों में मिलता है कि राणा, चेतक पर सवार होकर मानसिंह के हाथी के पास जा पहुँचा और चेतक ने अपने अगले दोनों पैर हाथी के सिर पर रख दिये इसके बाद प्रतापसिंह ने भाले से मानसिंह के ऊपर प्रहार किया, दुर्भाग्यवश मानसिंह बच गया। इतिहास एवं प्रस्तुत नाटक दोनों में मिलता है कि मानसिंह के मृत्यु का समाचार सुनकर यवन-सैनिकों में भगदड़ मचगयी , परन्तु चेतना अवस्था में आने पर उन्होंने सेना में उत्साह भरा और घमासान लड़ाई छिड़ गयी।

ऐतिहासिक कथावस्तु में वर्णित है कि जब चेतक हाथी के सिर पर पैर रखे हुए था तो हाथी के सूँड़ के खंजरे से उसकी एक टाँग कट गयी, उसी समय यवन सैनिकों ने राणा को घेर लिया किन्तु राजपूत वीरों ने राणा को उस भीड़ से बाहर निकालकर उसकी रक्षा की। टूटी टाँग के घोड़े चेतक से वह अधिक दूर न जा सका, बीच में ही घाटी के दूसरे नाके पर चेतक की मृत्यु हो गयी और राणा ने वहीं उसका अन्तिम संस्कार कर दिया[1]।

---

1. मेवाड़ एण्ड दि मुगल एम्परर'-पृ0 103, जी0एन0शर्मा

किन्तु याज्ञिक जी ने नाटक को सुचारू रूप देने के लिए प्रस्तुत नाटक में कुछ परिवर्तन कर दिया है। उनके अनुसार चेतक के हाथी के सिर पर रखे हुए पैर में तीक्ष्ण खड्ग के आघात से चेतक का पिछला पैर घायल हो गया , इसलिए घाव के रक्त से सने हुए अंगों वाला वह श्रेष्ठ अश्व अत्यन्त तीव्रगति से स्वामी को लेकर वापस आ गया। घोड़े का उपचार होता है, दुर्भाग्य वश चेतक की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने ऐतिहासिक कथावस्तु में नाटकीय दृष्टि से परिवर्तन कर दिया है।

इतिहास ग्रन्थों एवं "प्रतापविजय" दोनों में समानत: वर्णन मिलता है कि प्रतापसिंह युद्धस्थल से शिविर को चले आये थे, परन्तु राजपूत सैनिकों में घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था, राजपूत सैनिक जान की भी बाजी लगाकर लड़ रहे थे, जिसमें झालामानसिंह जैसे वीर, वीरगति को प्राप्त हो गये।

इतिहास एवं प्रस्तुत नाटक दोनों में मिलता है कि इसके बाद दोनो सेनाएँ वापस चली गयी थीं लेकिन पुन: युद्ध की प्रतीक्षा करती रही ,मुगल सेना के रुकने का स्थान गोगुन्दे में ही मिलता है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है कि मानसिंह की असफलता के बाद अकबर स्वयं 13 अक्टूबर 1576 ई०को आया लेकिन राणा इधर उधर छिपकर मुगलो के प्रयत्न को असफल करता रहा, अन्तत: राणा ने अकबर को सीमान्त प्रदेश के उपद्रव में व्यस्त होने पर अपनी नई व्यवस्था बना ली।

याज्ञिक जी द्वारा वर्णन मिलता है कि युद्ध हेतु अकबर चतुरंगिणीसेना को तैयार करता है परन्तु गान्धार में बहुत बड़े विद्रोह का समाचार सुनकर गान्धार की ओर चल देता है।

इतिहास ग्रन्थों एवं "प्रतापविजय" दोनों में एक समान वर्णन मिलता है कि (राणाप्रतापसिंह के आदेशानुसार) मेवाड़ भूमि के मैदानी क्षेत्रों में किसी प्रकार को अन्नोत्पादन न किया जाय जिससे भीतर घुसने वाली सेना को किसी प्रकार रसद न मिल सके, अगर किसी ने ऐसा न किया तो प्राण दण्ड का भागी होगा। इतिहास ग्रन्थों में मिलता है कि राणा ने पुंजानामी नेता को अपनेभील सहयोगियों को बुलाकर मेवाड़ की सुरक्षा प्रबन्ध में लगाया एवं दूरस्थ सामन्तों को भी अपनी सीमा में सतर्क रहने को कहा, किन्तु याज्ञिक जी ने इसमें कुछ परिवर्तन कर दिया है। कवि कल्पित नाटक में वर्णित है कि निषादपति स्वयं राणा के पास आया और परिचारकों के समूह में सम्मिलित होने का निवेदन किया जिसे राणा ने स्वीकार कर लिया। मेवाड़ - प्रदेश छोड़कर पर्वत-प्रदेश में जाने का वर्णन समानतः मिलता है। इतिहास एवं "प्रतापविजय" में मिलता है कि प्रताप सिंह गुजरात के व्यापारियों सेउपभोग योग्य सभी रत्नों को खरीदकर उन्हें वापस लौटा देता है। एक राष्ट्रद्रोही किसान के मेवाड़ाधिप द्वारा मारे जाने की सूचना दोनों में मिलती है।

"प्रतापविजय" एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि जब मुगल-शासक ; पृथ्वीराज से (जो दरबारीकवि है) यह कहता है कि इस समय स्वतन्त्रता का अद्वितीय रसिक तुम्हारा मित्र हमें सम्राट् कहकर हमारी शरण चाहता है,

पृथ्वीराज प्रत्युत्तर में कहता है कि ऐसा कथन बिल्कुल मिथ्या है, विषम दशा में पड़ जाने पर भी नजीतने योग्य यह प्रतापसिंह आप को एक बार भी सम्राट् कह दे तो गंगा की धारा उल्टी बहेगी एव सूर्य पूर्व के बजाय पश्चिम में उदित होगा पुनः अकबर सही पता लगाने के लिए पृथ्वीराज को आज्ञा देता है। पृथ्वीराज राणाप्रतापसिंह को पत्र लिखते हुए कहता है कि जब सामन्तों के समक्ष सम्राट् अकबर ने "शीघ्र ही मेवाड़ नरेश मुझे सम्राट् कहकर मेरी शरण ढूढ़ेगा" ऐसा परिहास एवं गर्व के साथ कहा तो आप का पक्षपात करने वाला मैं तुरन्त उसका खण्डन करते हुए कहा कि अगर ऐसा हुआ तो गंगा उल्टी बहेगी एवं सूर्य पश्चिम में उगेगा, इसलिए क्षत्रिय धर्म के अवतार स्वरूप आप मुझे अतिविलम्ब सूचित करें कि हे वीर ! शत्रु को सभा में मूँछ पर हाथ रखने वाला क्या मैं सत्य बचन बोलने का गर्व करूँ या नीचे की ओर मुख करके लज्जा से अभिभूत होकर अपने शरीर पर तलवार चला लूँ। प्रतापसिंह उत्तर में कहता है कि सूर्यवंश में उत्पन्न मेरा मनोभाव तुमने स्पष्ट समझा है क्योंकि फूलों के रसों का गुण तो भ्रमर ही जानता है, हाथी क्या जाने। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन इतिहास एवं नाटक दोनों में मिलता है।

इतिहास ग्रन्थ एवं प्रस्तुत नाटक में समानतः वर्णन मिलता है कि प्रतापसिंह का पुत्र युवराज अमरसिंह कुम्भलगढ़ दुर्ग को देखकर वहाँ जाने की जिद करता है लेकिन परिस्थितियाँ अनुकूलनहोने के कारण असम्भव है। याज्ञिक जी "प्रतापविजय" नाटक में यह उल्लेख करना उचित नहीं समझते हैं के कि ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें मिलता है कि वन प्रदेश में एक दिन घास की रोटी को जंगली बिल्ली द्वारा पुत्री के हाथ से छीन लेने पर पुत्री द्वारा रोने की आवाज सुनकर प्रताप सिंह अधीर हो जाते हैं और मुगलसम्राट् की अधीनता स्वीकार करने हेतु विचार बना लेते हैं, परन्तु पुनः पृथ्वीराज द्वारा सूर्यवंश के शौर्य से अवगत कराने पर

पुन: युद्ध छेड़ देते हैं, अन्तत: प्रतापसिंह को विजय श्री की प्राप्ति होती है।

प्रतापसिंह मेवाड़ भूमि पर विजय प्राप्त कर राज्याभिषेक का आयोजन करते हैं, जिससे सभी मेवाड़ वासी प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार प्रताप सिंह ने अनेक कष्टों को झेलते हुए अपने व्रत (स्वतन्त्रता की प्राप्ति) को पूर्ण किया। इस प्रकार का वर्णन इतिहास एव "प्रतापविजय" नाटक दोनों में मिलता है।

इस प्रकार "प्रतापविजय" नाटक में कवि द्वारा किये गये नाम मात्र के परिवर्तन एवं परिवर्धन के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने प्रतापसिंह के उज्ज्वल चरित को चित्रित करने के लिए कुछ स्थानों पर काल्पनिक उद्भावनाएँ की हैं जो धीरोदात्त प्रकृति के नायक महाराणा प्रतापसिंह और वीर रस की व्यञ्जना के लिए सर्वथा उचित है।

इस प्रकार यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि "प्रतापविजय" नाटक अधिकांशत: ऐतिहासिक कथावस्तु पर ही आधारित है।

0 0 0 0

0 0 0

0

संयोगितास्वयंवरम् नाटक की ऐतिहासिकता

कविवर मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा रचित "संयोगितास्वयंवरम्" नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। याज्ञिक जी ने नाटकीय दृष्टि कोण से पृथ्वीराज के उदात्त एवं रसिकपूर्ण चरित्र की रक्षा के लिए आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं परिवर्धन कर दिया है, एवं कुछ भाग का त्याग कर दिया है।

यह श्रृंगार रस प्रधान नाटक होते हुए भी वीररस से परिपूर्ण है। प्रस्तुत नाटक में पृथ्वीराज चौहान एवं संयोगिता की प्रेम कथा का वर्णन निबद्ध है।

इतिहास -ग्रन्थों में पृथ्वीराज चौहान के पूर्वजों आदि का वर्णन किया गया है। बचपन में ही पिता की मृत्यु के बाद माता द्वारा राज्यकार्य संभालना एवं दीक्षा देना एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। पृथ्वीराज 1178 ई0 मे स्वयं राजकार्य सँभाल लिया एवं पड़ोसी राज्यों से शत्रुता मोल ले ली, परन्तु याज्ञिक जी ने अपने नाटक में इस कथा को स्थान देना उचित नहीं समझा है।

कविवर याज्ञिक जी ने प्रस्तुत नाटक का शुभारम्भ कन्नौजाधिप जयचन्द द्वारा किये जाने वाले राजसूय यज्ञ से किया है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि पृथ्वीराज एवं संयोगिता में प्रेम सम्बन्ध था, जयचन्द ने इसकी अवेहलना कर वैमनस्य के कारण अपनी पुत्री का विवाह किसी अन्य राजा से करना चाहता था इसी उद्देश्य पूर्ति के लिए उसने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया था। याज्ञिक जी ने नाटक के प्रारम्भ में विरोध की बात तो नहीं लिखीहै लेकिन संयोगितास्वयंवर की बात का अवश्य संकेत किया है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि राजसूय यज्ञ के लिए अनेक राजाओं को आमन्त्रित किया गया है-लेकिन पृथ्वीराज चौहान को आमन्त्रित नहीं किया गया है। जयचन्द इससे भी सन्तुष्ट नहीं है, उसने पृथ्वीराज की लोहे को मूर्तिबनवाकर द्वारपाल के रूप में खड़ी कर दी है, उसी समय संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन किया गया है। जब स्वयंवर का समय आया तो संयोगिता ने स्वयंवर में उपस्थित सभी राजाओं की अवहेलना कर पृथ्वीराज की लौह प्रतिमा में वर माला डाल दिया। उस समय पृथ्वीराज भी अपने सैन्य बल के साथ पहुँच गया और संयोगिता को लेकर चल दिया। जयचन्द्र ने संयोगिता को छुड़ाने के लिए सैनिक भेजे किन्तु वे असफल रहे।

याज्ञिक जी ने अपने नाटक में इस ऐतिहासिक कथावस्तु में नाटकीय कथावस्तु को ध्यान मे रखकर कुछ परिवर्तन कर दिया है जो इस प्रकार है-जय - चन्द राजसूय यज्ञ का आयोजन करता है, जिसमें सुमतिकेकहने पर पृथ्वीराज को पत्र भेजता है कि समस्तराजाओं का स्वामी अपने राजसूय यज्ञ में तुम्हें प्रतिहारी के रूप में देखना चाहता है यदि ऐसा नहीं करते होतोतुम युद्धरूपी भी यज्ञ में बलिपशु बना दिये जाओगे[1]। प्रत्युत्तर में पृथ्वीराज का पत्र प्राप्तकर जयचन्द अत्यधिक क्रुद्ध होता है और दिल्लीपति एवं समरसिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देता है। राजसूय यज्ञ के समय आयोजित"संयोगितास्वयंवर" से संयोगिता असन्तुष्ट है जिसकी उदासीनाता {असन्तुष्टता} जानने के लिए जयचन्द चिन्तित है। उदासीनता का कारण जानने पर कि वह पृथ्वीराज केप्रति अनुरक्त है- गंगा-तट पर नवनिर्मित प्रसाद में आजीवन रहने का आदेश देता है जिसे संयोगिता

- - - - - - - - - - - - - -

1. संयोगितास्वयंवरम् 1/5

सर्श स्वीकार कर लेती है, उधर बालुकाराय वीरगति को प्राप्त हो जाता है, जिसे सुनकर कन्नौजाधिप ने राजसूय यज्ञ को स्थगित कर दिया है। ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ।।9। ई० में मुहम्मद गोरी बड़ी तैयारी के साथ तराइन के मैदान में पहुँचा, उधर से दिल्ली नरेश की सेनाएँ आयीं, दोनोंपक्षों के बीच प्रथम तराइन के नाम से युद्ध हुआ । जिसमें पृथ्वीराज की विजय हुई। इस प्रकार तुर्कों को यह पराजय एक महान घटना थी, जिसे तुर्कों को पहली बार सहन करना पड़ा था। विजय के आनन्द में पृथ्वीराज ने पराजित तुर्क सैनिकों को छोड़ दिया जो पृथ्वीराज की महान भूल थी। याज्ञिक जी ने इस ऐतिहासिक कथावस्तु से हटकर नाटकीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर प्रस्तुत नाटक में वर्णन कियाहै, जो इस प्रकार है- पृथ्वीराज को गुप्तचर के माध्यम से दो विरोधी समाचार प्राप्त होते हैं, पहले यह कि जयचन्द ने अपनी पुत्री को आप में अनुरक्त होने के कारण गंगातट पर अवस्थित नवनिर्मित महल में आजीवन रहने का दण्ड दिया है एवं दूसरा समाचार है कि मुहम्मद गोरी पुनः ः आक्रमण के लिए उद्यत है, इस प्रकार दिल्ली नरेश पृथ्वीराज के सामने दो विकल्प आते हैं, एक तरफ उसके प्रति आसक्त होने के कारण संयोगिता का दशा को प्राप्त होना एवं दूसरी तरफ यवनों से देश की रक्षा ।

याज्ञिक जी ने प्रस्तुत नाटक में वर्णन किया है कि तुर्क आक्रमणकारी मुहम्मदगोरी के आक्रमण को रोकने के लिए समरसिंह को दिल्ली में छोड़कर स्वयं कवीश्वर के सेवक के रूप में कन्नौज पहुँचता है; पृथ्वीराज युद्ध के लिए उद्यत होता है, किन्तु कविचन्द मनाकर देता है। पृथ्वीराज कर्णाटकी के माध्यम से गुप्तरूप से

संयोगिता से मिलता है एवं संभावी युद्ध हेतु सेनापति कान्ह एवं लङ्गड़ीराय को तैयार रहने को कहता है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है कि पृथ्वीराज एवं मुहम्मदगोरी के बीच तराइन के मैदान में पुनः युद्ध हुआ था जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ एवं बन्दी बना लिया गया था। बन्दी बनाये जाने पर उसने आत्मसम्मान को ध्यान में रखते हुए आश्रित शासक बनने की अपेक्षा मृत्यु को प्राथमिकता दी। अन्धा बनाने का समाचार सुनकर संयोगिता आदि ने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मदाह कर लिया था। बन्दी पृथ्वीराज ने अपने मित्र कविश्वर को उपस्थिति में अपने शब्द बेधीवाण से मुहम्मदगोरीकागला काट दिया था इसी के साथ ही अपना भी अन्त कर लिया था।

याज्ञिक जी ने नाटकीय दृष्टि से उचित न समझते हुएइसमें परिवर्तन कर दिया है। याज्ञिक जी के नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज,संयोगि-ता को दिल्ली ले आते हैं एवं विवाहोत्सव सम्पन्न करते हैं रामगुरू एवं चन्द्रवर-दाई के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि जयचन्द ने चारो ओर से दिल्ली पर आक्रमण किया है,इसलिए रामगुरूचिन्तित है। चन्दरदाई बताते हैं कि जयचन्द पुरानी शत्रुता को भुलाकर संयोगिता का विवाह पृथ्वीराज से करने को तैयार हो गये हैं।

नाटक के अन्त में वर्णितहै कि पृथ्वीराज एवं संयोगिता दरबार में आते हैं एवं जयचन्द उन दोनों के विवाह-सम्बन्ध को स्वीकार कर आशीर्वाद देते हैं और पृथ्वीराज से प्रसन्नता पूर्वक मिलते हैं।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने नाटक का अन्त संयोगिता एवं पृथ्वीराज के मिलन से किया है किन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज का अन्त दुःखद था, जिसे अन्धा बनाकर बन्दीगृह में छोड़ दिया गया था और स्वयं उसने आत्महत्या कर ली थी।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने "संयोगिता-स्वयंवर" नाटक में नाटकीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक कथावस्तु के कुछ भागों में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन कर दिया है एवं दुःखान्त तथ्यों का पूर्णतया त्याग कर दिया है। कवि कल्पित अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कवि ने पृथ्वीराज के उज्ज्वल चरित को चित्रित करने के लिए अनेक स्थानों पर काल्पनिक उद्भावनाएँ वर्णित की हैं जो धीरोदात्त नायक के लिए सर्वथा उचित है। पृथ्वीराज और संयोगिता की प्रणयकथा के कारण शृंगार से युक्त होने पर भी इसमें वीररस का अतिमहत्त्व है।

इस प्रकार कहना गलत न होगा कि संयोगिता स्वयंवर नाटक पूर्णतया ऐतिहासिक कथावस्तु पर ही आधारित है, वैसे उसमें कविकल्पित कतिपय परिवर्तन विद्यमान है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड -4

शिवाजी, राणाप्रताप एवं पृथ्वीराज चौहान के जीवन चरित से सम्बद्ध अन्य संस्कृतकाव्य

संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि श्रीमूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा रचित शिवाजी, राणाप्रताप एवं पृथ्वीराज चौहान से सम्बद्ध काव्य"छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रतापविजयम् एवं संयोगितास्वंयवरम्" के अतिरिक्त अन्य संस्कृत काव्य इन भारतीय वीर सपूतों के जीवन चरित से सम्बद्ध लिखे गये हैं। संस्कृत आचार्यों ने इन नायकों को अपने काव्य का नायक बनाकर भारतीयता के प्रति राष्ट्रियभावना को उद्वेलित किया है, जिसके माध्यम से भारतीय जन में स्वराष्ट्र के प्रति अभिमान की भावना जागरित हुई है। इन नायकों के माध्यम से ही भारतीय मनीषियों ने राष्ट्र-धर्म, राष्ट्र-प्रेम की भावना को जागरित किया है। इस प्रकार इन भारतीय वीर सपूतों से सम्बन्धित निम्न काव्य वर्णित किये गये है।

शिवराज -विजय

श्री अम्बिकादत्त व्यास द्वारा प्रणीत इस काव्य का लेखन कार्य 1888ई से 1893 ई० तक किया गया था, जिसका प्रकाशन लेखक के प्रपौत्र श्री कृष्णकुमार व्यास द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत काव्य संस्कृत साहित्य का अत्यन्त ही ओजस्वी एवं ऐतिहासिक काव्य है। इसमें शिवाजी के देशभक्ति तथा राष्ट्रीयभावना से परिपूर्ण राजनैतिक कार्य-कलापों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। भारतीयता के विरोधी मुगलसम्राट्-औरंगजेब एवं उसके सैनिकों द्वारा किये गये बर्बरतापूर्ण अत्याचारों से सताये गये भारतीयजनों की रक्षा हेतु अपने प्राणों की बाजी लगाकर शिवाजी ने

अपने देश भारत वर्ष के प्रति अथक एवं निरन्तर प्रयत्न किया है, जिसका अत्यन्त मनोरम एवं हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है।

व्यास जी ने अपने लेखन के माध्यम से भारतीय जनता के ऊपर किये गये यवनों के अत्याचारों का वर्णन किया है, भारत की सनातन संस्कृति एवं सभ्यता संकट में थी कन्याओं एवं महिलाओं को अपहृत एवं अपमानित किया जाता रहा, देवालायों को मस्जिदों या अश्वशालाओं के रूप में बदल दिया जाता था, धर्मशास्त्रों को अग्नि में जला दिया जाता था, गायों को मौत की बलिवेदी पर चढ़ा दिया जाता था, साधु-सन्तों को सताया जाता था, इस प्रकार किसी न किसी प्रकार से हिन्दू धर्म पर कुठाराघात किया जा रहा था। यवनों के इन अत्याचारों के विरोध में शिवाजी, गौर सिंह आदि को समर्पित भाव से प्रस्तुत किया गया है।

शिवाजी ने देशभक्त शूरवीरों की सेना तैयार कर अपनी प्रतिभाशाली राजनैतिक सूझबूझ से भारत की मर्यादा को सुरक्षित रखा है। प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तचरों की चर्चा को महत्त्व दिया गया है, जिसके लिए गौर सिंह एवं रघुवीर सिंह जैसे शूरवीरों को लगाया गया है। कपटी शत्रु के साथ कपट का प्रयोग करने को उचित बताया गया है।

व्यास जी ने अपने लेखन के माध्यम से राष्ट्रद्रोहियों के प्रति घृणा एवं निन्दा के भाव जगाये हैं। इसके विपरीत जो राष्ट्रभक्त हैं, व्यक्तिगत सुखों की उपेक्षा कर अपने देश की गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए कटिबद्ध हैं, ऐसे राष्ट्रीय वीरपुरूषों के प्रति स्नेह, सौरभ से संयुक्त श्रद्धासुमन समर्पित किये हैं।

राष्ट्रहित में उनके द्वारा सहे गये कष्टों की खुले मुख से प्रशंसा की गयी है। उन्हीं को भारत माता का पुत्र कहा गया है। व्यास जी ने भारत राष्ट्र एवं भारतीय स्वतन्त्रता के प्रति भारतीय जनमानस में आत्मीयता एवं जागरूकता के भाव जगाये हैं। यवनों द्वारा स्थापित की गयी भारत की राजनैतिकसामाजिक एवं धार्मिक परतन्त्रता के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है। देश-द्रोही यवनों की दासता स्वीकारने के प्रति ग्लानि प्रकट की गयी है। देश द्रोहियों का दमन करने के लिए अदम्य एवं सफल साहस की प्रशंसा की गयी है।

व्यास जी ने प्रस्तुत उपन्यास में स्वराष्ट्र देशद्रोहियों के विनाश के लिए शंकर, दुर्गा, विष्णु आदि को अकर्मण्य देखकर विस्मय भाव प्रकट किया है। भगवान शंकर को विश्वनाथ मन्दिर, श्रीकृष्ण को गोविन्द देव मन्दिर के प्रति यवनों द्वारा की गयी दुर्दशा का स्मरण कराया गया है। इस उपन्यास की एक प्रशंसनीय विशेषता यह है कि सभी यवनों के प्रति घृणा एवं विरोध के भाव नहीं दर्शाये गये हैं। जो यवन भारतीयता विरोधी गतिविधियोंमेंसम्मिलित नहीं था, उनके प्रति सद्भाव के भाव प्रदर्शित किया गया है, उनके साथ देश भक्त हिन्दुओं की तरह अच्छा व्यवहार किया गया है। व्यास जी ने अपनी कृति में देशभक्ति के प्रचार-प्रसार हेतु भूषण जैसे कवि को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, 'ओ भारतद्रोही मुगलसम्राट् औरंगजेब की दासता स्वीकार करने वाले जयपुराधीश हिन्दू सम्राट् की उपेक्षाकर शिवाजी की सभा में आकर रहने लगने का' प्रसंग पाठकों में देश भक्ति को उद्बुद्ध कर देता है। इस प्रकार व्यास जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय जन मानस में राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना को जगाया है।

पृथ्वीराज चह्वाण चरितम्

श्री पादशास्त्री ह्सूरकर द्वारा रचित यह ऐतिहासिक गद्य काव्य है। इस ऐतिहासिक काव्य में देश भक्ति की भावना से परिपूर्ण अन्तिम हिन्दू दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के जीवन चरित को वर्णित किया गया है। काव्य के प्रारम्भ में ही पृथ्वीराज के प्रति जयचन्द का ईर्ष्याद्वेष भाव प्रकट किया गया है। जयचन्द द्वारा पृथ्वीराज के पराजय हेतु मुहम्मद गोरी को आक्रमणहेतु आमत्रण प्रस्ताव पर दुःख व्यक्त किया गया है। पृथ्वीराज की युद्ध में कुशलता एवं पृथ्वीराज के बहनोई समरसिंह की देश रक्षा हेतु वीरता की सराहना की गयी है। पृथ्वीराज के शौर्य की सूर्य के प्रताप से तुलना की गयी है। मक्का के मीरखाँ एवं शिष्य रोशन बल्ली की भारत विरोधी सन्धियों के भेद को प्रकाशित किया गया है। मीरखाँ तथा उसके सैनिकों द्वारा दैवी प्रकोप के भय से पृथ्वीराज को अजमेर का त्याग करने एवं दिल्ली को राजधानी बनाने का वर्णन किया गया है। यद्यपि पृथ्वीराज के शौर्य का प्रताप बढ़ता जा रहा था, लेकिन स्थानीय राजाओं से वैर-भाव बढ़ता जा रहा था। इतना ही नहीं यह भारत का दुर्भाग्य ही रहा है कि पृथ्वीराज अपने परमवीर एवं श्रेष्ठ मित्रों पर अविश्वास करके उन्हें त्यागने लगा था। पृथ्वीराज ने अपने साले चामुण्डराय को स्वामिद्रोह की आशंका मात्र से बन्दी बना लिया था, तथा गजनीवासी भारतद्रोही शहाबुद्दीन गोरी को अनेक बार युद्ध बन्दी बनाकर अपने बलाभिमान के कारण मुक्त करता रहा था।

दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता प्राप्ति एवं जयचन्द से वैर वृद्धि का अत्यन्त ही आकर्षक वर्णन किया गया है। पराजित जयचन्द द्वारा संयोगिता का पृथ्वीराज से शास्त्रीय विवाह का वर्णन किया गया है। संयोगिता एवं पृथ्वीराज की काम-क्रीडा का अनवरत वर्णन किया गया है।

हाहुली राय द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर शहाबुद्दीन गोरी, संयोगिता की प्रेम वासना नदी में लिप्त पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है। पृथ्वीराज की रक्षा हेतु नगरवासी एवं अधिकारियों द्वारा समर सिंह (जो पृथ्वीराज को बहनोई है) को आमंत्रित किये जाने का वर्णन है। आक्रमणकारी नगर के बाहर शिविर लगाये हुए है, लेकिन पृथ्वीराज को संयोगिता के मिलन से अवकाश नहीं मिलता है। समर सिंह द्वारा देश एवं धर्म द्रोही मुहम्मद गोरी द्वारा किये जाने वाले आक्रमण की सूचना सुनकर पृथ्वीराज , संयोगिता को समझाबुझाकर सामरिक युद्ध हेतु विचार विमर्श करता है। पूर्व अपमानित एवं बन्दी बनाये गये साले चामुण्डराय को क्षमा याचना द्वारा युद्ध हेतु तैयार कर युद्ध के लिए प्रस्थान कर देता है।

पृथ्वीराज की सहायता हेतु संयोगिता के पिता जयचन्द द्वारा सेना सहित दिल्ली के लिए प्रस्थान एवं अपने देश की स्वतन्त्रता एवं धर्म की रक्षा हेतु क्षत्रिय नरेशों की कर्तव्य परायणता का वर्णन किया गया है। भारतीय वीर सपूतों एवं यवन आक्रमणकारी सिपाहियों के बीच भयंकर युद्ध होता है। समरसिंह एवं पुत्र कल्याण सिंह समरयुद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं; पृथ्वीराज को युद्ध भूमि में ही घेर कर बन्दी बना लिया जाता है। मुक्ति हेतु प्रार्थना पर मुक्त नहीं किया जाता है बल्कि उसकी आँखें फोड़ दी जाती हैं।

दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज के विषय में यह समाचार सुनकर जयचन्द पृथ्वी राज के अन्तःपुर की रक्षा हेतु प्रस्थान करता है, लेकिन यवन आक्रमणकारी द्वारा दुराचरण हेतु आते सुनकर संयोगिता सहित आदि क्षत्रिय ललनाएँ अग्नि में प्रवेश कर लेती हैं। पृथ्वीराज को पराजित कर शहाबुद्दीन गोरी द्वारा जयचन्द पर आक्रमण किया जाता है अपने जामाता पृथ्वीराज चौहान की दुर्दशा एवं पुत्री संयोगिता के

आत्मदाह से जयचन्द का मनोबल टूट जाता है-एवं पराजित होकर गंगा की गोद में विलीन हो जाता है। तत्पश्चात् यवन सैनिकों के अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, जिसके कारण दिल्ली नगरी विभत्स लगने लगती है। बन्दी एवं अन्धे बनाये गये पृथ्वीराज को गोरी द्वारा स्वदेश ले जाया जाता है। उसकी दुर्दशा पर यवन सैनिक तरस खाते हैं लेकिन शहाबुद्दीन की डर से कोई सहायता नहीं करता है।

अन्ततः अपने देश, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु चन्दकवि द्वारा पृथ्वीराज की मुक्ति हेतु प्रयत्न किया जाता है। वह हिन्दू वेष त्याग कर यवनवेष धारण करता है एवं यवनपति की समीपता प्राप्त करता है। पृथ्वीराज से मिलकर योजना बनाता है। पृथ्वीराज के शब्दवेधकौशल को देखने हेतु शरीर पर पड़ी हुई लौह शृंखलाओं को बाधक बताकर उसको हटवाता है। पृथ्वीराज को बहरा होने की आशंका कर उसके समीप बैठने की अनुमति प्राप्त करता है। शहाबुद्दीन द्वारा अन्धा बनाये गये पृथ्वीराज को निर्धारित लक्ष्य को शब्दश्रवण मात्र से विद्ध करने के लिए कहने की आवाज सुनकर अविलम्ब ही पृथ्वीराज अपने शब्दवेधी बाण से शहाबुद्दीन की ग्रीवा को धड़ से अलग कर देता है, जिसकी चन्द कवि प्रशंसा करता है। शहाबुद्दीन की मृत्यु से कुपित सैनिक जैसे ही पृथ्वीराज एवं कविचन्द को मारने के लिए आगे बढ़ते हैं, वैसे ही ये दोनों खड्गों से एक दूसरे का गलाकाटकर वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं।

हकुर जी ने अपनी प्रस्तुत कृति में ऐसे भारतीय हिन्दू सम्राट् की वीर गाथा का वर्णन किया है, जिसने अपने देश की मान-मर्यादा, संस्कृति और गरिमा की रक्षा हेतु अपना जीवन बलिदान कर दिया। यद्यपि पृथ्वीराज के राजसुलभ दोष भी थे लेकिन यह दोष उसके बल-अभिमान के साथ-साथ भारतीय युद्धनीति एवं उदारता पर भी जाता है। यही कारण है कि शत्रु को बार-बार प्राणदान देकर मुक्त करता रहा। अन्ततः जो हार हुई उसके दोषों को कम और भवितव्यता को

अधिक दोष जाता है। इस प्रकार के कृत्य से हम पूर्ण विश्वास के साथ यह कह सकते है कि पृथ्वीराज जैसे देशभक्त, परमवीर का यह चरित निश्चित ही स्वदेश अभिमान को जागरित करेगा, जो राष्ट्रीय एकता की भावनाकारक रूप होगा ।

वीरप्रतापनाटकम्

महामहोपाध्याय श्री पं० मथुराप्रसाददीक्षित द्वारा लिखित प्रस्तुत नाटक में भारतीय गौरव के परम उपासक एवं संरक्षक मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप सिंह की मुगलसम्राट् अकबर से स्वदेशाभिमान के लिए होने वाले संघर्ष से युक्त शौर्यकथा का वर्णन किया गया है। इस सात अङ्क वाले नाटक का रचना काल 1935 ई० एवं प्रकाशन काल 1965 ई० है।

मेवाड़नरेश महाराणा प्रतापसिंह द्वारा अकबर के साथ अनवरत समरयज्ञ की दीक्षा लेकर अपने देश की मानमर्यादा एवं रक्षा सुरक्षा हेतु भीषण संकटों के समुद्र को अपने दुर्लभ साहस धैर्य एवं बुद्धि चातुर्य से पारकरने में सफलता प्राप्त की गयी है।

दीक्षित जी का प्रस्तुत नाटक की सर्जना का मुख्य उद्देश्य है"

"भारत देश के भावी कर्णधारों के आत्मगौरव, साहस, शूरता आदि राष्ट्रोपकारक गुणों का विकास हो सके। देश को विदेशी आक्रान्ताओं के पाश से मुक्त कर यवनों द्वारा नष्ट की जाती हुई भारतीय मान-मर्यादा की रक्षा हेतु चिन्ता के भाव व्यक्त किये गये हैं। राष्ट्र की सुरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दियागया है, एवं जो राजा अपने राष्ट्र की रक्षा न कर सके उसकी निन्दा की गयी है। एवं उसके

जन्म को निरर्थक बतलाया गया है।[1] अपने राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु शरीर में एक बूंद भी रक्त रहने तक संघर्ष करने की प्रतीज्ञा की गयी है।[2] देश द्रोही, सगे-सम्बन्धियों से व्यवहार समाप्ति की भी बात कही गयी है।

इस नाटक में भारतीय जन एवं भारतवर्ष की रक्षा हेतु निःसंकोच लूटने वालों को प्रेरणा देकर 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' का उपदेश दिया गया है।[3] भारतीय नारी के सतीत्व, साहस एवं शौर्य की प्रशंसा कर उन्हें सम्मान प्रदान किया गया है, जो अन्य देश की महिलाओं के लिए असम्भव तो नहीं किन्तु दुर्लभ अवश्य है।[4] अपने देश की रक्षा के लिए मागध और चारणों द्वारा भी रोमांचक प्रेरणा दी गयी है, जिसके परिणाम स्वरूप अपने प्राणों की भी चिन्ता न करते हुए भारतीय शूरवीर, अकबर के विशाल और सघन सैन्य बल को काटने के उद्देश्य से निर्भय होकर घुस जाते हैं। दुर्भाग्यवश पराजय प्राप्त कर भी स्वदेश की स्वतन्त्रता की पुनः प्राप्ति के लिए, दुर्गम पर्वतों एवं वनों में सपरिवार रहकर क्षुधा और पीपासा को उपेक्षित कर दिन को बिताते हैं। दीक्षित जी के प्रस्तुत नाटक में मानसिंह एवं समर सिंह जैसे देश-द्रोही नरेशों के प्रति निन्दा एवं घृणा के भाव को उद्दीप्त किया गया है, और अपने देश भक्त राष्ट्र रक्षक, राष्ट्रप्रेमी, राणाप्रताप, रामगुरु, भामागुप्त आदि भारतीय सुपुत्रों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गयी है जो प्रत्येक देश भक्त जन को भावविह्वल कर देती है।

---

1. वीरप्रताप चरितम् पृष्ठ 11
2. वीरप्रतापचरितम्' पृष्ठ-17
3. वीरप्रतापचरितम्' पृष्ठ 148-154
4. वीरप्रतापचरितम्' पृष्ठ 154-160

शिवाजीचरितम्

श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश द्वारा रचित प्रस्तुतकृति का प्रकाशन सन् 1954 ई0 में कलकत्ता से किया गया है। इस कृति में दस अंक हैं।

"शिवाजीचरितम्" नामक नाटक में शिवा जी के राजतिलकोपरान्त जीवन-चरित का वर्णन किया गया है । श्री सिद्धान्त वागीश अपने नाटक के माध्यम से कहते हैं कि शिवाजी ने अपनी माता से प्राचीन भारतीय वीरों की कथाओं के माध्यम से भारत , भारतीयता एवं स्वदेश भक्ति का पाठ पढ़कर अपने मातृ-भूमि की रक्षा को अध्ययन से अधिक उपयुक्त समझा है। यवनों द्वारा अपने देश की दुर्दशा को देखकर शिवाजी अध्ययन कार्य त्याग कर एवं अपने साथियों से भी ऐसा करने को कहकर मातृभूमि की समृद्धि एवं मान मर्यादा की रक्षा के लिए आजीवन प्रतीक्षा करते हैं।

शिवाजी बीजापुर के नवाब नादिरखॉ को अपनी चतुरता ,धीरता एवं वीरता से पराजित करते हैं और अफजल खॉं को "शठे शाठ्यं समाचरेत" की नीति का आश्रय लेकर मार डालते हैं।[1]

लेखक महोदय ने शिवा जी की माता जयन्ती देवी द्वारा देश-भक्ति के लिए किये गये कृत्य का वर्णन किया है। [यहाँ पर लेखक ने जीजाबाई का नाम-करण जयन्ती देवी किया है] और देश द्रोही यवन सेना को पराजित कर पूना

---

1. शिवाजीचरितम्-पंचम् अङ्क

नगर की विजय श्री का उल्लेख किया है। मुगलकालीन दिल्ली सम्राट् औरंगजेब द्वारा प्रेषित शाइस्ता खाँ पर भी शिवाजी अपनी कूटनीति एवं वीरता से विजय प्राप्त कर लेते हैं।[1] मुगल प्रतिनिधि एवं सेनापति जयसिंह से सन्धिकर शिवाजी धोखे से बन्दी बना लिये जाते हैं, किन्तु शौर्य एवं चातुर्य से मिठाई के टोकरे में बैठकर अपने पुत्र सहित निकल भागने में सफल होते हैं।[2] मुगल सेना एवं शिवाजी के बीच युद्ध होता है, जिसमें मुगल सेना की बुरी तरह पराजय होती है। अन्त में शिवाजी एक स्वतन्त्र भारतीय राज्य की स्थापना कर राजपद को प्राप्त करते हैं।[3]

वीरपृथ्वीराजविजयनाटकम्

पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित जी द्वारा रचित इस नाटक में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के जीवन काल का वर्णन कियागया है। प्रस्तुत नाटक का प्रकाशन सन् 1960 ई० में किया गया है।

यद्यपि कि यह नाटक दु:खान्त है किन्तु इसमें भारतीय, हिन्दू धर्म और राष्ट्रप्रेम की ज्योति जगाने एवं जयचन्द तथा भोंदूशाह जैसे देश द्रोही राजाओं के प्रति घृणा के भाव जगाये गये हैं। अपने देश की मान-मर्यादा की रक्षा हेतु दिल्ली

---

1. शिवाजीचरितम्-षष्ठ अंक
2. शिवाजी चरितम् - सप्तम एवं अष्टम अंक
3. शिवाजी चरितम् - नवम् एवं दशम् अंक

नरेश पृथ्वीराज चौहान ने विदेशी आक्रान्ता मुहम्मद गोरी के आक्रमण का जो वीरता एवं स्वाभिमान के साथ मुकाबला किया, वह सदैव प्रशंसनीय रहेगा। यवन आक्रान्ता द्वारा पृथ्वीराज के कैद का समाचार पाकर संयोगिता सहित अनेक रानियों ने अपने सतीत्व एवं धर्म की रक्षा के लिए स्वयं को आग की ज्वालाओं को समर्पित कर दिया, जो कि राष्ट्रीय भावना के लिए समर्पण का एक अनूठा उदाहरण है।

मुहम्मदगोरी द्वारा बन्दी एवं अन्धे बनाये गये पृथ्वीराज के शब्द कौशलता के प्रदर्शन हेतु चन्दवरदाई द्वारा , मुहम्मद गोरी से अनुमति प्राप्त की जाती है, जिसमें पृथ्वीराज अपने शब्दभेदीवाण से मुहम्मद गोरी की ग्रीवा को काट देता है एवं स्वयं के दु:खी जीवन का चन्दवरदाई द्वारा अन्त करा लेता है और चन्दवरदाई भी अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेता है।

इस प्रकार अपने देश की मानमर्यादा, शान एवं भारतीयता की रक्षा के लिए मर मिटने वाले पृथ्वीराज चौहान एवं चन्दकवि जैसे अमर शहीदों के प्रति आदर एवं स्नेह की भावना भर दी जाती है। इस प्रकार दीक्षित जी ने राष्ट्रद्रोही भारतवासियों के प्रति घृणा की भावना जागरित कर उनके जन्म को ही निरर्थक एवं राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित भारतीय वीर नायकों के जन्म को सार्थक बतलाया है और उनके प्रतिमुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गयी है।

मेवाड़ प्रतापम्:-

श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश द्वारा लिखित प्रस्तुत नाटक का प्रकाशन सन् 1947 ई0 में किया गया है।

इस नाटक में मुगलसम्राट् अकबर के साथ महाराणा प्रतापसिंह द्वारा किये गये युद्ध एवं संघर्ष की स्वदेश प्रेम परिपूर्ण शौर्य कथा का वर्णन किया गया है। विदेशीआक्रान्ता और भारतीय संस्कृति के विरोधी यवनों से अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु महाराणा प्रतापसिंह एवं उसके साथियों द्वारा सादा भोजन करने, जमीन पर सोने तथा

विलासिता पूर्ण जीवन त्यागकर जीवन व्यतीत करने की प्रतीज्ञा की गयी एवं मातृभूमि की रक्षा के लिए भारतीयों के लिए प्राणों तक का भी न्यौछावर की प्रेरणा दी गयी है।[1] श्री वागीश ने अकबर के दरबारी एवं राणाप्रताप के मित्र पृथ्वीराज की पत्नी कमला देवी के माध्यम से इस बात पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया है कि भारतीय राजपूतों ने अपने स्वाभिमान एवं शौर्यमयी कीर्ति का परित्याग कर विदेशी आक्रान्ताओं की दासता स्वीकार कर ली है। इस अवसर पर मेवाड़ नरेश महाराणाप्रतापसिंह की खुले दिल से प्रशंसा की गयी है क्योंकि वे राष्ट्र रक्षा हेतु प्रयास रत हैं। लक्ष्यप्राप्ति हेतु भगवान से प्रार्थना की गयी है।[2]

---

1. मेवाड़ प्रतापम् - प्रथम अंक
2. मेवाड़ प्रतापम् - द्वितीय अंक

भारत राष्ट्र की गरिमा, मान-मर्यादा एवं संस्कृति आदि की सुरक्षा हेतु अकबर जैसे विशाल सैन्य समूह के बीच, अल्प सैन्य समूह होने पर भी राणाप्रताप सिंह निर्भीकता से घुस जाते हैं और अपने प्रिय घोड़े चेतक पर आरूढ होकर विशाल सेना को छिन्न-भिन्न कर परास्त कर देते हैं।

हल्दीघाटी नामक युद्ध में पराजित होने पर भी वह धैर्य नहीं खोते हैं और स्वदेश को परतन्त्रता से मुक्त कराने हेतु पहाड़ो एवं जंगलों में सपरिवार भटकते हैं। और घास की रोटियाँ खाकर जीवन-यापन करते हैं, किन्तु स्वराष्ट्र के अभिमान का त्याग नहीं करते हैं[1]। एक दिन जंगली बिल्ली द्वारा घास कीभी रोटी छीन लिए जाने पर जब उनकी अल्पवयस्क पुत्री क्षुधा के कारण रोने लगती है तो उनका धैर्य टूट जाता है औरतत्क्षण अकबर के पास सन्धि पत्र भेज देते हैं,लेकिन अपने मित्र एवं अकबर के दरबारी पृथ्वीराज द्वारा प्रोत्साहन देने पर उनका स्व-राष्ट्र के प्रति अभिमान पुनः जागरित हो उठता है और मातृभूमि की मुक्तिहेतु सक्रिय हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप सफलता प्राप्त होती है। इसके बाद बड़े हर्ष एवं उत्साहके साथ उत्सव मनाया जाता है इस प्रकार श्री वागीश ने प्रस्तुत नाटक की रचनाकर भारतीय जन-समुदाय में राष्ट्र रक्षा की भावना को उद्दीप्त किया है।

श्री शिवराज्योदयम् :-

डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा प्रणीत यह एक महाकाव्य है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1972 ई0 मे "शारदा गौरव ग्रन्थमाला" पूना से किया गया। इस काव्य में श्री शिवराज द्वारा स्वराष्ट्र रक्षा हेतु किये कृत्यों का

---

1. मेवाड़ प्रतापम् - पंचम् अंक

वर्णन किया गया है। डा० वर्णेकर ने शिवाजी को भारत , भारतीयता,भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षक एवं उपासक कहा है, जिसके फलस्वरूप यह महाकाव्य राष्ट्र की भावना से परिपूर्ण हो गया है। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की चिन्ता न करने वाले शिवाजी को भारत राष्ट्र की आत्मा का जाज्वल्यमान प्रतीक माना है।[1]

महाकवि श्री वर्णेकर ने इस ऐतिहासिक महाकाव्य में खेद प्रकट किया है कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को पदतले कुचलकर यवन सभ्यता का आतंक फैल रहा था।[2] इस काव्य में शिवाजी की माता जीजाबाई द्वारा शिवाजी को राष्ट्र एवं धर्म की रक्षा हेतु उपदेश दिया गया है।[3] पराधीनता की निन्दा की गयी है। दुर्गों की उपयोगिता को अनिवार्य बतलाया गया है। मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रेरणा दी गयी है। दादो जी जैसे गुरुजनों के द्वारा राष्ट्र की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। समर यज्ञ के लिए वीरों में समर्पण की भावना को जागरित किया गया है।

समर्थ गुरु रामदास जैसे राष्ट्र भक्त महात्माओं द्वारा चरित नायक को कपटी देश-द्रोहियों को कपट द्वारा पराजित करने का उपदेश दिया गया है।[4] अपने धर्म एवं सम्मान की रक्षा के लिए सभी सुखद प्रलोभनों का त्यागकर बाहुबल एवं बुद्धिबल पर विश्वास दिलाया गया है। राष्ट्र रक्षा हेतु समर्पित वीरों की

- -

1· श्री शिवराज्योदयम् 1/38-45

2· श्री शिवराज्योदयम् 1/59

3· श्री शिवराज्योदयम् 5/28

4· श्री शिवराज्योदयम् सर्ग 14

रक्षा हेतु भगवान से प्रार्थना की गयी है स्वराष्ट्र रक्षा के लिए अपने जान की बाजी लगा देने वाले बाजी जैसे राष्ट्र सैनिकों की घटना का रोमहर्षक चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत काव्य में मुगल शासक औरंगजेब के राजभक्त जयसिंह जैसे लोगों के हृदय में राष्ट्रप्रेम के अंकुरोपण का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है।औरंगजेब के अत्याचारों के निराकरण हेतु छत्रपतिशिवाजी द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कार्य-कलापों का मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है।

अन्तत: विजयोपरान्त छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक महोत्सव का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत गद्य काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि श्री वर्णेकर जी ने राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के परम उपासक एवं स्वाधीनता समर के प्रमुख संरक्षक शिवाजी के प्रति श्रद्धा भाव को समर्पित किया है।

छत्रपतिश्रीशिवराज: -

श्री श्रीराम वेलणकर द्वारा प्रणीत पाँच अंकों वाले इस नाटक का प्रकाशन सन् 1974 ई0 में किया गया है। प्रस्तुत कृति में श्री वेलणकर जी ने भी अन्य कवियों की तरह शिवाजी द्वारा राष्ट्रीय हित के लिए किये गये कार्य-कलापों का अत्यन्त ही रोमहर्षक वर्णनकिया है। शिवाजी ने विदेशी मुगलशासक की शासन सत्ता को समाप्त कर समग्र भारत में स्वतंत्र-साम्राज्य की स्थापना हेतु संकल्प लिया है, एवं राष्ट्रीय भावरूपी वट वृक्ष का बीजारोपण कर अदम्य उत्साह एवं

साहस का परिचय दिया है। वेलणकर जी ने भारतीय जन की धमनियों में होने वाले रक्त संचार के साथ ही साथ राष्ट्रियभावना का अजस्र-प्रवाह बहाया है। अपनी मातृभूमि, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति अटूट आदर-भाव प्रदर्शित करते हुए इस सब की रक्षा हेतु सभी भारतीयों को सुसंगठित होकर बुद्धि एवं विवेक से सतत् संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान की है, जिससे कि बड़े से बड़े शत्रु हमारे राष्ट्र के विरुद्ध सफलता न प्राप्त कर सकें।

शिवराजाभिषेकम्:-

डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा लिखित सात अङ्कों वाले इस नाटक का प्रकाशन सन् 1974 ई० में किया गया है।

प्रस्तुत नाटक में परम राष्ट्रभक्त छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक महोत्सव का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में वर्णित अनेक प्रसंगों के माध्यम से राष्ट्रिय-भावना की प्रेरणा सहज भाव से जागरित हो उठती है। नाटक के प्रारम्भ में ही गुरुकुल के विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित "पूर्वशिवचरितम्" छाया नाटक में राष्ट्र भक्त एवं राष्ट्र-प्रणेता शिवाजी एवं उनके अनुयायियों के शौर्य सम्पन्न क्रिया-कलापों के अवलोकन मात्र से ही दर्शकों में राष्ट्र के प्रति अभिव्यक्ति होने लगी है। इसी प्रसंग में ही यवन आक्रमणकारी भारतीयता विरोधी कार्यों का प्रस्तुत चित्रण भी दर्शकों की स्वराष्ट्र भावना को जगा देने में भी सहायक होता है।[1] स्वातन्त्र्य वीरों द्वारा बन्दी बनाई गयी और शिवाजी के

---

1. पूर्व शिवचरितम् (छायानाटक) 1/2-4

समीप प्रस्तुत की गई यवनी के प्रति शिवाजी की मातृभावना को देखकर तथा धर्म ग्रन्थ कुराण के प्रति आदर की भावना देखकर दर्शकों में साम्प्रदायिकता से रहितविशुद्ध भारतीयता की भावना घर कर बैठती है, जो आधुनिक भारत के लिए अत्यन्त आवश्यक है।[1]

नाटक के प्रथम अङ्क में ही शिवाजी एवं उनके अनुयायियों द्वारा भगवान शंकर से सामूहिक प्रार्थना की जाती है कि हम सब ने भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए व्रत लिया है। अत: राष्ट्र-विरोधियों का दमन करने हेतु हमारे अश्वों में वायु के सदृश वेग भर जाय, हमारे भाले भगवान शंकर के त्रिशूल की भाँति अमोघ हो जाय और हमारी भारत भूमि पर कोई भी भारत-विरोधी न रह जाय। इसी प्रकार एक विजय अभियान हेतु शिवाजी को श्री परमानन्द , अनन्तदेव, केशवदेव आदि विद्वत् जनों द्वारा दिये गये आशीर्वाद प्रसंग में भी राष्ट्र के प्रति भाव अभिव्यक्त किया गया है।[2]

छत्रपति-शिवाजी राज्याभिषेक के समय सम्पूर्ण प्रान्त से उपस्थित नर-नारियों का वर्णन भी दर्शकगण में राष्ट्र के प्रति निष्ठा की ही पुष्टि करता है।[3] एक अन्य प्रसंग में शिवाजी की माता जीजाबाई द्वारा गाये गये गीतों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीरों की याद दिला कर तथा उनके नतमस्तक होने का सन्देश देकर भी वर्णेकर जी ने दर्शकों की राष्ट्रीय

---

1. शिवराज्याभिषेकम् 1/5 दृश्य
2. शिवराज्याभिषेकम् 3/1-30
3. शिवराज्याभिषेकम् 5/1

भावना को बड़ी ही भावुकता से सिंचित किया है तथा छत्रपति-शिवाजी द्वारा अपने राज्य में अंग्रेज व्यापारियों को मुद्रा न ढालने देने की आज्ञा देने के प्रसंग को लेखक ने राष्ट्रिय-भावना को मुखरित करना चाहा है।[1] इस प्रकार श्री वर्णेकर जी ने प्रस्तुत कृति में शिवाजी के माध्यम से राष्ट्र की रक्षा एवं राष्ट्रहित के लिए जन-जन में जागृति पैदा की है।

छत्रपतिचरितम् :

इस गद्य काव्य के रचयिता साहित्याचार्य डा0 उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी है। अन्य नाटकों एवं काव्यों की भाँति इस महाकाव्य में भी भारत एवं भारतीयता के रक्षक छत्रपति शिवराज के जीवन चरित का अत्यन्त ही मनोरम वर्णन किया गया है।प्रस्तुत काव्य में भारत देश के अन्तर्गत अवस्थित हिमगिरि, कश्मीर,पंजाब,सप्त सिन्धु,उत्तर प्रदेश, बिहार,बंगाल, महाराष्ट्र आदि राज्यों का बड़े ही काव्यात्मक ढंग से वर्णन किया गया है। महारानी लक्ष्मीबाई, तात्यातोपे,बालगंगाधरतिलक महात्मा गाँधी, पं0 जवाहरलाल नेहरू आदि भारत रत्नों की वीर गाथा का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से श्री त्रिपाठी जी ने भारतवर्ष के गौरव शाली अतीत को बड़ी ही भावुकता से व्यक्त किया है। तत्कालीन भारत की दीनता पर करुणा प्रदर्शित की गयी है।स्वदेश की रक्षा न करने वाले राजाओं, महाराजाओं के प्रति घृणा के बीज बोये गये हैं एवं उनकी निन्दा की गयी है।

राष्ट्रभक्त छत्रपति शिवाजी द्वारा भारतीयता के विरोधी अफजल खाँ, शाइस्ता खाँ आदि के दमन की ऐतिहासिकता का उत्साह पूर्वक वर्णन किया गया है।[2] हिन्दू धर्म की महत्ता को प्रकाशित कर राष्ट्रीय एकता पर बल दिया गया है।

---

2. छत्रपतिचरितम - सर्ग 5-10

कवि महोदय ने अपने देश की छवि का वर्णन करते हुए हिमालय पर्वत को भारत देश के सिर के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने हिमालय पर्वत एवं हिमालय से निकलने वाली पुण्य गंगा पर अपनी अगाध आस्था व्यक्त की है। त्रिपाठी जी की धारणा है कि भारत वर्ष के वीर जब तक इन दोनों [हिमालय एवं गंगा जी] को आत्मीयता के साथ याद करते रहेंगे तब तक वे कठिन से कठिन संकट से अपने आप को सुरक्षित रख सकेंगे। उनकी दृष्टि में काश्मीर प्रान्त भारत देश का अभिन्न अङ्ग है। त्रिपाठी जी पूर्णत: विश्वस्त होकर कहते हैं कि जब तक भारतीयों के शरीर में लहू का एक बूंद भी शेष रहेगा, तब तक भारतवर्ष की प्रतिष्ठा पर कोई आघात नहीं पहुँचेगा। कवि महोदय ने इन्हीं भावों को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

शैलेश्वरो यस्य शिर: समुन्नतं गाम्भीर्यमम्भोधिरनन्तरत्नभू: ।
दाक्षिण्यपुण्योपचितैव सन्तति: तत्कीर्त्यते देशविशेषभारतम् ।।[1]

संस्कृत भाषा के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करते हुए श्री त्रिपाठी जी कहते हैं कि यह अन्य भाषाओं के विद्वानों को भी पद-पदार्थ के ज्ञान से उपकृत्य करती है। कवि महोदय का डिण्डिमघोष है कि जो भारत भूमि में जन्म लेते हुए संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं अर्जित करते हैं, वे निश्चय ही भारत भूमि के लुटेरे हैं।

---

1. छत्रपति चरितम् 2/1

छत्रपति शिवाजी के प्रति कवि ने इस लिए आस्था व्यक्त की है कि ये भारत और भारतीयता की रक्षा करने वाले हैं। त्रिपाठी जी की मान्यता है कि यदि काव्य सर्जना के लिए छत्रपति शिवाजी जैसा नायक, संस्कृत जैसी भाषा एवं भारत भूमि जैसा प्रतिपाद्य विषय हो तो काव्य स्वयं अच्छा बन ही जाता है।

शिव: पात्रं वचो ब्राह्मी प्रस्तावो मातृभूत्सव: ।
सर्वमेतत्परं दैवात् सूत्रधारोऽहमीदृश: ।।[1]

त्रिपाठी जी अपने काव्य के माध्यम से कहते हैं कि भारत वर्ष में जो कुछ भी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता शेष है वह छत्रपति शिवाजी के कारण ही है।

जाह्नवी-जाह्नवी येयँ हिन्दवो-हिन्दवोऽथवा ।
भारतं- भारतं वाद्य तत्र हेतु: शिवोदय: ।।[2]

कवि की धारणा के विषय में जहाँ तक मेरा विचार है वह यह है कि यदि भारत भूमि पर छत्रपति शिवाजी का जन्म न हुआ होता तो भारत को अभारत बनाने से मुगलसम्राट् औरंगजेब को कोई रोक नहीं सकता था।

यह काव्य हम सभी भारतीयों को स्वातन्त्र्यबोध कराता है, जन-जन में स्वतन्त्रता की भावना भरता है; राष्ट्र धर्म को सभी धर्मों से उन्नत मानने की शिक्षा देता है और देश भक्त जनता को वर्ण विशेष एवं जाति विशेष से ऊपर उठकर देखने की प्रेरणा देता है। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि कवि महोदय ने छत्रपति कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर वर्तमान परिस्थितियों का वर्णन किया है।

---

1. छत्रपतिचरितम् 1/16 2. छत्रपतिचरितम् 19/52

0 0 0 0 0
0 0 0
0

चतुर्थ अध्याय

नाटकत्रयी में रस-योजना

नाटकत्रयी में रस-योजना

काव्य या नाटक में रस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भरत-मुनि ने "नहि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते" कहकर काव्य में रस के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। रस शब्द भरतमुनि द्वारा स्वयं प्रथमत: उद्भूत शब्द नहीं है क्योंकि भरतमुनि के पूर्व ऋग्वेद काल से ही रस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग गौ ,दुग्ध, सोमरस आदि के लिए हुआ है। जन्में रसस्य वा वृधे[1], तो उपनिषद् में ब्रह्मआदि के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह कामसूत्र में रति एवं प्रेम के लिए रस का प्रयोग किया गया है।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने कहा है कि वास्तविक कवि वही है जिसके काव्य से मर्त्यलोकवासी भी 'अमृत का पान कर लेता है।

स: कविस्तस्य काव्येन मर्त्या अपि सुधान्धस: ।
रसोर्मिघूर्णिता -नाट्ये यस्य नृत्यति भारती ।।[2]

आचार्य मम्मट ने आनन्द(रस) को सकल प्रयोजनमौलिभूतं कहा है। रस की अनुपस्थिति में अलंकार आदि हास्यास्पद हो जाते हैं। आचार्यों ने रस को काव्य में सर्वोच्चस्थान प्रदान कर इसकी प्रतिष्ठा आत्मा के रूप में की है।

ध्वन्यालोक पर टीका लिखते हुए अभिनवगुप्त ने कहा है-"तेनरस एव वस्तुतआत्मा, वस्त्वलंकारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति ।[3]

---

1. ऋग्वेद 1-37-5
2. नाट्यदर्पण 1/5
3. ध्वन्यालोक लोचन टीका 1/5 की व्याख्या

आचार्यों ने काव्य रस के चार अवयव बतलाये हैं-

1• विभाव 2• अनुभाव 3• व्यभिचारीभाव 4• स्थायी भाव।

काव्यों में प्रयुक्त या नाटक में प्रदर्शित विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से परिपुष्ट होकर रति आदि स्थायी भाव आस्वादन योग्य हो जाता है तो वह रस कहलाता है।[1] भरतमुनि का कथन है- विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:।

दशरूपककार का कथन है- अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकं। स्थायी भाव में उन्मग्न, निमग्न होने वाले सहकारी भाव संचारी भाव कहलाते हैं-

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिण:।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना: कल्लोला इव वारिधौ।।[2]

नाटक में रस की स्थिति का अनुशीलन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाटक में रस का वही महत्त्व है जो पुष्प में सुगन्धका, अग्नि में दीप्ति का और शरीर में प्राण का। इसमें सन्देह नहीं कि जिस नाटक में कवि रस तत्त्व की सम्यक् योजना करता है वह मधुर, सरस एवं जीवन्त लगने लगता है, अपितु जह रस तत्त्व की सम्यक् योजना नहीं होती, वहाँ काव्य निष्प्राण एवं नीरस हो जाता है।

1• काव्यप्रकाश - पृ0 119, 4/28

2• दशरूपक - पृ0 189, 4/7

आचार्य आनन्दवर्धन का प्रस्तुत कथन सर्वथा समीचीन है कि कवि की प्रवृत्ति का निबन्धन प्रमुखरूप से रसयोजना [रसबन्ध] में ही होना चाहिए। इति वृत्त तो उसका उपाय ही है। जिस प्रकार आलोक को चाहने वालों के लिए एक मात्र दीपशिखा ही साधन है।[1]

इस प्रकार संक्षेप में रस के विषय में कहा जाता है कि 'सहृदय जनों द्वारा अलौकिक विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग का प्रत्यक्ष या मनसा साक्षात्कार ही रस है।

जहाँ तक रस की संख्या निर्धारण का प्रश्न है वह भी इसी प्रसंग में अपेक्षित है। भरतमुनि ने रस की संख्या आठ मानी है, आचार्य मम्मट ने भी अविकलरूप से आठ ही प्रकार के रसों को उद्धृत किया है-

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।।[2]

उद्भट ने सहज भाव से शान्त को मिलाकर नौ रस माने हैं।

अभिनव गुप्त ने अत्यन्त प्रबल शब्दों में नाट्य एवं काव्य दोनों में शान्त रस की प्रतिष्ठा की है, इन्होंने इस शब्द में नाट्य एवं काव्य में विभेद को भी नहीं स्वीकारा है। इस प्रकार अभिनव गुप्त ने निश्चितता से व्यवस्था की है कि रस नौ हैं- एवं ते नवैव रसाः ।।[3]

---

1. ध्वन्यालोक- 1/9
2. काव्य प्रकाश सू0 44 पृ0 141 नाट्यशास्त्र 6/16
3. 'हिन्दी अभिनव भारती' पृ0 640

भारतीय साहित्य -मर्मज्ञों की यह विचित्रता है कि एक ओर जहाँ रसों की अनेकता की स्थापना के प्रयत्न हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर सभी रसों को एक रस में समाहार करने के प्रयत्न चल रहे हैं। इन रसों में प्रधानता एवं अप्रधानता को दृष्टि में रखते हुए कुछ आचार्यों ने एक या अनेक मूल रसों की कल्पना की है। भोज आदि आचार्यों ने केवल श्रृंगार रस की तथा वैष्णव आचार्यों ने केवल भक्तिरस की स्थापना की है। भवभूति ने उत्तर रामचरित में कहा है कि "एकोरस: करुण एवं" अभिनव गुप्त ने शान्त रस को मूल रस माना है-

" शान्तस्तु प्रकृतिर्मत:" ।

इस प्रकार समय-समय पर किसी एक रस की प्रधानता मानी जाने लगी।

<u>अंगी एवं अंग रस योजना :-</u>

नाटकों (रूपकों) में प्रमुख नायक एवं नायिका के अतिरिक्त अन्य सहायक पात्र होते हैं। यही कारण है कि इन से सम्बन्धित विशेष स्थायी भावों पर आधारित विभिन्न रसों का संयोजन होता है। इन रसों की संयोजना में जो रस सर्वाधिक प्रधानता रखता है, उसकी अंगी रस के रूप में मान्यता होती है। इसके अतिरिक्त जो एक देश तक सीमित रहते हैं और गौण होते है वे अंग रस कहलाते हैं।

आचार्य भामह, दण्डी, रूद्रट आदि अलंकार शास्त्रियों ने अंगी एवं अंग रस का विधिपूर्ण निर्वचन किया है।[1] साहित्य मर्मज्ञों की इन मान्यताओं के अनुशीलन से यह निश्चित होता है कि नाटक में एक अंगी एवं अन्य रस को अंग होना चाहिए।

सम्प्रति यह प्रश्न उठता है कि कौन-कौन से रस अंगी रस के रूप में प्रयुक्त होने चाहिए। आचार्य विश्वनाथ ने इसका समाधान करते हुए लिखा है कि श्रृंगार एवं वीर रस में से किसी एक रस को अंगी रस के रूप में संयोजित करना चाहिए। अन्य रसों को अंग रस के रूप में उपन्यस्त करना चाहिए।

---

1. काव्यालंकार 1/2

इस प्रकार आचार्यों के मतों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक कवि की अपनी स्वतन्त्रता होती है कि वह किसी रस को अंगी रस के रूप में मानकर अपने कवित्व को प्रकट करे।

नाटकों का प्रधान रस

कविवर मूलशंकर याज्ञिक जी ने "छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं प्रतापविजयम्" नामक नाटकों में वीर रस एवं "संयोगितास्वयंवरम्" नामक नाटक में श्रृंगार रस को अंगी रस के रूप में व्यंजना की है। "संयोगिता-स्वयंवरम्" नाटक श्रृंगारिक होते हुए भी वीर रस से परिपूर्ण है। इसका प्रमुख कारण शिवराज, राणाप्रतापसिंह का वीर चरित होना एवं पृथ्वीराज चौहान का संयोगिता से प्रेम सम्बन्ध होने के साथ-साथ वीर चरित का होना है।

छत्रपति साम्राज्यम् एवं प्रतापविजयम् में अङ्गीरस [वीर रस]

चरित प्रधान नाटक होने के कारण कवि ने तदनुकूल वीर रस की निसर्ग योजना कर अपनी कृति की स्वाभाविकता की रक्षा की है। वीर रस उत्तम प्रकृति का होता है। इसके संचारी भाव; धृति, गर्व; स्मृति, तर्क और रोमांच आदि हैं। वीररस, दानवीर, युद्धवीर, दयावीर एवं धर्मवीर के भेद से चार प्रकार का होता है। इन दोनों नाटकों में हमें वीर रस के उपर्युक्त चारों भेदों की व्यंजना प्राप्त होती है। शिवराज एवं राणाप्रताप सिंह के कार्यों, व्यवहारों एवं योजनाओं में इन रसों की सम्यक व्यंजना हुई है। नाटकों के प्रारम्भ में श्री याज्ञिक जी ने जो नान्दी पाठ प्रस्तुत किया है, उसी से यह ध्वनित होता है कि छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं प्रतापविजयम् नामक नाटकों को अङ्गी रस वीर रस है।

वीर रस के बीज का वपन शिवराज के इस कथन से होता है कि हे मित्रों ! इस भूमि को धर्मच्युत, उन्मद शासकों से मुक्त कराने के लिए, स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापना के अतिरिक्त अन्य कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है-

उद्धर्तुमेनां परिपीडितां भुवं ,
धर्मच्युतैरुन्मदराजसंघै: ।
साम्राज्यसंस्थापनमन्तरेण ,
न वर्ततेऽन्याऽर्थकरी प्रतिक्रिया ।।[1]

शिवराज के इस कथन में भी वीर रस की अभिव्यक्ति है कि हे मित्र। साहस के द्वारा ही श्री की प्राप्ति सम्भव है क्योंकि राजलक्ष्मी उसी का वरण करती है जो शत्रु के अभ्युदय में भी धैर्य और साहस नहीं छोड़ता है, जो जितेन्द्रिय सतत प्रयत्नशील और पराक्रमी है। वह सहज में ही श्री के द्वारा सुशोभित किया जाता है।

रिपुप्रकर्षेऽप्यनपागतधृति -
र्जितेन्द्रिय: साहसविक्रमोर्जित: ।
दिवानिशं य: सततं प्रयत्नवां -
स्तमेव सद्यो वृणुते नृपश्री: ।।[2]

---

1. छ० सा० 1/8

2. छ० सा० 1/11

शिवराज अनुचर द्वारा इस प्रकार सुनते हैं कि-

विजयतां कुमारः। स्वभगिनीमाप्तुत्तस्य ग्रामं प्रापयन्त नेताजीमार्गे समाक्रम्य सबान्धवं च तं निहत्यापहृता तस्य भगिनी बीजापुरसैनिकैः।[1]

प्रस्तुत प्रसंग में वीर रस के आश्रय शिवराज हैं, आलम्बन बीजापुर के सैनिक हैं, बीजापुर के सैनिकों द्वारा मार्ग में बान्धवों सहित नेता जी का वध एवं उनकी भगिनी का अपहरण उद्दीपन है।

शिवराज का अभीष्ट शत्रु को पराजित करना है उनका अदम्य उत्साह उनके उदात्त चरित को और अधिक उत्कृष्ट बना देता है। अधोविन्यस्तपद्य में उनका उत्साह विधिवत् अभिव्यंजित हो रहा है-

मानं धनं राजविलासभोगान् ,
मित्राणि दारानपि जीवितं च ।
हुत्वा रिपुज्वालितहव्यवाहने,
संस्थापयिष्ये मम धर्मराज्यम् ।।[2]

अर्थात् शिवराज कहते है - मैं शिवराज घोषणा कर रहा हूँ कि शत्रु द्वारा प्रज्वलित समरस्थली अग्नि में मैं अपने मान,सम्मान,धन,भोग, विलास, पत्नी और प्राणों तक की आहुति देकर धर्मराज्य की स्थापना करूँगा। यहाँ पर आश्रय रूप शिवराज है शत्रु की पर्युक्त वृत्तियाँ उद्दीपन हैं।

- -

1. शि० रा० पृ० 22

2. शि० रा० 1/21

शिवराज के इस कथन में भी शौर्य और साहस है कि - हे मित्रों ! आप सब की सहायता से हमारी साम्राज्य सिद्धि समीप ही है। इसलिए आपलोग उपहार देकर पाकण और कोण्डले दुर्गपालों को वश में कर के दुर्गों पर अधिकार करें, मैं भी कूटनीति के द्वारा पुरन्दर दुर्ग पर अधिकार करके सूपेप्रान्ताधिप दुराचारी अपनेमातुल को अधिकारच्युत करता हूँ।[1] शिवराज के इन कथनों में भी वीर रस की अभिव्यक्ति हो रही है कि हे सचिव ! तुम शीघ्र ही प्राकारादि से घिरे हुए दुर्भेद्य एवं नवीन दुर्ग राजगढ़ का निर्माण कर उसे राजधानी के योग्य तैयार करो, हम उस दुर्ग से राजकार्य देखेंगे, हे वीर ! तुम भी तत्काल ही विदेशी वणिक से खरीदे गये शास्त्रास्त्रों से मावलों की सेना तैयार करके कल्याण विजय के लिए प्रेषित आबाजी वीर के साथ जाकर सम्मिलित हो जाओ।[2]

मंत्री के प्रति वीर शिवराज के इन वचनों से वीर रस की अत्यधिक प्रभावी व्यंजना प्रकट हो रही है। हे मित्र ! राजतन्त्र की सम्यक् व्यवस्था होने पर भी मेरा हृदय न जाने क्यों अशान्त है, यद्यपि रातदिन सैकड़ों शत्रुओं का बध-करके हमने अपनी शक्ति से इस प्रदेश को अपने अधिकार में लिया है, तथापि शत्रुओं का वधकरने के लिए उत्सुक मेरी तलवार अभी सन्तुष्ट नहीं हुई है।

---

1. छ0 सा0 पृ0 32

2. छ0 सा0 पृ0 47

शिवराज: - मन्त्रिन् सुव्यवस्थितेऽपि राजतन्त्रेकथमद्यापि निर्वृतिं न व्रजति मेऽन्तरात्मा
रात्रिंदिवं रिपुगणान् शतशो निहत्य, नीतो वशं प्रसभमेष मया प्रदेशः ।
नायं तथापि परिपन्थिवधाकुलो मे; तृप्तिं प्रयाति नितरां तृषितः कृपाणः।[1]

शिवराज के शौर्य की सिद्धि के लिए उन्हें भवानी नामक कृपाण भेंट की जाती है जो कि युद्ध वीर रस की सिद्धि में सहायक बनती है।[2]

शिवराज क्रोधपूर्ण स्वर में कहते हैं कि अरे ! यह तुमने क्या कर डाला, क्या सूर्य वंश में उत्पन्न व्यक्ति जो सदा धर्माचरण में प्रवृत्त रहता है कदापि परस्त्री में प्रवृत्त होगा ? क्या राजहंस विषम परिस्थिति आने पर भी कभी बगुले की वृत्ति का आश्रय ले सकता है ?

तपनकुलभवस्य धर्मवृत्तेरपि परदाररतीर्विभाव्यते किम् ।
विषममुपगतोऽपि राजहंसः, किमु बकवृत्तिमुपाश्रयेत्कदाचित्।।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त कथन से शिवराज की धर्मवीरता ध्वनित हो रही है।

बाजी के इस कथन में भी अत्यधिक उत्साह है कि धर्म और अस्थि से बना ये शरीर जो आप के अन्नपानादि से पालित हुआ है, यदि आप के जीवन के लिए ही भस्म हो जाय तो इसे अत्यधिक कृतकृत्य मानूँगा।

---

1. छ० सा० 3/1
2. छ० सा० पृ० 50
3. छ० सा० 3/6

त्वदन्नपानादिविवर्धितोऽयं, भस्मीभवेच्चेद्वने तवैव ।
तदास्य धर्मास्थिविनिर्मितस्य, देहस्य मन्ये कृतकृत्यतां पराम् ।।[1]

वीणावादक के द्वारा गाये गये गीत में शिवराज की धर्म वीरता , युद्धवीरता एवं दयावीरता ध्वनित हो रही है।

कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ।
भारतवर्षनरेशकुलपते ! नयसमुपार्जितदिगन्तकीर्ते ! ।।
रमापते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज! ।। 1 ।।
स्वातन्त्र्यसुरापगावतारणसुखसंपादितराष्ट्रोद्धारण। ।।
धर्मपते ! महाराज ! कृपालोछत्रपते ! महाराज! ।। 2 ।।
मायापहृतनिखिलभूभारस्त्वमसि कृपानिधिशिवावतार: ।।
विबुधपते ! महाराज ! कृपालो! छत्रपते ! महाराज! ।। 3 ।।
अरिगणयवनतिमिरहरमिहिरस्त्वं विलससि महसां रणवीर-
रिपुधरापते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज! ।। 4 ।।
निजजनपदपुरजनाभिनन्दितदेवादिजवरकिन्नरवन्दित: ।।
विश्वपते ! महाराज ! कृपालो ! छत्रपते ! महाराज ! ।। 5 ।।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त गीत में चारो प्रकार के वीर रस की संयोजना की गयी है।

---

1. छ० सा० 5/4
2. छ० पृ० पृ० 170-71

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने प्रताप विजयम् नामक नाटक में वीर रस के कतिपय उदाहरण अङ्गीरस के रूप में उद्धृत किया है।

मुगल सेवक मान सिंह द्वारा प्रलोभन देने पर भी राणा प्रताप सिंह वीरतापूर्वक कहते हैं- तेजस्वी क्षत्रियोचित्त गुण शौर्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले, अर्थ और काम के द्वारा अपने पराक्रम को नष्ट न करने वाले तथा प्राणांतक कष्ट उपस्थित हो जाने पर अविरल रहने वाला दृढ़ व्रती राजा दूसरे राजा को आदर नहीं करते हैं।

तेजस्विनः क्षत्रगुणे प्रतिष्ठिता, न चार्थकामापहतात्मविक्रमाः ।
प्राणान्तकष्टेऽप्यचला दृढव्रता, नैवाद्रियन्तेऽन्यनरेन्द्रशासनम् ॥[1]

राणा प्रताप सिंह के इस कथन से भी वीर रस का उद्दीपन हो रहा है- क्षणभर में राष्ट्र नष्ट हो जाय, समस्त कुल को शीघ्र विनष्ट कर दो लेकिन मेरे लिए एक मात्र स्वतन्त्रता ही शरण है।

प्राप्नोतु राष्ट्रं त्वचिरादिनाशं कुलं समग्रलयमेतुतय: ।
सहस्रधाशु प्रविदीर्यतांवपुः स्वातन्त्र्यमेकं शरणं परं मे ॥[2]

प्रतापविजय नाटक में झालामान सिंह के इस कथन से भी वीर रस की झलक स्पष्ट दिखाई देती है - जिसमें झालामान सिंह कहते है कि सूर्य वंश की सेवा में ही यह हमारा क्षणभंगुर शरीर समाप्त होगा।

---

1. प्रताप विजयम् 1/10
2. प्रताप विजयम् 1/21

राष्ट्रप्रतिष्ठापरिपालनव्रता: सज्जा वयं त्वद्वचनैकतत्परा: ।
निहत्य दृप्तान् परिपन्थिसैनिकान् सन्तर्पयामोऽद्य रणाधिदेवताम्।।[1]

अर्थात् राष्ट्र की प्रतिष्ठा के रक्षार्थ व्रत लेने वाले हम आपके आदेश पालन में तत्पर हैं, और आज इन शत्रु के मतवाले सैनिकों को मार कर रणदेवता को प्रसन्न करेंगे। दुर्गपाल के इस कथन से युद्धवीर रस का उद्दीपन हो रहा है कि अनेक प्रकार के प्रहार करने में दक्ष, वीर सैनिकों के कारण भयंकर तथा क्षुद्रनिरोधक समूहों के साथ युद्ध करता हुआ यह आप का दास प्राणों की बाजी लगाकर भी प्रधान दुर्ग की रक्षा करेगा-

नानाप्रहारपटुवीरभटोत्कटोऽयं,
क्षुद्रावरोधकगणै: प्रतियुद्धमान: ।
दासस्त्वदन्नपरिपुष्टवपुर्ध्रुवं ते,
प्राणात्ययेऽपि परिपालयिताऽग्र्यदुर्गम्।।[2]

एक अन्य स्थान पर वीर रस की अभिव्यक्ति होती है जिसमें पृथ्वीराज मुगलदरबार में रहते हुए "अकबर द्वारा यह कहने पर कि तुम्हारा मित्र राणाप्रताप सिंह मेरी शरण चाहता है" कहता है कि अजेय प्रताप सिंह संकट में पड़ जाने पर भी यदि एक बार आप को सम्राट् कह दें तो गंगा की धारा विवश होकर उल्टी बहेगी और सूर्य पश्चिम दिशा में उगेगा-

विषममुपगतोऽप्ययं यदि त्वां सकृदधिराजमुदाहरेदजय्य: ।
सुरसरिदवशा वहेत्प्रतीपं तपनकरोऽप्युदियात्तदा प्रतीच्याम् ।।[3]

1• प्रताप विजयम् 2/5

2• प्रताप विजयम् 4/12

3• प्र0 वि0 7/3

इस प्रकार उपर्युक्त अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी को प्रतापविजयम् एवं छत्रपति साम्राज्यम् नामक नाटकों में अङ्गी रस के रूप में वीर रस के अभिव्यंजन में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

नाटकद्वय में गौण रस :-

कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने अपनी इन कृतियों में अंगी रस के साथ ही साथ गौण रस की भी मनोरम संयोजना की है। इन्होंने अपने गौण रस योजना से नाटक को हृदयाह्लादकारी बनाया है। याज्ञिक जी द्वारा गौण रस के रूप में निबद्ध कतिपय उदाहरण अधोलिखित है-

1. शृंगार रस :-

छत्रपतिसाम्राज्यम् एवं प्रताप-विजयम् ये दोनों नाटक वीर-रस-प्रधान है। इन नाटकों में शिवराज एवं प्रतापसिंह का उदात्त चरित उपनिबद्ध हुआ है। अतः शृंगार रस की स्थिति नगण्य ही है परन्तु कवि ने अङ्गरस के रूप में इन नाटकों में शृङ्गार रस की व्यञ्जना प्रस्तुत की है।

वीणावादक के द्वारा प्रस्तुत गीत में विप्रलम्भ शृङ्गार रस की सम्यक् व्यञ्जना मिलती है। प्रस्तुत गीत में उस समय का वर्णन किया गया है, जब शिवराज रामसिंह की बात मानकर मुगलसम्राट् की अधीनता स्वीकार करने हेतु सम्राट् के महल में जाते है। उनके सम्मान हेतु गीत गाया जाता है जिसको सुनकर शिवराज कहते हैं कि यह गीत मेरे वियोग से दुरवस्था का अनुभव कर रही है। इस गीत से मेरी महाराष्ट्र भूमि सूचित हो रहा है -

लताकुन्जलीना

तृणाद्द्वेशयाना स्वबाहूपधाना स्वयंवीतमाना प्रियेसावधाना ।

क्षुधा विह्वला ते नवीनानिलीना ।। लता0 । ।।

पदं ते लपन्ती वियोगे तपन्ती । मुखं स्नापयन्ती तनुं ग्लापयन्ती ।

रुजाक्षीयते कान्तहीना निलीना ।। लता0 2 ।।

अवश्यानमन्ते प्रियाया वरं ते । विलम्बेऽशुभे तेऽनुतापो दुरन्ते ।

क्षणं याचते नाथ । दीना निलीना ।। लता03 ।।

राधा की दूती कह रही है कि हे कृष्ण । लताओं के कुन्ज में लीन तृणों को शय्यापर अपने बाहुओं की तकिया लगाये अपने मान का त्यागकर, अपने प्रियतम में मन को रमाये हुए नवानुराग॥विरहदु:ख॥ में व्याकुल है। तुम्हारे विरह-गीतों का उच्चारण करती हुई, वियोग में जलती आँसुओं से मुख को धोती हुई अपनी शोभा से हीन हो रही है। अपनी प्रिया के समीप तुम्हारा पहुँचना अत्यन्त उचित है। विलम्ब करने पर अशुभ की आशंका है और उसके नष्ट हो जाने पर तुम्हारे लिए पाश्चाताप का विषय होगा। हे नाथ । वह तुम्हारे क्षणभर के समागम की याचना करती है।

पुन: याज्ञिक जी "प्रतापविजय" नाटक में राजपुत्री द्वारा गाये गये इस गीत में श्रृंगार रस की अभिव्यन्जना करते हैं प्रस्तुत गीत में राजपुत्री अमरसिंह के प्रति अनुरक्त है परन्तु परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण मिलन

---

1. छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 137

असम्भव सा है। वह अपने दुर्भाग्य को कोसती है। सखी द्वारा समझाने पर कि प्राणियों के संयोग एवं वियोग भाग्य के अधीन है, अतः दुर्लभ प्रार्थना में प्रवृत्त मन को थोड़ी देर समाहित करके वेदना से खिन्न मन का विनोद करो। इस प्रकार प्रस्तुत गीत के माध्यम से राजपुत्री अपनी वेदना को प्रस्तुत करती है-

अयि सखि ! मा कुरु मयिपरिहासम् ।

सदपि तमानय नयन विलासम् ॥

तन्मुखपङ्कजलोकनलोलम् किमयि ! न पश्यति लोचनदोलम् ॥ अयि0। ॥

प्रत्यादेशपरुषमपि दयितम्, कामयते मुषितहृदयमपि ! तम् ॥ अयि02 ॥

कथमपि कुरु सखि ! सत्वररचनम्, श्रावय परमं तन्मृदुवचनम् ॥ अयि0 3 ॥

द्रुतमुपयाहि प्रियतमसदनम्, निपतति मयि सखि ! निर्घृणनिधनम् ॥ अयि04 ॥[1]

अर्थात् अरी सखी ! मेरा परिहास न करो। शीघ्र ही उस नयनाभिराम को ले आओ। अरी ! उसके मुखारविन्द के दर्शन के लिए चञ्चल झूले के समान मेरे नेत्रों को क्या नहीं देख रही हो। मेरा तिरस्कार करने के कारण कठोर बने भी उस प्रियतम को [मेरा] चुराया गया हृदय चाहता है। सखी ! किसी तरह शीघ्र उपाय करो और उसका अन्तिम कोमल वचन सुनाओ। सखी प्रियतम के घर शीघ्र जाओ मुझपर निष्ठुर मृत्यु का प्रहार हो रहा है।

- -

1. प्रताप विजयम् - पृ0 123

पृथ्वीराज की बहन, राणाप्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह पर अनुरक्त है। उसकी सहचरी, राजपुत्री को समझाते हुए कहती है कि प्रेम के कारण उद्यत होने पर भी दूसरे का अनुसरण करने वाले व्यक्ति पर मोहित होकर जो सुन्दरी अनुराग प्रकट करती है वह वायु द्वारा नचाये गये मेघ से वाञ्छित होने वाली चकोरी की तरह शोक से विह्वल होती है।

पुरानुवृते प्रणयोन्मुखेऽपि या, मुग्धाङ्गनाविष्कुरूतेऽनुरागम् ।
समीरणानर्तितमेघवाञ्छिता, सा चातकी वाशु शुचाऽवसीदति।।[1]

एक अन्य उदाहरण मे याज्ञिक जी कहते हैं- युवराज(अमरसिंह) राजपुत्री (पृथ्वीराज की बहन) कोदेखकर मन में ही प्रेम भाव से कहता है- नये अनुराग से विभूषित चन्चल नयनों वाली यह बाला शीघ्र ही मरे मन में बस गयी है। क्योंकि सुन्दरियों का मनोहर कटाक्षपात क्षणभर में ही युवकों पर विजय प्राप्त कर लेता है।[2]

इस प्रकार याज्ञिक जी ने श्रृंगाररस के रूप में बड़ा ही अनूँठा वर्णन किया है।

<u>हास्य रस :-</u>

प्रस्तुत नाटकों में हास्य रस यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है परन्तु कहीं-कहीं पर पारस्परिक वार्तालापों, कार्यकलापों से हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है। छत्रपति साम्राज्यम् नामक नाटक के प्रारम्भ में ही नटी के गीत सुनने

---

1. प्रताप विजयम् - पृ 128

2. प्रताप विजयम् - 4/15

के पश्चात् जब सूत्रधार यह कहता है कि "आर्य सुनो, तुम्हारे गीतराग से आकृष्ट होकर नव जलधर मन्द-मन्द गर्जन कर रहा है।" सूत्रधार द्वारा वास्तविक विषय न समझने पर मानो नटी अपनी मुस्कान के द्वारा यह व्यंग कर रही हो कि आर्य पुत्र ! आप इतना ही नहीं समझ रहे है कि यह मेघ-गर्जन नहीं है यह तो वीर शिवराज गरज रहे है।[1] यहाँ पर नटी के कथन से हास्य रस की निष्पत्ति हो रही है।

-उस योजना में भी हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है जिसमें शिवराज और उसके पुत्र मिठाई की टोकरी में बैठकर यवन सैनियों के पहरा देते रहने पर भी निकल भागने में सफल हो जाते है।[2]

प्रतापविजय नाटक के इस कथन में भी हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है। जब गुप्तचर अकबर को प्रणाम करके यह सूचना देता है कि 'सम्राट् के प्रभाव से अभिभूत होकर' प्रताप सिंह महाराज को सम्राट् मानकर स्वतन्त्रता का दुराग्रह छोड़कर सम्राट् की शरण ढूंढ रहा है।[3] उपर्युक्त गुप्तचर के कथन में मिथ्याभिव्यक्ति होने के कारण हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

3· <u>करुण रस</u> :-

श्री याज्ञिक जी ने उपर्युक्त दोनों नाटकों में करुण रस का प्रयोग गौण रस के रूप में किया है। जो निम्नवत है-

- -

1· छ० सा० : पृ० 16

2· छ० सा० : पृ० 144

3· प्रताप विजय पृ० 105

राणा प्रताप सिंह अपने प्रिय घोड़े चेतक के मृत्यु पर दुःख व्यक्त करते हुए कहते है हा प्रिय चेतक ! पशु होकर भी तुमने स्वामी के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर पुण्य लोक को जीत लिया है। कहते है-

दुर्गाद्रितुङ्गसरिदुत्प्लवने प्रवीरो, व्यूह्यभञ्जनपटुः समरे सहायः ।

मत्स्पर्शहर्षिततनुः समयेंगितज्ञो हाऽच्छिन्न एष विधिनैकपदेऽश्वसारः।।[1]

अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण का अभिप्राय यह है कि ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की चोटी और नदियों को लाँघने में वीर, शत्रु के व्यूह भेदन मे चतुर, युद्धभूमि में मेरा एक मात्र सहायक मेरे स्पर्श से जिसका शरीर पुलकित हुआ करता था और जो मेरे गूढ़ से गूढ़ रहस्य को जानने वाला था। वह श्रेष्ठ घोड़ा चेतक अचानक दैव द्वारा मुझ से छीन लिया गया। यहाँ पर इष्ट घोड़े चेतक के निधन रूपी अनिष्ट के कारण करूण रस है।

याज्ञिक जी के छत्रपतिसाम्राज्यम् नामक नाटक में करूणरस का प्रयोग उस समय किया गया है जब सैनिक प्रवेश कर घबराहट के साथ शिवराज से कहता है कि बाजी प्रभु मारे गये। शिवराज निःश्वास लेकर कहते है कि हाय ! हम लोग नष्ट हो गये।

सैनिकः (प्रविश्य) (ससंभ्रमम्) देव। हतो बाजीप्रभुः ।

शिवराजः (निःश्वस्य) हा हताः स्मः ।।[2]

यहाँ पर इष्ट बाजी के निधन रूपी अनिष्ट की प्राप्ति से करूण रस है।

---

1. प्रताप विजयम् 2/9

2. छ0 सा0 पृ0 99

4. <u>रौद्र रस :-</u>

वीररस-प्रधान उपर्युक्त नाटकों में याज्ञिक जी ने रौद्र रस का स्थान विशेष पर प्रयोग किया है। मानसिंह द्वारा राणाप्रताप सिंह, यवनपति अकबर की अधीनता स्वीकार करने को बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो जाते हैं और रोषपूर्ण स्वर में कहते हैं-

प्रतापसिंह: [सरोषम्] हा क्षत्रकुलाभिशासिन् ! तुरुष्कदास ! अलं तव प्रलापेन ।

विक्रीयदेश कुलधर्मयशोऽभिमानं,

हा त्वं तुरुष्क पतये न विलज्जसे किम् ।

उद्दामशासनविशीर्णपर प्रताप:,

सद्य: प्रचण्डकर एष विनेष्यति त्वाम् ।।[1]

अर्थात अरे क्षत्रिय कुलकलंकी ! तुर्क के सेवक ! यह प्रलाप बंद करो, देश, कुल, धर्म, यश और अभिमान को यवनपति के हाथ बेचकर तुम क्या लज्जा का अनुभव नहीं करते हो तुमको लज्जा आनी चाहिए। अपने कठिन श्रेष्ठ शासन द्वारा शत्रुजन का प्रताप विनष्ट करने वाला यह प्रचण्ड हाथ शीघ्र ही तुम्हारा विनाश कर देगा।

यहाँ प्रताप सिंह का क्रोध स्थायी भाव है, यवन सेवक मानसिंह आलम्बन है। कठोरवाणी में विकृति अनुभाव है। एक अन्य उदाहरण द्वारा रौद्र रस की अभिव्यक्ति हो रही है। शिवराज जब अनुचर द्वारा यह सुनते हैं कि जिस समय नेताजी अपनी भगिनी को ग्राम ले जा रहे थे, तो उसी समय बीजापुर के सैनिकों ने उनका वध करके उनकी भगिनी का अपहरण कर लिया है तो उनका क्रोध भड़क

---

1. प्रताप विजयम् 1/24

उठता है और वे क्रोध पूर्ण स्वर में कहते हैं कि -

शिवराज: [सरोष] अरे! कथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुलप्रसूतै रस्माभिर्मर्षणीयम्। यस्त्वा -

आर्तानां परिपालनाय सहसा शस्त्रं न येनोद्धृतं,

विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम्।

राज्ञामुत्पथगामिनां प्रमथने युद्धं न चैवद्धृतं,

क्षात्रं जन्मधिगस्य राघवस्य: प्रज्वालिते भारते ।।[1]

यहाँ पर शिवराज का क्रोध स्थायी भाव है आलम्बन बीजापुर के सैनिक हैं नेताजी का वध एवं भगिनी का अपहरण उद्दीपन है।

5• भयानक रस :-

वाजी द्वारा वीरता पूर्वक दुर्ग की रक्षा करते हुए मृत्यु के विषय में सैनिक शिवराज से कहता है कि भीषण कृपाण खींचें हुए करालपाणि से शत्रु सैनिकों के सिर को काट कर उनके कबन्धों से मार्ग को व्याप्त कर वह समरवीर सहसा प्रज्वलित प्रचण्ड अग्नि ज्वाला के समान प्रकाशित हुआ।

आकृष्टभीषणकृपाणकरालपाणिश्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्यकबन्धकीर्णम् ।

मार्गं निरुध्य सहसा समरप्रवीरश्चण्डप्रकोपहुतभुग्ज्वलितो विरेजे ।।[2]

इन में सम्पुष्ट भय नामक स्थायी भाव के द्वारा भयानक रस की व्यंजना हो रही है।

1• छ0 सा0 1/15

2• छ0 सा0 5/8

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है-

मंत्री, राणा प्रताप सिंह से कहता है कि झालामान सिंह के चारों तरफ से घिरे हुए होने पर भी राष्ट्र की रक्षा करते हुए, यवन सैनिकों द्वारा नाश होने से क्रोधित होकर अचानक हमारा हृदय जल उठा और हम लोगों ने तुरन्त शत्रुदल पर आक्रमण कर दिया। उस समय - महाप्रलय कालीन वायु से जैसे समुद्र क्षुब्ध हो उठता है उसी प्रकार से व्याकुल क्रोध की अधिकता से लोहित नेत्र वाले हमारे सैनिकों ने भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया और अपने प्रहारों से विपक्ष के सैनिकों को घायल करने लगे, उनके घावों से बहते हुए रक्तकीचड़ में शत्रु के धड़ पट गये।

महाप्रलयमारुतक्षुभितवारिधिव्याकुलमन्युकणीवलोहिताक्षमकरोद्रुषाऽस्मद्दलम् ।
प्रहारततिपातितप्रतिमताङ्गबन्धक्षतस्रवद्रुधिरकर्दमाप्लुतकबन्धमुग्रं रणम् ॥[1]

6• <u>अद्भुत रस</u> :-

राज्याभिषेक के आश्चर्य जनक उपक्रम को देखकर राजपुरुष कहता है-

मोतियों एवं मूँगे वाले बन्दनवारों से शोभित नगर के द्वारा तुरही के शब्दों-हाथियों के चीत्कारों, मृदंग के नाद से मंगल का विस्तार कर रहे हैं तथा प्रसन्नता से प्रफुल्लित मुखवाली स्त्रियाँ महोत्सव के आनन्द के कारण नूपुर एवं मेखला का सुन्दर स्वर बिखेरती हुई यश का गान कर रही हैं।

1• प्रतापविजय 2/1।

मुक्ताविद्रुमतोरणाङ्कितपुरोद्वाराणि तूर्यस्वनै -
श्चीत्कारैः कीरणां मृदङ्गनिनदैरातन्वते मङ्गलम् ।
काञ्चीनूपुरकिङ्कणीक्वणितकैरम्यैर्यशोगीतिकां,
गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदाश्रुपूर्णानना: ।।[1]

इस प्रकार गौण रसों की दृष्टि से इन नाटकों (प्रताप विजयम् एव छत्रपति साम्राज्यम्) के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने अङ्गीरस के सदृश ही अङ्ग (गौण) रसों की मनोरम योजना की है। जिससे कोई भी सहृदय अनायास ही आनन्दानुभूति कर सकता है।

संयोगिता-स्वयवरम् में अंगी रस

श्रृंगार रस :-

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने "संयोगितास्वयंवरम्" नामक नाटक में अङ्गी रस के रूप में श्रृंगार रस को प्रधानता दी है फिर भी यह नाटक श्रृंगारिक होने पर भी वीर रस से परिपूर्ण है।

प्रस्तुत नाटक में दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान एवं कन्नौजाधिप जयचन्द की पुत्री संयोगिता के प्रेम सम्बन्ध का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है। इस प्रेम सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए याज्ञिक जी ने इस कृति में श्रृंगार रस को प्रधान रस माना है।

- -

1. प्रताप विजयम् - 9/2, पृ0 सं0 10/3

उदाहरण :-

विमलजलसर:प्रवावगाह -

प्रवणनिजोपवनाश्रितोजनौघ: ।

विहरति नवकेलिभिर्वसन्ते

समहिमतापविनन्दितान्तरङ्ग: ।।[1]

प्रस्तुत प्रसंग में सुमति कन्नौजाधिप से वसन्त काल का वर्णन करते हुए कहता है-इस समय वसन्त काल में जन समूह निर्मल जलयुक्त सरोवर की धारा में स्नान करने में लीन और अपने उपवन पर आश्रित हिम और ताप में समानता होने से प्रसन्न अन्तरंग वाला होकर नई-नई केलि-कीड़ाओं के साथ विहार कर रहा है। यहाँ पर श्रृंगार रस का उद्दीपन ही प्रधान रस का पोषक है।

एक अन्य उदाहरण जिसमें संयोगिता द्वारा गाये गये गीत में विप्रलम्भ श्रृंगार का बड़ा ही सरस निदर्शन प्रस्तुत है-

क्व नु मम विहरसि मानसहंस ।।

धन इव सततं वर्षति नयनम् ।

स्फुटयति तडिदिव रतिरिह हृदयम् ।। क्व नु० । ।।

तिरयति तिमिरं तव पन्थानम् ।

अयिकुरु मस्तं/तव प्रिय यानम् ।। क्व नु० 2 ।।

विरहविधुलितां परमाकुलिताम् ।

प्रियमुखनिरतामव तव दयिताम् ।। क्व नु० 3 ।।[2]

---

1. संयोगिता-स्वायंवरम् 1/15

उपर्युक्त उद्धरण में संयोगिता, पृथ्वीराज के प्रति आसक्त है वह अपने ऊपर बीत रही व्यथाओं का वर्णन कर रही है-

हे मन रूपी मानसरोवर के हंस तुम कहाँ विहार कर रहे हो। नेत्र मेघ की भाँति निरन्तर बरस रहा है। हृदय बिजली की तरह तड़क रहा है। अंधकार तुम्हारे मार्ग को बाधित कर रहा है। तुम वायु को ही अपना यान बना लो, हे नाथ अपनी इस ग्रह के कारण व्याकुल, परम विह्वल प्रियतम के सुख में आसक्त अपनी प्रियतमा की रक्षा करो।

"संयोगितास्वयंवरम्" नाटक में गौण रस

कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी नेसंयोगितास्वयंवरम् नामक नाटक में अङ्गी रस के साथ ही साथ अंग रसों की भी मनोरम संयोजना की है इन्होंने अंग रस योजना से नाटक को हृदयाह्लादकारी बनाया है। गौण रस योजना के निम्न-वत् उदाहरण द्रष्टव्य है-

वीर रस :-

संयोगितास्वयंवरम् नामक नाटक में यद्यपि श्रृंगार रस को प्रधान रस माना गया है फिर भी वीर रस को इसके साथ ही साथ महत्त्व पूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। पृथ्वीराज चौहान की वीरता को ध्यान में रखते हुए याज्ञिक जी ने वीर रस को श्रृंगार रस के समतुल्य माना है।

उदाहरण:- दुर्दैवस्त्वमसि युद्धमते'प्रवृत्त:

समाज एव विहिते नृपराजसूये ।

सद्यो विरंस्यसि न चेद्व्यवसायतोऽस्मा-

द्भ्रन्तासु मे बलमतां करवाह्नवह्नौ ।।

1• सं0 स्व0 1/6

उपर्युक्त उदाहरण का भावार्थ यह है- पृथ्वीराज अनुचर द्वारा जयचन्द के पूर्व पत्र का उत्तर भेजता है, जिसे पढ़कर सुमति जयचन्द को सुनाता है।

हे मूढ बुद्धि वाले ! दुर्भाग्य से तुमसम्राट द्वारा ही किये जाने वाले राजसूय यज्ञ में प्रवृत्त हुए हो यदि इस कार्य से तुम शीघ्र ही विरत न हुए तो मेरी तलवार की अग्नि में पतङ्गे बना दिये जाओगे।

यहाँ पर पृथ्वीराज का युद्ध उत्साह स्थायी भाव है जयचन्द आलम्बन एवं राजसूय यज्ञ उद्दीपन है। इस प्रकार यहाँ पर युद्ध वीर रस है।

वीर रस का एक अन्य उदाहरण है जिसमें बालुकाराय द्वारा पृथ्वीराज को पकड़ने का जयचन्द को आश्वासन दिया जाता है। बालुकाराय कहता है- मैं काम और क्रोध के आधिक्य के व्यसन से ग्रस्त, दुर्विनय से युक्त, मद से अन्धे अपनी क्रोधाग्नि से जले हुए, समाप्त हुए वैभव वाले, वायु के अन्त को प्राप्त हुए उसके समस्त विशाल सेना को मारकर अपनी तलवार को तृप्त कर, उसे जीवित पकड़कर उसके पैर बाँध कर आप के पास पहुँचाता हूँ।¹

इस उदाहरण में उत्साह स्थायी भाव है संग्राम उद्दीपन एवं गर्व व्यभिचारी भाव है।

हास्यरस

प्रस्तुत नाटक में हास्य रस यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है परन्तु कहीं-कहीं पारस्परिक वार्तालापों एवं कार्यव्यापारों से हास्य रस की अभिव्यक्ति हो जाती है।

---

1. संयोगितास्वयंवरम् 1/11

उदाहरण :-

विदूषक: अहो कथमेवं भूतोपसृष्ट इवायं पार्श्ववर्तिनमपि मां सततमुपेक्षते।

पृथ्वीराज: [आकर्ण्य] अपि संनिहितो मे प्रियवयस्य: [1]

अर्थात् विदूषक, अरे ! कैसे यह भूत से आक्रान्त हुआ सा पास में स्थित मेरी भी निरन्तर उपेक्षा कर रहा है'।पृथ्वीराज : क्या मेरा प्रिय मित्र उपस्थित हो गया है? प्रस्तुत उदाहरण में विदूषक द्वारा कहे गये प्रसंग से हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

रौद्र रस :-

याज्ञिक जी ने संयोगिता-स्वयंवरम् नाटक में रौद्र रस की अभिव्यंजना करते हुए स्थान विशेष पर प्रयोग किया है। जयचन्द; पृथ्वीराज को राजसूय यज्ञ हेतु पत्रलिखता है-

सकलभारतराजकुलेश्वरो
दिशति ते स्वमुखे प्रतिहारिताम् ।
यदि नियोगमिमं न हि पद्यते
समरयज्ञपशुत्वमुपेष्यसि ।।[2]

अर्थात् समस्त भारत के राजाओं का स्वामी जयचन्द तुम्हें प्रतिहारी के रूप में देखना चाहता है। यदि तुम उनकी इस आज्ञा का पालन नहींकरते हो तो युद्धरूपी यज्ञ में बलिपशु बना दिये जाओगे।

---

1. सं0 स्व पृ0 45

2. सं0 स्व 1/5

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में जयचन्द का क्रोध स्थायी भाव है आलम्बन पृथ्वीराज है उद्दीपन आमंत्रणस्वीकार करना है। यहाँ की गई भर्त्सना में क्रोध भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

अद्भुत रस :-

संयोगितास्वयंवरम् में अद्भुत् रस का उदाहरण निम्नवत् है-

कर्णाटकी - अधीश्वर भवतु तवेयं वाराङ्गनाछद्मनापरिचरन्ती परिचारिकाऽपि पूर्ववत् त्वदनुग्रहभाजनम्।

पृथ्वीराज - [सविस्मयम्] अहो छद्मशब्देन तु जनयसि मे कुतूहलम् ।

प्रस्तुत उदाहरण में पृथ्वीराज का विस्मय स्थायी भाव है रहस्य भेद उद्दीपन है एवं कर्णाटकी का वचन आलम्बन है।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने अंगी रस के अतिरिक्त अनेक प्रकार के गौण रसों को निबद्ध कर प्रस्तुत नाटक की सर्जना की है।

इस प्रकार कविवर मूलशंकर याज्ञिक जी ने तीनों नाटकों में अंगी रस के अतिरिक्त गौण रसों की संयोजना मनोरम ढंग से की है। जिससे कोई भी सहृदय अनायास ही आनन्दानुभूति प्राप्त कर सकता है।

कविवर याज्ञिक जी के तीनों नाटकों का पर्यालोचन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने ऐतिहासिक प्रसिद्ध पात्रों को लेकर सिद्धरस वाली स्थिति को उत्पन्न किया है। शिवाजी, राणाप्रताप एवं पृथ्वीराज जैसे जगत् प्रसिद्ध पराक्रमी, स्वाभिमानी एवं बलिदानी वीरों की गाथा प्रस्तुत कर उन्होंने वीर रस

का ज्वलन्त स्वरूप उपस्थित किया है,इन वीरों की ओजस्विनी वाणियों में पग-पग पर वीर रस को सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत हुई है, और इस प्रस्तुती पर वीर रस की सफल अभिव्यक्ति के साथ ही कवि की भाषा ने भी पूरा साथ दिया है। कवि ने नाट्य के लक्षणों में प्रस्तुत मानकों का निर्वाह करते हुए अंगीरस के रूप में वीर रस को ही अंगीकार किया है, हा संयोगितास्वयंवर में वीर रस की सफल अभिव्यक्ति के साथ श्रृंगार रस का भी प्रमुख रूप से निबन्धन किया है। इस प्रकार इन तीनों काव्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त यत्र-तत्र गौण रसों के भी प्रसंगो की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। रस का जैसा भी प्रसंग होता, कवि उसकी योजना में सारी सामग्री को जुटा देता है। रस की गहन अभिव्यंजना के कारण ही नाटककार इनमें विभिन्न गुणों वृत्तियों एवं रीतियों का सफल प्रयोग करता है और नाटकों कीरसवत्ता को परमपरिणति की ओर ले जाता है। अत: सिद्ध रस रचना करने के कारण याज्ञिक जी एक रस सिद्ध कवि सिद्ध होते हैं।

0 0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0 0
0 0 0 0
0 0
0

खण्ड- 2

नाटकत्रयी में भाव - योजना

मानव-जीवन सुखदु:खात्मक परिस्थितियों से परिपूर्ण होता है। ये सुख-दु:ख ही सब प्रकार के भावों के मूल स्रोत होते है। मनुष्य प्रतिदिन ही सुख-दु:ख हर्ष-विषाद, मिलन-बिछोह, राग-द्वेष, दया-घृणा आदि अनेक प्रकार के भावों का अनुभव करता है,इन भावों से जो अनुभूति होती है वह दो प्रकार की होती है- तात्कालिक अनुभूति एंव संस्कारात्मक अनुभूति।

जब हम प्रत्यक्ष रूप से किसी भाव से प्रभावित होते हैं तो वह तात्कालिक अनुभूति होती है और जब धीरे-धीरे ये अनुभव सुप्त होकर संस्कार रूप में परिणत होकर मानसपटल में विलीन हो जाते हैं, किन्तु विशेषस्थिति में पुन: जागरित हो जाते हैं, तो इस प्रकार की अनुभूति संस्कारात्मक अनुभूति होती है। काव्य या नाटक में वर्णित भाव संस्कारयुक्त होने के कारण अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म या उदात्त ही होते है तथा उनकी आधार सामाग्री भी सदैव कल्पित, पात्रमयी तथा शब्दार्थमयी होने के कारण अप्रत्यक्ष या सूक्ष्म ही होती है।

संक्षेपत: हम कह सकते हैं कि भाव एक मानसिक क्रिया है, जिस पर व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं होता है। वह स्वेच्छा से भावों का ग्रहण एवं परित्याग नहीं कर सकता है। अत: स्वभावत: ही उनसे प्रभावित होता है।डा० नगेन्द्र के अनुसार बाह्य जगत् के संवेदनों से मनुष्य के हृदय में जो विकार उठते हैं वे ही विकार भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं।[1]

1• रस सिद्धान्त - पृ0 219, डा0 नगेन्द्र

भाव के इसी मनोवैज्ञानिक स्वरूप को प्रकाश में रखकर आचार्यों ने भाव को स्थायी एवं संचारी [व्यभिचारी] के रूप में परिकल्पना की है एवं उनके स्वरूप के भेद को स्पष्टतः प्रदर्शित किया है। वैसे इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए सामान्यतः आचार्य भरत ने उन्चास [49] भावों की परिगणना की है । सामान्यतः इस परिधि में आने वाले सभी भाव, भाव हैं। परन्तु रसादि के अंग के रूप में भाव एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।

कविवर याज्ञिक जी के इन तीन नाटकों में जिस तरह से रस की योजना की गयी है , उसी तरह रस के अन्य सात अंगों भावादि की योजना भी इसमें प्राप्त होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने अनेक रूपों में इस भावादि की सोदाहरण समीक्षा की है। अनेकशः ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिनमें रस की पूर्ण अभिव्यंजना की स्थिति प्राप्त नहीं होती या तो उसमें भावादि की वह स्थिति होती है जिससे वह रसावस्था को प्राप्त नहीं होता अथवा रसाभास आदि की योजना विद्यमान रहती है। अतः ऐसी स्थिति में रस न होकर भावादि सात में से कोई एक अवस्था रहती है।

याज्ञिक जी के नाटकों में कुछ इस तरह के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं जिनका पर्यालोचन इस प्रकार किया जा सकता है। रस के समान ही भावादि भी काव्य के अन्तर्गत आते हैं। भावध्वनि क्या है ? इसका निरूपण करते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है-

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः ।[1]

- -

1. काव्य प्रकाश सूत्र 48; पृ0 158

अभिप्राय यह है कि रसावस्था को प्राप्त न होने वाले रति आदि स्थायी भाव ही जहाँ सहृदयों के आस्वादन का विषय होते हैं वहाँ रति आदि को भाव माना गया है यह तीन अवस्थाओं में प्राप्त होता है।

1. कान्ताविषयक रति से भिन्न देवादिविषयक भाव ।

2. विभावादि से अपुष्ट रसावस्था को प्राप्त न होने वाले हास विभावादि से अपुष्ट आदि भी भाव होते हैं।

3. विभावादि से व्यञ्जित व्यभिचारी भाव।

इनमें से प्रथम प्रकार का भाव प्रकृत कवि के नाटकों में विशेष रूप से प्राप्त होता है कविवर याज्ञिक जी द्वारा वर्णित "छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक में एक स्थान पर देवविषयक रति भाव का निरूपण किया गया है, जिसमें शिवराज देश या राष्ट्र की रक्षा हेतु देवी भवानी से आराधना करते हुए कहते हैं-

हे अम्ब ! हे भवानी ! अपने सुत का उद्धार करो। प्रबल यवन शत्रुओं के कारण उसका प्रभाव नष्ट हो रहा है। प्रलयसमुद्र में उसकी नाव डावाँडोल है। हे पूज्य पार्वति! रक्षा करो। हे कैवल्यनन्दिते! तुम्हारा यह दास जिसने विलास आदि का होम कर दिया है, विजय श्री की याचना करता है, उसकी विपत्तियों का निराकरण करो। तुम ही मेरे लिए एक मात्र शरण हो। यदि भारतीयों का उद्धार श्रेयस्कर समझती हो तो मेरे सैकड़ों बाधाओं को नष्ट करो। हे शर्वाणि ! यदि तुम अपनी करुण दृष्टि मेरे ऊपर नहीं डालती हो तो निश्चय ही मैं यति वेश में भ्रमण करूँगा ।

तारय तव सुतमम्ब ! भवानि ।

प्रबलयवनरिपुगलितविभावम् ।

प्रलयपयोनिधिविलुलितनावम् पालय परममृडानि ।। तारय-1 ।।

विबुधनुते ! वनुते तव दासः ।

विजयरमां हृतदिव्यविलासः वारय मम विषमाणि ।। तारय-2।।

त्वमसि ममैकं परमं शरणम् कलयसि यदि हैमार्योद्धरणम् ।

वारयविघ्नव्रातानि ।। तारय -3।।

वितरसि यदि नहि करुणालेशम् । धृत्वा ममाटनं यतिवेशम् ।

निश्चितमयि शर्वाणि ।। तारय -4 ।।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में शिवराज द्वारा देवी भवानी की स्तुति में देवविषयक रति भाव की व्यञ्जना द्रष्टव्य है।

याज्ञिक जी ने एक अन्य स्थान पर शिवराज द्वारा गुरु रामदास को गुरु समान मानने की स्थिति में गुरु विषयक रति का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है।

शिवराज, गुरुरामदास को देखकर उनके पैरों पर गिर पड़ते हैं और कहते हैं कि चिरकाल से भगवान् स्वरूप आप के दर्शन के लिए लालायित मैं आज भाग्यवश कृतकृत्य हुआ।

गुरुरामदास आशीर्वाद देते हुए कहते हैं हे भारत के अद्वितीय वीर ! उठो ! धर्मराज्य की स्थापना हेतु शंकर के अंश सहित अवतरित तुम्हारी सर्वत्र विजय हो।

---

1. छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 40

शिवराज : (सप्रश्रयम्) दिष्ट्याय कृतार्थतां गमितोऽस्मि चिरप्रार्थितेन भगवत्प्रसा-
दाधिगमेन ।

(इति पुष्पस्रजं कण्ठे समर्प्य पादयो: पतति)

श्री रामदास : भारतैकवीर ! उत्तिष्ठ ! धर्मराज्य संस्थापनार्थं शङ्कराशनावती-
र्णस्य तव भवतु सर्वत्राप्रतिहतो विजय: ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में गुरुविषक रति भाव की अभिव्यंजना स्पष्ट दिखाई देती है, क्यों कि गुरुरामदास का शिवराज के प्रति स्नेह स्पष्ट दिखाई देता है। यहाँ पर शिवराज के रतिभाव को आलम्बन गुरुरामदास हैं, दर्शनयोग्यता प्रकट करना उद्दीपन है। शिवराज के गुरुविषयक रतिभाव को जानने वाले सामाजिक के हृदय में भावनिष्पत्ति होती है। याज्ञिक जी ने अपने तीनों नाटकों के प्रार-म्भिक श्लोक में देव स्तुति कर देवविषयक रति भाव को दर्शाया है। "प्रतापविजय" नाटक में श्री कृष्ण के रूप में देव स्तुति की गयी है। जो इस,पकार है -

उत्साहान्वितबालकेलिसदने वृन्दावने नन्दनो,
योऽत्यर्थं कुटिलश्च कालयवनापस्कन्दजे संभ्रमे ।
मोहाक्रान्तजनस्य यो विनयत्ने ज्ञानप्रभाभास्वर:
पायाद्व: स महाद्भुतो यदुपतेर्नानाप्रचारोनय: ।।[2]

1· छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 70

2· प्रताप विजयम् ।/।

अर्थात् जो उत्साह बढ़ाने वाली बालक्रीड़ाओं की भूमि वृन्दावन में॥ वहाँ के निवासियों को ॥ सुख देने वाला, कालयवन॥नामक असुर॥ के अवरोध करने पर रोषवश अत्यन्त वक्र होने वाला ॥महाभारत युद्ध में॥ मैं मोह के वशीभूतअर्जुन को उपदेश देते समय तत्त्वज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल स्वरूप वाला यदुपति श्रीकृष्ण की राजनीति का महान्'अद्भुत विविध प्रयोग है वह ॥भगवान् श्री कृष्ण॥ आप सब की रक्षा करें।

भाव यह है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध में उत्साह सम्बन्धी प्रेरणा दे रहे थे, उसी प्रकार यहाँ महराजा प्रताप सिंह के प्रति उत्साह सम्बन्धी भाव को प्रकट किया गया है।

याज्ञिक जी के "संयोगितास्वयंवर" नाटक में श्री कृष्ण की शृंगार रूप में देवस्तुति की है, क्योंकि उसमें राधा का कृष्ण के प्रति अनुरक्त होना दर्शाया गया है। इस नाटक में संयोगिता की पृथ्वीराज के प्रति अनुरक्ति, राधा की कृष्णपरक रति के समानान्तर व्यञ्जित की गई है।

नान्दी पाठ में इसका वर्णन निम्नवत् है-

श्यामामुकुन्दसुन्दरमुखे कुन्दावदातस्मिते,

स्वच्छन्दं विलसन्ति येऽनवरतं सौदामिनीलीलया ।

भावस्निग्धविलोकनस्नुतरसा वोऽव्यक्तरागाकुला,

मुग्धाः पान्तु सुकोमला धरत्वो राधादृशोर्विभ्रमाः ।।¹

---

1. संयोगिता स्वयंवरम् 1/1

अर्थात् जो बिजली की लीला से निरन्तर कुन्द पुष्प के समान श्वेत मुस्कान से युक्त मेघ के समान श्याम कृष्ण के सुन्दर मुख पर स्वच्छन्द रूप से विलास करते हैं, वे भावपूर्ण स्निग्ध दृष्टि से रस की वर्षा करने वाले, अव्यक्त राग से आकुल, भोले भाले सुकोमल अधरों की कान्ति रखने वाले राधा के नेत्रों के विलास आप सब लोगोंकी रक्षा करें।

इसी प्रकार याज्ञिक जी ने छत्रपति साम्राज्यम् में भगवान शंकर की आराधना का देवविषयक रति भाव को दर्शित किया है।

देशविषयक रति भाव

राष्ट्र या देश जन समुदाय विशेष के मन में समाई हुई अपनी सांस्कृतिक एकता की एक अमूर्त चेतना है। अपने राष्ट्र की भूमि , जनसमूह, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास धर्म आदि के प्रति लोगों के हृदय में गरिमा एवं महिमा का जो एक नैसर्गि स्वाभिमान हुआ करता है उसे ही हम देशभक्ति या राष्ट्रभक्ति की संज्ञा देते हैं। यही वह प्रेम है जिसके वशीभूत होकर लोग अपने राष्ट्र के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। यदि राष्ट्र परतन्त्र हुआ तो उसे स्वतन्त्र कराने के लिए लोग सीने पर गोली या गले में फाँसी के फन्दे की लेशमात्र भी परवाह नहीं करते हैं। और जब तक राष्ट्र को विदेशी शासकों या आक्रमण कारियों के चुंगुल से मुक्ति नहीं दिला देते तब तक चैन की नींद नहीं सोते हैं।

इस अविस्मरणीय एवं रोमांचकारी बलिदान के पीछे जो एक प्रबल एवं अदम्य भावना कार्य करती है वह राष्ट्रप्रेम या देश भक्ति ही होती है। इसी प्रकार

अपने स्वतन्त्र राष्ट्र पर कोई अन्यराष्ट्र आक्रमण करता है ।

तो स्वराष्ट्र रक्षा के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र तन ,मन धन से सन्नद्ध हो जाता है। उस समय आबालवृद्ध नरनारियों में अपने राष्ट्र के प्रति मातृभूमि की रक्षा के लिए एक अदम्य भावना उमड़ पड़ती है वे अपने एक -दूसरे के भेद को भुलाकर एकाग्र होकर राष्ट्र के शत्रु का विरोध करते हैं। पत्नियाँ अपने सिन्दूर की परवाह न करके अपने प्राणप्रिय पतियों को मातृभूमि की रक्षा के लिए विदाकरती हैं एवं बहनें अपनी राखी को खतरे में डालकर सहोदर भाइयों को राष्ट्ररक्षा के लिए भावभीनी विदाई देती हैं। अपने राष्ट्र प्रेम के कारण ही वे देश की अखण्डता एवं मान मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं। अपनी सेनाओं का मनोबल ऊँचा बनाये रखने के लिए राष्ट्र के सभी वर्गों के लोग उनके साहस एवं शौर्य के गीत गाते हैं।

यह कहना गलत होगा कि राष्ट्र के लिए आत्मोत्सर्ग के इस रोमांचकारी वातावरण की सर्जना के पीछे जिस प्रबल भावना की प्रेरणा हुआ करती है वह राष्ट्र-भक्ति या देश प्रेम ही होती है।

भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं रक्षा हेतु पृथ्वीराज चौहान,राणाप्रतापसिंह, शिवाजी सरीखे असंख्य राष्ट्र भक्त प्रेमी महापुरुषों द्वारा किये गये आत्म बलिदानों में उनकी अदम्य राष्ट्र भक्ति ही एक मात्र प्रेरक रही है। क्योंकि यह एक ऐसी बलवती भावना है जिससे लिप्त होकर मनुष्य अपने व्यक्तिगत हितों

की तिलांजलि देकर अपने देश, मातृभूमि और राष्ट्र की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए प्राण को भी त्याग देती है। उस समय वे अपने राष्ट्र की ठीक उसी प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार शत्रुओं द्वारा प्रताड़ित की जा रही अपनी माँ की रक्षा पुत्र किया करता है। यही कारण है कि राष्ट्र भक्ति एवं मातृभक्ति में समानता मानी गयी है। यह राष्ट्रभक्ति अथवा राष्ट्र विषयक रति याज्ञिक जी के समग्र साहित्य में पद-पद पर दिखाई देती है और यह भाव व्यञ्जना ही उनके काव्य का मूलस्वर है।

कविवर याज्ञिक जी द्वारा रचित नाटकों के नायकों ने अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए जिस प्रकार से अनेक कठिनाइयों का सामना कर अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा की वह सदैव स्मरणीय रहेगा। इन नायकों ने देशभक्ति हेतु विलासप्रिय जीवन का त्याग कर वनों, जंगलों पर्वतों आदि दुर्गम स्थानों में निवास कर राष्ट्र की रक्षा की। इन नायकों में देश के प्रति अनुराग की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी इस प्रकार याज्ञिक जी ने इन नायकों के माध्यम से भारत देश वासियों में राष्ट्र या देश के प्रति होने वाले राष्ट्रविषयक रति भाव को उद्घाटित किया है।

तीनों नाटकों के अन्त में भरत वाक्य कहा जाता है जिससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत नाटकों में भारत देश के प्रति रतिविषयक भाव को व्यक्त किया गया है। तीनों नाटकों के भरतवाक्य द्रष्टव्य है। "छत्रपतिसाम्राज्य" नाटक में देश के प्रति रति होने की अभिव्यञ्जना भरत वाक्य कहे जाने से स्पष्ट हो जाती है।

मोदत्तां नितरां स्वकर्मनिरता: पर्याप्त कामा: प्रजा: ।

एधन्तां नयविक्रमाङ्कयशसो लोकप्रिया: पार्थिवा: ।

सस्यानां च समृद्धये जलमुच: सिञ्चन्तु कालेरसां,

सप्ताङ्ग प्रकृति प्रकर्षरुचिरं राष्ट्र चिरं वर्धताम् ।।[1]

अर्थात् प्रजाजन अपने कर्म में निरत रहे, अपने अभीष्ट की पूर्ति कर सदा सुखी, प्रसन्न रहें, लोक प्रिय राजागण विक्रम और नीति नैपुण्य से यशस्वी हो समृद्ध होते रहे। बादल समय-समय पर अन्न की समृद्धि के लिए पृथ्वी पर जल बरसाते रहें, इस प्रकार सातों अङ्गों से पूर्ण प्रकृति के सुन्दर विकास से राष्ट्र की सदावृद्धि हो-

"प्रतापविजय" नाटक के भरतवाक्य अधोलिखित रूप में द्रष्टव्य है-

आम्नयार्थप्रसितमतयो ब्राह्मणा: सिद्धमन्त्रा:,

सम्पद्यन्तां नरपतिगणा: क्षात्रतेज: समिद्धा: ।

वैश्या: सर्वे नवनिधियुता: कारव: कारुदीप्ता:,

स्वातन्त्र्यश्रीर्विलसतुतरां विश्वतो भारतेऽस्मिन् ।।[2]

अर्थात् ब्राह्मण लोग वेदों के अर्थ में आसक्त बुद्धिवाले तथा सिद्धमंत्रवाले हों, राजा लोग क्षात्रतेज से दीप्त हों, वैश्य लोग नौ निधियों से युक्त हों, शिल्पीगण विविध शिल्पों से समृद्ध हों और इस भारत वर्ष में स्वतन्त्रता की श्री अत्यन्त विलसित रहे।

---

1. छत्रपति साम्राज्य - 10/12

इस प्रकार याज्ञिक जी ने तीनों नाटकों के अन्त में भरतवाक्य कहकर भारत देश के प्रति देश विषयक रति भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। उनके तीनों ही नाटकों में देशविषयक रति एवं देशभक्ति समग्र रूप से व्यक्त हो रही है, अत: व्यापक रूप से भी इन नाटकों को देशविषयक रति के सुन्दर उदाहरण रूप में माना जा सकता है, वैसे पर्यवसान में वहाँ वीर आदि रस ही व्यञ्जित होते हैं।

0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
0 0 0
0

पंचम अध्याय

नाटकत्रयी में गुणालंकार छन्दोयोजना

खण्ड-1

नाटकत्रयी में गुण योजना

मानव में गुण के सदृश ही काव्य या नाटक में भी गुणों की स्थिति अनिवार्य है एवं महत्त्वपूर्णस्थान रखती है। जिस प्रकार श्रेष्ठ गुण किसी मनुष्य के व्यक्तित्व को उभारते हैं, उसे योग्यता प्रदान करते हैं और सामाजिक बनाते हैं, उसी प्रकार काव्य या नाटक के गुण भी किसी काव्य या नाटक रचना को सरस, मनोहर एवं रुचिर स्वरूप प्रदान करते हैं। संसार में जिस प्रकार निर्गुण शरीर या निर्गन्धकिंशुक कुसुम परित्याज्य एवं अश्लाघ्य होता है, उसी प्रकार निर्गुण काव्य भी सहृदयों के द्वारा ग्राह्य नहीं होता है। गुण रूपक रचना में कान्तिमत्ता एवं स्निग्धता का संचार करते हैं।

काव्यप्रकाशकार ने लिखा है कि जिस प्रकार शूरता इत्यादि आत्मा के धर्म हैं, उसी प्रकार जो काव्य में प्रधानतया स्थित रस के धर्म हैं, नियत स्थिति वाले हैं, ऐसे रसोत्कर्ष के हेतु (धर्म) गुण कहलाते हैं।

ये रसास्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।[1]

काव्य विवेचना के प्रारम्भिक काल से ही काव्य या नाटकों में गुणों का उल्लेख होता रहा है। भारतीय समीक्षाशास्त्र के सुप्रतिष्ठित आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में दस गुणों का निरूपण किया है, जो निम्नवत् है-

---

1. काव्यप्रकाश - 8/7 ; पृ0 406

1• ओज, 2• प्रसाद, 3• श्लेष, 4• समाधि, 5• माधुर्य, सौकुमार्य, 7• उदारता, अर्थ व्यक्ति, 9• समता, 10• कान्ति ।[1]

अग्निपुराण में सात शब्द गुण, सात अर्थ गुण एवं सात शब्दार्थगुण प्रतिपादित किये गए हैं ।[2]

आचार्य दण्डी, भरत मुनि का अनुकरण करते हुए दस काव्य गुणों को निश्चित करते हैं, परन्तु ये काव्य के गुणों में कुछ परिवर्तन कर देते हैं।[3]

आचार्य वामन गुणों को काव्य की शोभा करने वाले धर्म बतलाते हैं।

काव्य शोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा: ।[4]

महाराज भोज ने भी गुणों को अत्यधिक महत्व दिया है उनका मत है कि यदि किसी काव्य में अलंकारों का प्रयोग हुआ है किन्तु गुणों का सम्यक संयोग नहीं है तो वह काव्य श्रवणीय नहीं होगा।[5]

ध्वनिवादी आचार्यों ने गुण के स्वरूप का विवेचन करते हुए बतलाया कि माधुर्य आदि गुण शब्दार्थ अथवा शब्दविन्यास आदि के धर्म नहीं, अपितु काव्य की आत्मा या रस के धर्म हैं।

ये तमर्थ रसादि लक्षणमङ्गिनं सन्तमवलम्बन्ते ते गुणा: शौर्यादिवत् ।[6]

1• नाट्यशास्त्र 16/92

2• अग्निपुराण 345/20

3• काव्यादर्श 1/41/100

4• काव्यालंकार सूत्र 3/1/1

5• सरस्वती कण्ठाभरण पृ0 49, पद्य ।

6• ध्वन्यालोक 2/6

संस्कृत-समीक्षा के सुप्रसिद्ध आचार्य वाग्देवतावतार मम्मट ने काव्यप्रकाश के अष्टम उल्लास में गुणों का विशद विवेचन किया है। उनकी दृष्टि में गुण रस के धर्म हैं। वे काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य मानते हैं। आचार्य मम्मट ने माधुर्य,ओज, एवं प्रसाद नामक तीन गुणों को ही मान्यता दी है, वे शेषगुणों को इन्हीं तीन गुणों के अन्तर्गत मानते हैं।[1]

आचार्य मम्मट ने गुणों को काव्य का नित्य अङ्गी और अपरित्याज्य धर्म बतलाया है।

ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों की संख्या तीन इसलिए मानी है कि नव रस के आस्वादन में सामाजिक के हृदय की तीन ही अवस्थाएँ होती हैं।द्रुति, विस्तार एवं विकास। श्रृंगार, करुण और शान्त में चित्त-द्रुति होती है। वीर, रौद्र और वीभत्स में चित्त का विस्तार होता है। हास्य में मुख -अद्भुत में नयन एवं भयानक में गमन का विकास होता है। अतः रसास्वादन अवस्था में हृदय की तीन प्रकार की अवस्था होने के कारण रस के धर्म गुण भी तीन हैं।

संस्कृत-समीक्षा शास्त्र के प्रतिष्ठित विद्वानों के विचारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाटकों में गुणों की स्थिति अनिवार्य है और वे महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं यही कारण है कि संस्कृत के समस्त प्रतिनिधि महाकवियों ने अपनी कृतियों में गुणत्रय योजना की है।

कविवर मूलशंकर याज्ञिक जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों [छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रताप-विजयम् एवं संयोगिता-स्वयंवरम्] में गुण की सहज, सुन्दर संयोजना की है।

---

1. काव्य प्रकाश -अष्टम उल्लास

1. माधुर्य गुण :-

माधुर्य गुण काव्य प्रयोजन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, श्रृंगार, करुण एवं शान्त रस में प्राय: इसकी संयोजना होती है। इसमें चित्त के आनन्द की अनुभूति होती है जिससे चित्त द्रवित हो उठता है-

आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृंगारे द्रुतिकारणम् ।[1]

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में अनेक स्थानों पर माधुर्य गुण का प्रयोग किया है:-

छत्रपति-साम्राज्यम् नामक-नाटक में विप्रलम्भ श्रृंगार रस युक्त माधुर्य गुण की योजना दृष्टिगोचर हो रही है।

लताकुञ्जलीना

तृणाङ्के शयाना स्वबाहूपधाना स्वयंवीतमाना प्रिये सावधाना ।
क्षुधाविह्वला ते नवीना निलीना ।। लता0 । ।।
पदं ते लपन्ती वियोगे तपन्ती । मुखं स्तापयन्ती तनुं ग्लापयन्ती ।
रुजा क्षीयते कान्तहीना निलीना ।। लता0 2 ।।
अवस्थामनन्ते प्रियाया वरं ते । विलम्बेऽशुभे तेऽनुतापोऽदुरन्ते ।
क्षमां याचते नाथ ! दीना निलीना ।। लता0 13 ।।[2]

प्रस्तुत प्रसंग में राधा की दूती श्री कृष्ण से कह रही है कि हे कृष्ण ! राधा लताओं के कुञ्ज में बैठी हुई तृणों की शय्या पर अपनी बाहुओं का तकिया लगाये, अपने मान का त्याग कर अपने प्रियतम में मन को रमाये हुए, नवानुराग

- -

1. काव्य प्रकाश सू0 संख्या 98 पृ0 417

2. छ0 सा0 पृ0 137

में व्याकुल है। तुम्हारे विरह गीतों का उच्चारण करती हुई, वियोग में जलती आँसुओं से मुख को धोती हुई, अपनी शोभा से हीन हो रही है। तुम्हारा अपनी प्रिया के समीप पहुँचना अत्यन्त उचित है, विलम्ब करने पर अशुभ को आशंका है और उसके नष्ट हो जाने पर तुम्हारे लिए पश्चाताप का विषय होगा। हे नाथ ! वह तुम्हारे क्षण भर के समागम की याचना करती है। प्रतापविजयम् नामक नाटक में याज्ञिक जी करूण रस युक्त माधुर्य गुण की गुणवत्ता बतलाते है-

प्रतापसिंह : ‌{सोद्वेगम्} केयमनर्थपरम्परा । नूनं महद्व्याहितम्। स्थाने खलु छत्रचामराधिकार उपभुज्यते राष्ट्र भक्तैः झालावंशप्रभवैः क्षत्रवीरैः। यतः -

जाता न के नियत कर्मफलानि भुक्त्वा,
काले विनाशमुदरभरिणो व्रजन्ति ।
धन्यः स एव निजराष्ट्रसपर्यया यो,
विस्तारयन् भुवि यशोनिधनं प्रयाति ।।[1]

झालामान सिंह के युद्ध भूमि में वीरगति प्राप्ति का समाचार सुनकर प्रताप सिंह शोकातुर मन से कहते हैं कि हा ! यह कैसी अनर्थ परम्परा, निश्चय ही यह महान विपत्ति है। झालावंश में उत्पन्न राष्ट्रभक्त जनों को ही छत्रचामर धारण करने के उपभोग का अधिकार है। क्योंकि केवल पेट पालन करने वाले अपने कर्मों का फल भोगकर समय पर विनाश को कौन नहीं प्राप्त होता है अर्थात् सभी मरते हैं। किन्तु धन्य वही है जो अपने राष्ट्र की सेवा में तत्पर रहकर इस धरती पर यश का विस्तार करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है।

- -

1. प्रताप विजयम् 2/10

संयोगिता-स्वयंवरम् नाम नाटक में याज्ञिक जी सम्भोग श्रृंगार रस युक्त माधुर्य गुण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-

किं स्यादेषा हिमकरकला चन्चलत्वं कुतोऽस्या,
विद्युल्लेखा वियति विमले नाऽपि सम्भाव्यते वै ।
मन्ये त्वेवं मनसिजरुजा तप्तगात्री प्रिया मे,
प्रासादेऽस्मिन्विरहविकला संचरत्येव तन्वी ॥[1]

प्रस्तुत प्रसंग में पृथ्वीराज संयोगिता के प्रति अनुरक्त है और महल में देखकर कहते हैं-

क्या यह चन्द्रमा की कला हो सकती है ? यदि ऐसा है तो यह चन्चलता कहाँ से आयी, क्या यह निर्मल आकाश में बिजली की निर्मल रेखा है ? पर मेघ रहित स्वच्छ आकाश में इसकी भी सम्भावना नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तप्तशरीर वाली विरह में व्याकुल तन्वी प्रिया इस महल में विचरण कर रही है।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में माधुर्यगुण का स्थान विशेष पर प्रयोग किया है। याज्ञिक जी को रस के अनुरूप ही माधुर्य गुण की निसर्ग योजना में सफलता मिली है।

2. <u>ओज गुण</u> :-

ओज गुण चित्त के विस्तार स्वरूप दीप्ति का जनक होता है।

"दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।"[2]

अर्थात् दीप्ति रूप आत्मा के विस्तार का हेतु ही ओज गुण है। ओज गुण की स्थिति वीर रस के समान वीभत्स तथा रौद्र में भी होती है। ओज गुण की वीर , वीभत्स एवं रौद्र रस में अधिकता क्रमशः बढ़ती जाती है।

- -

1. संयोगिता स्वयंवरम् 5/11

2. काव्यप्रकाश सू0 92 पृ0 418

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में ओज गुण को निम्नांकित रूप में निबद्ध किया है -

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुः समूर्जिता,

विशालतूणीपरिणद्धपार्श्वा: ।

स्वातन्त्र्यसम्भावनया समेधिता:,

प्रयान्तु मे वन्यपदातिसंघा: ।।[1]

प्रस्तुत उदाहरण में शिवराज कहते हैं- तीक्ष्णभालों,कृपाणों, धनुषों से प्रबल, कटि प्रदेश में तरकस [तूणीर] कसे हुए, स्वातन्त्र्य भावना से भली भाँति प्रोत्साहित वन्य जनों [वनवासियों] की हमारी पैदल सेना युद्ध भूमि हेतु प्रस्थान करें। इस प्रकार यहाँ वीर रस के संयोग से ओजगुण है।

याज्ञिक जी की एक अन्य कृति प्रतापविजयम् में ओज गुण का उदाहरण इस प्रकार है -

झालामान सिंह: क्षत्रकुलाधीश्वर । रविकुल परिचर्ययैव परिणतिं गमिष्यतीदमकाण्ड भङ्गुरमस्मत्क्षुद्रकलेवरम्। तद्-

राष्ट्रप्रतिष्ठापरिपालनव्रता:, सज्जा वयं त्वद्वचनैकतत्परा: ।

निहत्य दृप्तान् परिपन्थिसैनिकान्, संतर्पयामोऽद्य रणाधिदेवताम्।।[2]

- -

1. छ0शा0 2/11

2. प्रताप-विजयम् 2/5

उपर्युक्त उदाहरण में झालामान सिंह के कथन में ओज गुण स्पष्ट लक्षित हो रहा है- झालामान सिंह, राणाप्रताप सिंह से कहते है कि हे क्षत्रियकुल के ईश ! सूर्यवंश की सेवा में ही यह हमारा क्षणभंगुर शरीर समाप्त होगा-

राष्ट्र की प्रतिष्ठा के रक्षार्थ व्रत लेने वाले हम आप के आदेश पालन में तत्पर है और आज शत्रु के मतवाले सैनिको को मारकर रणदेवता को प्रसन्न करेंगे।

छत्रपति साम्राज्यम् में रौद्र रस से युक्त ओज गुण का याज्ञिक जी ने बहुत ही उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है- शिवराज उस समय अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं जब अनुचर द्वारा यह समाचार सुनते हैं कि अपनी भगिनी को अपने बहनोई के गाँव ले जाते समय बीजापुर के सैनिकों ने नेता जी पर आक्रमण कर मार डाला और उनकी भगिनी का अपहरण कर लिया है।"शिवराज: (सरोषम्) अरे ! अथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुल-प्रसूतैरस्माभिर्मर्षणीयम्। वयस्या:

आर्तानां परिपालनाय सरसा शस्त्रं न येनोद्धृतं,

विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम् ।

राज्ञामुत्पथगामिनां प्रशमने युद्धं न चैवादृतं,

क्षात्रं जन्म धिगस्य राघववर्शा: प्रज्वालिते भारते ।।[1]

अर्थात् शिवराज क्रोधपूर्वक कहते है कि क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हमलोग इस अपराध को कैसे सहन कर सकते है- मित्रों पराक्रमी राम के यश से धवलित इस भारत भूमि मे

- -

1० छ० सा० 1/15

जन्म लेने वाले उस क्षत्रिय का जन्म व्यर्थ है, जिसने आर्तों की पुकार सुनकर उनके रक्षार्थ तुरन्त शस्त्र नहीं उठाया और जिसने अनीतिपालक अनाचारी राजा के विनाशार्थ युद्ध का उपक्रम नहीं किया। संयोगितास्वयंवर नामक नाटक में ओज गुण का प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य है -

सकलभारतराजकुलेश्वरो,

दिशति ते स्वमुखे प्रतिहारिताम् ।

यदि नियोगमिमं न हि पश्यसे,

समरयज्ञ पशुत्वमुपेष्यति ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में रौद्ररसयुक्त ओज गुण का निरूपण किया गया है। जयचन्द राजसूय यज्ञ में पृथ्वीराज को निमंत्रण हेतु पत्र लिखवाता है- समस्त भारत के राजाओं का स्वामी जयचन्द अपने यज्ञ में तुम्हें प्रतिहारी के रूप में देखना चाहता है यदि तुम इस आज्ञा का पालन नहीं करते हो तो युद्धरूपी यज्ञ में बलि पशु बना दिये जाओगे।

पुन: युद्धवीर रस से युक्त ओजगुण का उदाहरण इस प्रकार है -

दुर्दैवतस्त्वमसि मुद्रमते प्रवृत्त:

सम्राजस्य विहितेनुपराजसूये ।

सद्यो विरंस्यसि न चेद्व्यवसायतोऽस्मा-

द्दन्ताशु मे कलमतां करवालवह्नौ ।।[2]

---

1. सं० स्व० 1/5

2. सं० स्व० 1/6

अर्थात् हे मूढ़ बुद्धि वाले। दुर्भाग्य से तुम सम्राट् द्वारा किये जाने वाले राजसूय यज्ञ में प्रवृत्त हुए हो, यदि इस काम से तुम शीघ्र ही विरत न हुए तो मेरी तलवार की अग्नि में पतङ्गे बनादिये जाओगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने अपने नाटकों में वर्ण्यविषय के अनुरूप ओजगुण का यथोचित सन्निवेश किया है। उपर्युक्त उद्धरण के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि याज्ञिक जी को रस के अनुरूप ही ओज गुण के प्रयोग में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

3. **प्रसादगुण :-**

प्रसादगुण चित्त के विकास का जनक है। यह गुण प्राय: सभी रसों में पाया जाता है। यह गुण सूखे ईन्धन में अग्नि तथा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान चित्त (मन) में सहसा व्याप्त हो जाता है।

शुष्केन्धनाग्निवत स्वच्छजलवत्सहसैव य: ।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थित:।।[1]

प्रसाद गुण वीर रौद्र आदि में चित्त में शुष्क इन्धन में अग्नि के समान एवं श्रृंगार और करुण आदि में स्वच्छ वस्त्र में जल के समान व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रसाद गुण सभी रसों का धर्म है। याज्ञिक जी के नाटकों में प्रसाद गुण के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं-

- -

1. काव्य प्रकाश - सू0 94 पृ0 419

छत्रपति साम्राज्यम् नामक नाटक के प्रारम्भ में ही नटी द्वारा गाये गये गीत में शृंगारयुक्त प्रसाद गुण दर्शनीय है-

रसमति रसयति रसा विशाला । विचलति चपलपयोधरमाला ।।

भवति सपदि जनतापविलयनम् । मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम् ।।रस-

नमयति तरुगण मलभासार: । क्षुभ्यति गर्जति पारावार: ।। रस -

नन्दति मुदितो जनपद लोक: । जलदविलोकन विगलित शोक:।।रस -

प्रस्तुत उदाहरण में वर्षा ऋतु का शृंगारिक रूप में वर्णन किया गया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है- विशाल धरती जल का बार-बार आस्वादन करने लगी है। चञ्चल मेघों का समूह इधर-उधर घूम रहा है। तुरन्त लोक का ताप नष्ट हो रहा है। सिंह पर्वत से उस भाग में शरण ढूँढने लगा है जल बूँदों के भार युक्त वृक्षों का समूह झुक गया है और विशाल सागर उफनाने लगा है। मेघसमूह को देखकर अपने शोक को भुलाकर मनुष्य आनन्दित हो रहे हैं। छत्रपति साम्राज्यम् में एक अन्य स्थान पर प्रसाद गुण का सुन्दर उदाहरण है- मंत्री एसाजी से कहता है कि संसार के हित के लिए जन्म लेने वाले महापुरुषों में स्वभावत: हमेशा विकासशील प्रवृत्ति होती है, देखो सूर्य हमेशा ही संसार को प्रकाशित करता है चन्द्रमा अमृत वर्षा से जगत् को सुख शान्ति पहुँचाता है, सप्तग्रह बिना रुके ही चारों तरफ विचरण करते हैं, महापुरुषों की प्रवृत्ति ही विश्राम करने वाली नहीं होती है-

---

1. छ० सा० पृ० 15

नित्यं प्रकाशयति लोकमिमं विवस्वानाप्यायत्युपचित: सुधया मृगाङ्क: ।
सप्तग्रहास्त्वविरतं परितो भ्रमन्ति, जानाति नैव विरतिंमहतां प्रवृत्ति: ।।[1]

प्रताप विजयम् नामक नाटक में भी याज्ञिक जी ने प्रसाद गुण को बड़े ही सुन्दर ढंग से दर्शाया है-

सुखयति मधुरसा सरसी ।
सारहंसविहंगमिथुनं विहरति मृदु रहसि ।। सुख0 1 ।।
क्रीडति युवतिजनस्तनुवसत: विमलशिशिर पयसि ।। सुख0 2 ।।
उपवनकुसुममनोहरसौरभमदमुदितो मनसि ।। सुख0 3 ।।
गायति रसिकजनो धृतवीण: संमिलित: सदसि ।। सुख0 4 ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में नटी द्वारा गीत के माध्यम से सरोवर का वर्णन किया जा रहा है- जल से पूर्ण तालाब इस समय सुख देने वाला है। उन तालाबों में सारस, हंस एवं अन्य पक्षियों के जोड़े एकान्त में मन्द-मन्द विहार कर रहे हैं । सूक्ष्म वस्त्र धारण कर नवयौवना स्त्रियों का समूह स्वच्छ शीतल जल में उपवन के सुन्दर फूलों के सौरभ से हर्षित होकर विचरण कर रहा है। रसिक जन वीणा धारण किये हुए सम्मिलित होकर गोष्ठियों में गा रहे हैं। संयोगितास्वयंवरम् नामक कृति में याज्ञिक जी प्रसाद गुण का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

क्व नु मम विहरति मानस हंस ।
घन इव सततं वर्षति नयनम् ।
स्फुटयति तडिदिव रतिरिह हृदयम् ।। क्व नु0 1 ।।
तिरयति तिमिरं तव पन्थानम् ।
अयि कुरु मन्दं प्रिय तव यानम् ।। क्व नु0 2 ।।
विरहविकुलितां परमाकुलिताम् ।
प्रियमुखनिरतामव तव दयिताम् ।। क्व नु0 3 ।।[3]

1. छत्रपति साम्राज्यम् 8/2; 2. प्रताप विजयम् पृ0 3 ; 3. सं0स्व0 पृ066

उपर्युक्त उदाहरण में विप्रलम्भ श्रृंगार रस युक्त प्रसाद गुण का वर्णन है जिसका आशय यह है कि - हे मन रूपी मान सरोवर के हंस तुम कहाँ विहार कर रहे हो, नेत्र बादल की भाँति निरन्तर बरस रहे है। हृदय बिजली की तरह तड़क रहा है। अंधकार तुम्हारे मार्ग को तिरोहित कर रहा है। तुम वायु को ही अपना मार्ग बना लो। हे नाथ इस ग्रह के कारण व्याकुल परम विह्वल प्रियतम के मुख में आसक्त अपनी प्रियतमा की रक्षा करो।

संयोगिता ने पृथ्वीराज के प्रति प्रेम में आसक्त होकर उपर्युक्त गीत को गाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृत कवि ने अपने तीनों नाटकों में हृदयावर्जक प्रसाद गुण का नैसर्गिक प्रयोग किया है। याज्ञिक की कृतियों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार से इन्होंने रसादि के प्रयोग से नाटकों को उत्कृष्ट स्थान प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है उसी प्रकार माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुणत्रय के यथोचित प्रयोग में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। रस के इन अङ्गी धर्मों का यथोचित यथास्थान संन्निवेश कर कवि ने अपने नाटकों में काव्यगुण का संवर्धन किया है, और उन्हें उच्चकोटि के काव्यों की श्रेणी में रखने की दिशा में काम किया है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड 2

नाटक त्रयी में अलंकार योजना

मानव स्वभावतः प्रेमोन्मुख प्राणी है। सांसारिक जीवन में अनेक प्रकार के अलंकरणों से, साज-सज्जा से दूसरों की धारणा को प्रभावित करने की प्रवृत्ति जन सामान्य में पायी जाती है। मानव की यह'प्रवृत्ति केवल उसी को ही नहीं, अपितु उसके उपयोग में आने वाले सभी पदार्थों को सुसंस्कृत एवं अलंकृत रूप में प्रस्तुत करना चाहती है। जिस प्रकार मानव अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के आभूषणों एवं प्रसाधनों का प्रयोग करता है,ठीक उसी प्रकार कविगण भी अपनी कविता सुन्दरी को सजाने के लिए अलंकार का प्रयोग करते हैं। काव्योक्ति में लोकोत्तर चमत्कार अपेक्षित रहता है। लोकोत्तर चमत्कार की सृष्टि में ही कवि-प्रतिभा की सार्थकता है। कवि प्रतिभा से उद्भूत उक्तियों के आलोक सिद्ध सौन्दर्य को कुछ आचार्यों ने विस्तृत अर्थ में अलंकार कहा है। अतः आचार्यों के अनुसार अलंकार, सौन्दर्य का पर्याय है।[1]

जहाँ तक अलंकारों के उद्भव का विषय है, वह भाषा केउद्भव के साथ-साथ सहजरूप में जुड़ जाता है। ज्ञात है कि अलंकार शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। दोनों ही अर्थ अलंकार शब्द की अलग-अलग व्युत्पत्तियों से प्राप्त होता है। भाव व्युत्पत्ति से अलंकार शब्द का अर्थ भूषण या शोभा है।[2]

---

1. वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 1, 1/2

2. वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति- पृष्ठ-5

काव्य में प्रयुक्त वे सभी तत्त्व जो काव्य में शोभा का आधान करते है, वे अलंकार के विस्तृत अर्थ में काव्य के अड्ग है। अलंकार एंव गुण के उपस्थिति से एवं दोष के अनुपस्थिति से काव्य में सौन्दर्य आता है। अत: अलंकार गुण आदि अपने विशिष्ट अर्थ में काव्य सौन्दर्य के पर्यायभूत अलंकार के साधक मात्र है।

अलंकार शब्द का दूसरा अर्थ है- जो अर्थ में शब्द एवं अर्थ के अनुप्रास, उपमा, श्लेष उत्प्रेक्षा आदि अलंकार कहलाते है, वे शब्द की करण व्युत्पत्ति से उपलब्ध है। करण व्युत्पत्ति से अलंकार शब्द का अर्थ होता है वह शब्द जो काव्य को अलंकृत बनाने का साधन हो।

आचार्य भामह ने अतिशयोक्ति अथवा वक्रोक्ति को अलंकार काप्राणभूत तत्त्व माना है। आनन्दवर्धन का मानना है कि कथन के अनूठे ढंग अनन्त है और उनके प्रकार ही अलंकार कहलाते हैं-

"अनन्ताहि वाग्विकल्पास्तत्प्रकारा एवं च अलंकारा:"।[1]

अभिनवगुप्त, पण्डितराज जगन्नाथ आदि ने भी कथन के निराले ढंग के प्रकार विशेष को अलंकार माना है। साहित्यमर्मज्ञों की अलंकार धारणा का सारांश यह है कि

कथन का चमत्कारपूर्ण ढंग ही अलंकार है।

आचार्य मम्मट ने काव्यालंकार के स्वरूप एवं उसके स्थान का निरूपण करते हुए कहा है कि काव्य के वे धर्म जो काव्य के शरीरभूत शब्द एवं अर्थ को अलंकृत कर काव्यात्मभूत रस को यदि काव्य में रस रहे तो कदाचित् उपकार करते है, वे अलंकार कहलाते है।

1· ध्वन्यालोक 3/37 पृष्ठ 519

काव्य सौन्दर्य का विश्लेषण कर अलंकार का अन्य अङ्गों से सापेक्षमूल्यांकन होता है तो, रस,गुण आदि की तुलना में अलंकार को गौण माना जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि काव्य समीक्षा की सुविधा के लिए अङ्गों का विभाजन करने पर काव्य के शब्द एवं अर्थ मनुष्य रूप से तथा रस आदि परम्परया अलंकार माने जाते हैं।

कविशिखर याज्ञिक जी द्वारा लिखित नाटकों में विभिन्न अलंकारों के प्रयोग को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि का अलंकारों पर असाधरण अधिकार है।

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में नवीन कथानक के रहते हुए पारस्परिक दृष्टि बनाये रखी है। नाटक में वर्ण्यविषयानुसार शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का विधिपूर्ण प्रयोग हुआ है। याज्ञिक जी वर्ण्यविषय के अनुरूप अलंकार का प्रयोग कर सफल सिद्ध हुए हैं।

याज्ञिक जी द्वारा प्रयुक्त अलंकार निम्नवत् द्रष्टव्य हैं-

शब्दालंकार-

शब्दालंकार में शाब्दिक चमत्कार की प्रधानता होती है। ये सुनने मात्र से ही श्रोतागण को आकर्षित कर लेते है। सहज एवंसुन्दर शब्दों के प्रयोग से इनकी चारुता और अधिक बढ़ जाती है। याज्ञिक जी के नाटकों में प्रयुक्त शब्दालंकार निम्न हैं।

अनुप्रास अलंकार

"वर्णसाम्यमनुप्रास:"।[1]

रसों के अनुगत वर्णों के प्रकोष्ठ न्यास को अनुप्रास अलंकार कहते हैं। या जहां पर स्वरों की असमानता होने पर व्यञ्जनों की असमानता हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

भोज के श्रृंगारप्रकाश के अनुसार वाग्देवी बड़े पुण्य से ही प्रतिभाशाली कवियों के चित्त में अनुप्रास को निवेशित करती है।

निवेशयति वाग्देवी प्रतिभावानवत: कवे: ।
पुण्यैरमुमनुप्रास: समाधिनि चेतसि ।।[2]

अनुप्रास अलंकार के दो भेद हैं-

1. वर्ण अनुप्रास ।
2. शब्द अनुप्रास ।

वर्ण अनुप्रास के भी दो भेद हैं- 1. छेकानुप्रास 2. वृत्यानुप्रास । विदग्धजनों का अतिप्रिय होने के कारण इसका नाम छेकानुप्रास पड़ा, मधुर आदि रसों के लिए जो कोमल वर्ण आदि के प्रयोग हैं एवं जहाँ वर्ण संघटना की वृत्ति होती है वहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। आचार्यों ने अनुप्रास के पाँच भेद बताये हैं।

---

1. काव्य प्रकाश सूत्र - 104
2. श्रृंगार प्रकाश 2/73

1• अन्त्यानुप्रास 2• वृत्यनुप्रास 3• श्रुत्यनुप्रास 4• छेकानुप्रास 5• लाटानुप्रास ।

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग अधिक किया गया है।

अन्त्यानुप्रास का उदाहरण अधोलिखित द्रष्टव्य है-

सुमसुकुमार । नयनविहार ।

हृदयाधार । यौवनसार । प्रणयापारपारावार।। सुम0-1 ।।

जलदश्यामधर । सुखधाम । कुसुमललामचम्पकदाम ।। सुम0-2 ।।

अयि भुवनेश । मानवपेश । रमयरमेश । मा रसिकेश ।। सुम0 -3।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में एक ही वर्ण की शब्द के अन्त में अनेक बार आवृत्ति हुई है जैसे - शब्द के अन्त में र,म और श की बार-बार आवृत्ति हुई है, इसमें व्यञ्जनों के साथ-साथ स्वरों ने विशेष योगदान किया है ।

वामबोधिनी में इस प्रकार के उदाहरण को कोमलावृत्ति कहा गया है। सरस्वतीतीर्थ के मतानुसार र, म एवं श की अनेक बार समानता होने के कारण अन्त्यानुप्रास अलंकार है।

याज्ञिक जी ने अन्त्यानुप्रास का एक और सुन्दर उदाहरण इस गीत द्वारा प्रस्तुत किया है-

विलसित ललिता । उपवनवनिता ।।

नवपल्लविता अनिल तरलिता तरुवर मिलिता सुकुमारलता ।। विलसति-1 ।।

रतिकामहिते मृदुकेलिहिते मनसिजदयिते सरसवसन्ते ।। विलसति-2 ।।[2]

1• छत्रपतिसाम्राज्यम् पृ0 127-28

2• संयोगितास्वयंवरम् - पृष्ठ 4

उपर्युक्त उदाहरण में ता एवं ते शब्द के अन्त में होने के कारण अन्त्यानुप्रास अलंकार है।

याज्ञिक जी ने अन्त्यानुप्रास के अतिरिक्त छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास एवं लाटानुप्रास अलंकार को भी यथा स्थान निबद्ध किया है। इनकी एक विशेषता यह भी है कि अपने नाटकों में निबद्ध सभी गीतों में अनुप्रास अलंकार का ही प्रयोग किया है। याज्ञिक जी के नाटकों में अनुप्रास के अतिरिक्त अन्य शब्दालंकारों का प्रयोग नाम मात्र रूप में किया गया है।

अर्थालंकार -

काव्य या नाटक में अर्थालंकार का विशेष महत्त्व है। ये अलंकार काव्य में अर्थ द्वारा सौन्दर्य श्री की वृद्धि करते हैं। महर्षि वेदव्यास का अभिमत है कि अर्थालंकार के प्रयोग के बिना शब्द सौन्दर्य मनोहर नहीं बनता है। अतः काव्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिए अर्थालंकार का प्रयोग करना चाहिए। अर्थालंकारों की संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में केवल चार प्रकार के अलंकारों का उल्लेख मिलता है- उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक। वामनने 33, दण्डी ने 35, आदि विद्वानों नेअलग-अलग संख्या निर्धारित की है।

उपमा अलंकार -

"साधर्म्यमुपमा भेदे ।"

उपमा एवं उपमेय का भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया एवं धर्म की समानता होने पर उपमा अलंकार होता है। वर्ण्यविषय के सजीवचित्रण के आधार भूत उपमा अलंकार के प्रयोग में श्री जीवगोस्वामी की कला अत्यन्त पटु है, जो वर्ण्य को अलंकृत करने के साथ ही साथ उसके वास्तविक रूप को प्रभावशाली ढंग से

पाठकों के मानसपटल पर चित्रित कर देती है।

वस्तुतः साधर्म्यमूलक अलंकारों का मूल आधार उपमा ही है। इस सम्बन्ध में अप्पयदीक्षित ने तो चित्रमीमांसा में यहाँ तक कहा है कि उपमा ही वह नर्तकी है जो विभिन्न प्रकार की अलंकार भूमिकाओं में काव्यमंच पर अवतीर्ण होकर सहृदयों को आनन्दित करती है।

श्री याज्ञिक जी की कृतियों में उपमा अलंकार के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

समदनुपमनीकं धर्षयित्वा रणाग्रे,
प्रकटितसुपुर्वीर्यो यावनेशाभियुक्तः ।
यदुपतिरिव दुर्गं वासयित्वा स्वपौरान्,
प्रतिहतपरमन्त्रो राजसे त्वं स्वतन्त्रः ॥[1]

उपर्युक्त उदाहरण में श्री याज्ञिक जी मुगलसेनापति मानसिंह की उपमा जरासंध से और मेवाड़ाधिपति राणाप्रतापसिंह की उपमा श्री कृष्ण से देते हैं, क्योंकि जिस प्रकार श्रीकृष्ण, जरासंध को अपमानित कर अपना महान शौर्य प्रकट करते हुए नगरवासियों को बसाकर शत्रु की चाल को नष्ट कर शोभित हुए, ठीक उसी प्रकार राणा प्रतापसिंह रणभूमि में मानसिंह को बार-बार अपमानित कर अपने महानविक्रम को प्रकट कर अकबर द्वारा आक्रान्त होने पर भी नगरवासियों को दुर्ग में बसाकर शत्रु को पराजित कर शोभा पा रहे हैं।

- -

1. प्रताप विजयम् - 6/11।

याज्ञिक जी एक अन्य उदाहरण द्वारा उपमा को दर्शाते हैं।

एतादिरूढतरुगुल्मलतावितानमुत्तङ्गपार्श्वगहनं गहनान्तरालम् ।

प्रछन्नसत्त्वमभितः पवनाधूतमुल्लोलवीचिजलधेः समतां विधन्ते।।[1]

याज्ञिक जी ने प्रस्तुत प्रसंग में वायु से आन्दोलित वन की समता समुद्र की लहरों से एवं पर्वत के समीप स्थित वन की समता निवासयोग्य स्थान से की है।

"संयोगितास्वयंवरम्" नाटक में उपमा का उदाहरण द्रष्टव्य है-

मन्दानिलसंचारचपलयतीमां नताङ्गि दीपशिखाम् ।

वात्सल्यपोषितामपि गुरुसदननतामनङ्ग इव वनिताम्।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में पृथ्वीराज कहता है- यह मन्दपवन अपने संचारवेग से दीपक की शिखा को उसी प्रकार हिला-डुला रहा है जैसे वात्सल्यपूर्वक पाली-पोषी गयी वनिता गुरुओं के सामने लज्जावश नम्र हो जाती है। यहाँ पर दीप-शिखा की तुलना वनिता से एवं वायु की तुलना गुरुसदन से होने के कारण उपमा अलंकार है।

रूपक अलंकार :-

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।।[3]

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।।[4]

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् 4/20
2. संयोगितास्वयंवरम् 3/15
3. काव्यप्रकाश - सूत्र 139, पृष्ठ 49।
4. साहित्यदर्पण

जहाँ उपमान तथा उपमेय का भेद प्रकट होता है किन्तु अत्यन्त साम्य के कारण अभेद का आरोप किया जाता है वहाँ रूपक अलंकार होता है।

इसका आशय यह है कि भिन्न-भिन्न प्रकट होने वाले उपमान और उपमेय में अभेद का आरोप ही रूपक है- "रूपयति एकतां नयतीति रूपकम्।" यह अभेद आरोप अत्यन्त साम्य के कारण होता है। जैसे- मुखं चन्द्रः ।

उदाहरण :- देवानां नवविजयध्वजो रणाग्रे,
दैत्यानां प्रलयकृदेव धूमकेतुः ।
पापानां हृदय विदारिणो महोग्रः,
खड्गोऽयं तव परिकल्पितो भवान्या ।।[1]

अर्थात् युद्धभूमि में देवों के लिए नवविजय ध्वज की भाँति लहराने वाली, दैत्यों के लिए धूमकेतु के समान विनाश करने वाली, दैत्यों के लिए कलुष हृदय को विदीर्ण करने वाली यह तलवार भवानी ने तुम्हारे लिए प्रदान की है। उपर्युक्त उदाहरण में भवानी द्वारा दी गयी तलवार पर धूमकेतु का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है क्योंकि यह अभेदारोप अत्यन्त साम्य के कारण हुआ है।

याज्ञिक जी द्वारा प्रणीत "संयोगितास्वयंवरम्" नाटक में रूपक का उदाहरण अधोलिखित है-

- -

1. छत्रपति साम्राज्यम् 3/4

मलयजकणानुवासितहिमकरकरशीतलो मृदुसमीर: ।
उपगुह्य नवकिसलयां नर्तयति नतां लतावनिताम् ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में चन्द्रमा की किरणों से निकली हुई शीतल वायु का लतारूपी स्त्री में अभेद होने पर भी समता को प्रकट किया गया है। अत: रूपक अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार :-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यन्तु सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा ।।[2]

जहाँ किसी सम्भाव्यमान अर्थ की सिद्धि के लिए उससे भिन्न किसी दूसरे अर्थ की स्थापना की जाती है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। अर्थात् जहाँ पर विशेष द्वारा सामान्य का अथवा सामान्य द्वारा विशेष का, कारण द्वारा कार्य का अथवा कार्य द्वारा कारण का साधर्म्य या वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाता है तो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

कवि प्रयुक्त प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य है-

नित्यं प्रियाननविलोकननन्दितैवं,
नेच्छाम्यहं परिणतिं ननु जीवितं मे ।
ज्योत्स्नां निपीय नितरां मुदिता चकोरी,
नाकांक्षते ह्यसुलभं द्विराज्योनम् ।।[3]

---

1. संयोगितास्वयंवरम् 1/2
2. काव्य प्रकाश सूत्र 165; पृ0 534
3. प्रताप-विजयम् 5/15

उपर्युक्त उदाहरण में उस समय का वर्णन किया गया है जब पृथ्वीराज की बहन (राजपुत्री) राणाप्रताप सिंह के पुत्र अमरसिंह(युवराज) के प्रति आसक्त(प्रेम में लीन) होकर प्रताप सिंह से कुलवधू के रूप में स्वीकार करने का निवेदन करती है, लेकिन प्रताप सिंह उसके अनुग्रह को अस्वीकार कर देते हैं, उसी समय पृथ्वीराज की बहन (राजपुत्री) कहती है- मैं प्रतिदिन प्रियतमरूप में माने गये युवराज के मुखालोकन से आनन्दित होकर उसी प्रकार अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दूँगी , जिस प्रकार चाँदनी को पीकर अत्यन्त प्रमुदित हुई चकोरी, दुर्लभ चन्द्रमा के योग को न स्वीकार कर अपना जीवन व्यतीत कर देती है। इस प्रकार प्रस्तुतउदाहरण में पूर्व एवं उत्तरवर्ती कार्य कारण भाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

> स्वामिनं तु निजधर्मविच्युतं ॥ सेवकः परिहरन्न दोषभाक् ।
>
> अग्रजं हि परदारलोलुपं व्याजहौ गुणनिधिर्विभीषणः ॥[1]

उपर्युक्त प्रसंग उस समय का है जब जयसिंह एवं शिवराज के बीच वार्तालाप होता है- शिवाजी, जयसिंह से कहते हैं कि अद्वितीय पराक्रमशाली, साक्षात् विजय की मूर्ति सदृश आप भी मुगल सम्राट् की सेवा क्यों कर रहे हैं ? जयसिंह कहते हैं कि पूर्व सम्राटों के अनुग्रह के कारण' कृतज्ञ हम अपना सेवक धर्म निभा रहे हैं।

...... शिवाजी इसके विपरीत होते हुए कहते हैं-

यदि स्वामी अपने धर्म मार्ग से विचलित हो जाय तो सेवक द्वारा स्वामी का त्याग कर देना दोष नहीं होता है, क्योंकि परस्त्री लोलुप रावण के छोटे भाई विभीषण ने रावण को त्याग दिया था। अतः यहाँ स्पष्ट है कि सम्भावित अर्थ की सिद्धि न

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् - 7/7

होकर दूसरे अर्थ की स्थापना हो रही है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है-

अप्यायितस्ते नवपल्लवाधर -

स्रितेन पीयूषरसेन कामिनि ।

कथं भवेयं मधुपानलालसः,

किमाप्तकामस्य हि दृश्यते स्पृहा ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता के अधर पान की सिद्धि के लिए मदिरापान की सिद्धि होने के कारण यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

निदर्शना अलंकार :-

" अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः" ।[2]

जहाँ पदार्थों या वाक्यार्थों का अनुपपद्यमान सम्बन्ध उपमा की परिकल्पना कर लेता है वहाँ निदर्शना अलंकार होता है ।

" यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत सा निदर्शना" ।।[3]

जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव अथवा असम्भव होता हुआ उनके बिम्बप्रतिबिम्ब भाव को बोध न करें, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है, यह दो प्रकार का होता है।

1· वाक्यार्थ निदर्शना 2· पदार्थ निदर्शना ।

1· संयोगिता स्वयंवरम् 5/19

2· काव्यप्रकाश सूत्र 97, पृ0 505

3· साहित्यदर्पण -

याज्ञिक जी की नाटक कृतियों में निदर्शना अलंकार के अधोलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

लोकप्रकाशनमराति तमोऽपहारि

संतर्पणं नयनमानसयोर्वपुस्ते ।

एतन्नवोपचितयौवनराज्यलक्ष्म्या,

तेजोद्वयस्य युगपत्सुषमां दधाति ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में रानी शिवराज से कह रही है हे आर्यपुत्र ! आज तो संसार को प्रकाशित करने वाला, शत्रुरूपी अंधकार को दूर करने वाला नवयौवन तथा लक्ष्मी से युक्त यह आप का शरीर दोनों तेजों सूर्य एवं चन्द्रमा की शोभा एक साथ धारण कर रहा है। यहाँ पर लोकप्रकाशन इत्यादि में निदर्शना अलंकार है, क्योंकि यहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा को एक साथ रखकर शरीर से समानता की जा रही है जो कि असम्भव का बोध कराता है। इसलिए यहाँ पर केवल उपमा का बोध कराया जा रहा है-

चण्डांशुप्रकरात्मात्मस्वरुचिर्दूरात्वरांस्तापय-

न्नासीद्यस्तमन्द्युतिः परिपतन्मुग्धाग्रसंगृह्गतः ।।

ज्योत्स्नासंमतयानदानमपरमः पयोधरत्नाकरः

सोऽयं चान्द्रमसीं दधाति सुषमामाह्लादयन्स्वाः प्रजाः।।[2]

- -

1. छत्रपति साम्राज्यम् 3/15

2. प्रताप विजयम् 9/3

उपर्युक्त उदाहरण में चण्डांशु आदि शब्द का प्रयोग कर राणाप्रताप सिंह को सूर्य एवं चन्द्रमा से दर्शाया गया है, जो आपाततः असम्भव होकर उपमा में परिणत किया गया है। इसलिए यहाँ निदर्शना अलंकार है।

संयोगितास्वयंवरम् में निदर्शना का उदाहरण द्रष्टव्य है-

परस्परं वर्णजलं सहेलं सुवर्णशृङ्गैरभिषेचयन्त्यः ।

सायंतनीं सूर्यमरीचियोगजां गता युवत्यः शरदभ्रशोभाम्।।[1]

अर्थात् विलासपूर्वक लीला के साथ रंगीन जल को सोने के यन्त्र विशेषों से एक दूसरे के ऊपर सींचती हुई युवतियाँ सायंकालीन सूर्य की किरणों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली शरत्कालीन मेघ की शोभा को प्राप्त हो गयी हैं। यहाँ पर सायं कालीन सूर्य का रंगीन जल से सम्बन्ध अन्ततः उपमा में परिकल्पित होता है।अतः निदर्शना अलंकार है।

दृष्टान्त अलंकार :-

'दृष्टान्त पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ।।[2]

'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् ।।[3]

जहाँ दो वाक्यों में धर्म सहित उपमान और उपमेय में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होता है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

---

1. संयोगितास्वयंवरम् 2/4
2. काव्यप्रकाश सूत्र 155 ; पृष्ठ 518
3. साहित्यदर्पण-

दृष्टान्त का व्युत्पत्तिकृत अर्थ है"दृष्टोऽन्तः निश्चयोयत्र" ।अर्थात् दृष्टान्तिक वाक्य के द्वारा दार्ष्टान्तिक वाक्यके अर्थ का निश्चय । दृष्टान्त के उपमेय एवं उपमेय विशेष अङ्ग हैं।

साहाय्यमासाद्य महद्गनोकसां,

ध्रुवं विजेष्ये यवनेशमुन्मदम् ।

रघूद्वहाभ्या कपिसेनया न किं

दशाननस्याऽपि कृता कबन्धता ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में साधारण धर्म आदि का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दो वाक्यार्थों का औपम्य भाव स्पष्ट हो रहा है। इसमें बीजापुर नरेश एवं रावण तथा विजयश्री एवं शिरोविहीनता का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। अतः दृष्टान्त अलंकार है। याज्ञिक जी ने अपनी एक अन्य कृति प्रतापविजयम् नाटक में दृष्टान्त अलंकार का उदाहरण देते हुए उस समय का वर्णन किया है जब पृथ्वीराज मुगल दरबार में रहते हुए राणाप्रताप सिंह के पक्ष की बात करता है।

तपनान्वयसंभवस्य मे स्फुटमेवाकलितो रसस्त्वया ।

मकरन्दगुणं मधुव्रतः सुतरां वेत्ति न वन्यवारणः ।।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में भ्रमर एवं पृथ्वीराज तथा कुल एवं प्रतापसिंह का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव दर्शाया गया है।

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् -1/14

2. प्रतापविजयम् - 7/5

याज्ञिक जी द्वारा संयोगितास्वयंवरम् नाटक में निबद्ध उदाहरण अधो-
लिखित है-

कथं स सम्राड्रिपुवाहिनीवृत -

स्त्वाविर्भवेन्तेनियमेन सन्निधौ ।

न वै स्वयं प्रावृषि मेघसंवृत:

स्फुटं सदा तिग्मरुचि: प्रकाशते ।।[1]

अर्थात् शत्रु की सेना से घिरे हुए सम्राट् नियमपूर्वक तुम्हारे पास कैसे उपस्थित हो सकते हैं क्योंकि वर्षा काल में बादलों से घिरा हुआ सूर्य दिखाई नहीं पड़ता है। यहाँ पर पृथ्वीराज का सूर्य से तथा शत्रुसेना का बादल से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार है।

उत्प्रेक्षा अलंकार :-

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा 'प्रकृतस्य समेन यत् "[2]

'प्रकृत वस्तु की उपमान के साथ सम्भावना होना ही उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उदाहरण - नेत्र प्रभाज्वलिततीक्ष्ण करालधारो,

निस्त्रिंश एव कटिबन्धतटावलम्बी ।

किंत्वम्ब ! दुष्कृतवधार्थमनन्तमूर्ते,

शक्त्यात्मना परिणतोऽस्ति तवावतार:।।[3]

1· संयोगितास्वयंवरम् - 6/2

2· काव्यप्रकाश - सूत्र 137

3· छत्रपतिसाम्राज्यम् -3/5

उपर्युक्त उदाहरण में उस समय का वर्णन किया गया है, जब शिवाजी भवानी द्वारा प्रदान की तलवार को भवानी के अवतार रूप में स्वीकार करते हैं। कहते हैं - कटितट में लटकने वाला, तीक्ष्णधार से युक्त, प्रकाश से जाज्वल्यमान यह साधारण खड्ग नहीं है अपितु हे अम्ब। पापात्माजनों से संसार को रहित करने के लिए अनन्त मूर्ति वाली स्वयं खड्ग रूप में परिणत तुम्हारा यह अवतार है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में शिवाजी द्वारा तलवार की सम्भावना अवतार रूप में करने की स्थिति में उत्प्रेक्षा अलंकार है। याज्ञिक जी के "संयोगितास्वयंवरम्" नाटक में उत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है-

> पुष्पितां कमलिनीं प्रकम्पनः,
>
> संनिमत्य सरसो विपाट्य किम्।
>
> प्रेरयत्यभि विविक्त काननं,
>
> कामुको गुरुकुलादिवाङ्गनाः ॥[1]

अर्थात् वायु खिले हुए कमलिनी वन के बीच पहुँचकर उसे आन्दोलित कर रहा है। जैसे किसी सुन्दर मुखवाली कामुक अङ्गना गुरुकुल में भेजी जाती है। यहाँ पर खिले हुए कमलिनी की सम्भावना कामुक अङ्गना में होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

---

1. संयोगितास्वयंवरम् -4/12

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार :-

"अप्रस्तुत प्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया"।[1]

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार वहाँ होता है जहाँ अप्रस्तुत की वर्णना द्वारा प्रस्तुत की,प्रतीति होती है। अप्रस्तुत प्रशंसा में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में पाँच प्रकार का सम्बन्ध होता है। कार्य के वर्णनीय होने पर उससे भिन्न अर्थात् कारण का वर्णन, कारण के प्रस्तुत होने पर कार्य का सामान्य के प्रस्तुत रहने पर विशेष का, विशेष के रहते सामान्य का तथा तुल्य के प्रस्तुत होने पर तुल्य का वर्णन होता है।

उदाहरण : प्रभञ्जनोत्पाटितवृक्षपादपं,

समुत्पतत्पन्नगराजिसंकुलम् ।

हितोद्भवं स्वं मलयं हिरण्मयं

मेरुं श्रयन्तो न हि चन्दनद्रुमा: ।।[2]

उपर्युक्त प्रस्तुत उदाहरण में सर्प निवास योग्यरूपी वृक्ष की प्रतीति चन्दन रूपी वृक्ष से की गयी है, एवं मलय पर्वत की प्रतीति सुमेरु-पर्वत से की गयी है, जो कि असम्भव है, क्योंकि सर्प न तो चन्दन के वृक्ष को और न तो सुमेरू पर्वत को ही शरणस्थली बना सकता है। अत: यहाँ पर अप्रस्तुत की वर्णना द्वारा प्रस्तुत की स्पष्ट प्रतीति होती है । अत: अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। इसी प्रकार याज्ञिक जी के अन्य

1· काव्यप्रकाश सूत्र - 151

2· प्रताप-विजयम् - 4|2

नाटकों में भी अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

काव्यलिङ्ग अलंकार

" काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता" ।[1]

जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में हेतु (लिङ्ग) कहा जाता है वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है। काव्यशास्त्र में अभिमतलिङ्ग ही काव्यलिङ्ग है। यहाँ लिङ्ग का अर्थ हेतु है।

उदाहरण :-

घनविरूढफलाढ्यपादपं,
मधुरनिर्झरवारिपरिप्लवम् ।
द्विजततेर्विरुतैश्च निनादितं,
व्रजति नन्दनतां गिरिकाननम् ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में उस समय का वर्णन है जब राणाप्रताप सिंह कहते हैं कि अन्त: पुर निवासियों के लिए वन प्रदेश कष्टदायक है, तो राजमहिषी कहती हैं कि शिकार के विहारों से परिचित क्षत्रियाणियों के लिए तो सघनता से उगे हुए एवं फलों से लदे हुए वृक्षवाला, झरनों के मधुर जल के प्रवाहों वाला और पक्षियों की पंक्तियों के शब्दों वाला यह पर्वतीय वन, नन्दन वन के समान है। इस प्रकार इस

- -

1. काव्य प्रकाश सूत्र 174

2. प्रतापविजयम् 4/15

उदाहरण में पर्वतीय वन की नन्दनवन के रूप में अभिव्यक्ति होने से अनेक पदार्थों एवं वाक्यार्थों के रूप में काव्यलिङ्ग अलंकार है।

याज्ञिक जी द्वारा "संयोगितास्वयंवरम्" नाटक मे वर्णित उदाहरण द्रष्टव्य है-

सकलभारतराजकुलेश्वरो

दिशति ते स्वमुखे प्रतिहारिताम् ।

यदि नियोगमिमं न हि पश्यसे,

समरयज्ञपशुत्वमुपेष्यति ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में सम्पूर्ण भारत को राजकुल के रूप में मानने की अवस्था के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में उपर्युक्त वर्णित नाटकों के अतिरिक्त कारकदीपक, अपह्नुति, सम्भावना, अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त अलंकारों की समीक्षा करने से यह ज्ञात होता है कि कविवर याज्ञिक के नाटकों में अलंकारों की छटा बहुरंगी है। याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में शब्दालंकारो एवं अर्थालंकारों का पर्याप्त रूप में प्रयोग किया है। इनके नाटकों में जहाँ अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना दृष्टान्त आदि अलंकारों का बहुतायत प्रयोग किया गया है, वहीं पर यत्र-तत्र अप्रस्तुत प्रशंसा, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग, दीपक, अपह्नुति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की भी झलक दिखाई

पड़ती है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि सहज और स्वाभाविक ढंग से उद्भूत अलंकारों ने याज्ञिक जी की शैली को अलंकृत कर उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। उपर्युक्त नाटकों के अलंकारों में प्रयुक्त बिम्ब सटीक, सजीव तथा भावपूर्ण है।

0 0 0 0 0
0 0 0
0

खण्ड - 3

नाटकत्रय में छन्दोयोजना

छन्द का उद्गम स्थान वेदों को माना जाता है, जिन्हें अपौरुषेय कहा गया है। इस विषय को वैदिक साहित्य में वेदांग कहा गया है। प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने वेद को "छन्दस्" कहा है। पाणिनि ने छन्द का मूल अर्थ आह्लादन माना है। छन्द की परिभाषा देते हुए कहागया है कि छोटी बड़ी ध्वनियों का माप तौल में बराबर-बराबर होना ही छन्द रचना का मूल आधार है। ध्वनियों को बराबर करने के लिए विशेष नियम हैं इन्हीं नियमों के कारण ध्वनियाँ लय उत्पन्न करती हैं।

पद्य-काव्यों की रचना, मात्रा, वर्ण, यति, गति चरण, गज के नियमों से बधी होती है। काव्य का यही बन्धन छन्द कहलाता है। साहित्य शास्त्र में छन्दों की अपनी अलग विशेषता है।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष में छन्द को ही वेदों कापाद या छन्द कहा गया है-[1]

"छन्दः पादौ तु वेदस्य"

जिस प्रकार चरण विहीन व्यक्ति चल फिर नहीं सकता, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद गतिशील नहीं हो पाता है। जिस प्रकार से व्याकरण शास्त्र के सूत्र पाणिनि कामशास्त्र के सूत्र वात्स्यायन, शिक्षाशास्त्र के सूत्र शौनकादि एवं कल्पशास्त्र के सूत्र आपस्तम्ब, पारस्कर तथा बौधायन आदि ने लिखे, ठीक उसी

1· पाणिनीयशिक्षा- छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

इसलिए पद्य की रचना के लिए ही छन्दः शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है।

वेद में तो छन्दों की सत्ता अनिवार्य ही है पर लौकिक साहित्य में भी छन्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है। छन्दों से ही काव्य अनुशासित होता है इसलिए छन्दोबद्ध रचना ही सुन्दर मानी जाती है। छन्द काव्य के लिए आवश्यक ही नहीं, बल्कि उसका द्योतक भी है।[1]

जिस प्रकार वैयाकरण आचार्यों ने उच्चारण मात्रा को ध्यान में रखकर तीन प्रकार के स्वर बताये है -ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत[2], उसी प्रकार छन्दः शास्त्रियों ने छन्द में तीन अक्षरों को गण बतलाये है। किन्तु छन्दः शास्त्र में प्लुत का अन्तर्भाव दीर्घ में कर दिया गया है। इस प्रकार छन्दः शास्त्र केवल दो प्रकार के स्वरों को मान्यता देता है-1• ह्रस्व 2• दीर्घ । इसे छन्दः शास्त्र में क्रमशः लघु एवं गुरु कहते है। छन्दः शास्त्रीय दृष्टिकोण से केवल आठ प्रकार के गण बन सकते हैं-
यगण, रगण, तगण, नगण, भगण, जगण, सगण, मगण ।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए अपनी कृतियों में सुनियोजित ढंग से छन्दों का वर्णन किया है।जो निम्नवत् है-

1• <u>वसन्ततिलका</u> :-

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः।[3] वसन्ततिलका छन्द के प्रत्येक चरण में तगण, भगण,जगण तथा दो गुरुवर्ण होते है। इस प्रकार प्रत्येक चरण में चौदह अक्षर होते हैं। इस छन्द के अन्त में यति होती है। आचार्य काश्यप इसे सिंहोन्नता कहते है-

---

1• हिन्दी का छन्द शास्त्र को योगदान - पृ0 ।

2• एक मात्रो भवेद् ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रकम् ।।

अष्टाध्यायी

उदाहरण :-

रात्रिंदिवं रिपुगणान् शतशो निहत्य,
नीतो वशं प्रकामेव मया प्रदेशः ।
नायं तथापि परिपन्थिवधा कुलो मे,
तृप्तिं प्रयाति नितरां तृषितः कृपाणः ।।[1]

एवं च-

लोकानुरञ्जनपरस्य जगत्प्रसूतेस्तेजोमयस्य निजमण्डलमण्डनस्य ।
रात्रिंचरस्य च दृगावरणैकवृत्तेः, किं वा भवेदिन्दुपतेस्तमसश्च सख्यम् ।।[2]

एवं च

दुर्दैवतस्त्वमसि मुह्यते प्रवृत्तः,
सम्मान एव विहितो नृप राजसूये ।
सयो विरंस्यसि न चेद्व्यवसायतोऽस्मा-
दन्ताङ्क मे बलमतां करवालवह्नौ ।।[3]

उपर्युक्त छन्द सामान्यतः माधुर्य गुण प्रधान तथा कोमल भावों की अभि-व्यक्ति के लिए उपयोगी है।

2. शार्दूलविक्रीडित छन्द :-

"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् " ।[4]

जिसछन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण सगण, तगण, तगण तथा एक गुरुवर्ण आये उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर होते हैं। इसमें 7 वें एवं 12 वे अक्षर पर यति होती है।

---

1. छत्रपति साम्राज्यम् 3/1
2. प्रताप विजयम् 1/12
3. संयोगिता स्वयंवरम् 1/6
4. वृत्तरत्नाकर 3/100

उदाहरण- प्रासादे परिवारमण्डलयुतेऽरण्येऽथवा निर्जने,

युद्धे प्रस्फुरितास्त्रपातविकटे लीलोत्सवे वा नवे ।

धन्ये मे समतां मतिः प्रिय ! यदा त्वत्पार्श्ववर्तिन्यहं,

नेत्रस्येन्दसुधाप्लुता च नितरां मन्ये प्रमोदं परम् ।।[1]

एवं च - मेधया ममकुन्दसुन्दरमुखे कुन्दाच्छदतिस्मिते,

स्वच्छन्दं विलसन्ति, येऽनवरतं सौदामिनीलीलया ।

भावचित्रकथाविलोकनस्तुतरसा बोऽव्यक्तरागाकुला,

मुग्धाः पान्तु सुकोमलाश्वरस्यो राधादृशोर्विभ्रमाः ।।[2]

एक अन्य उदाहरण छत्रपति साम्राज्यम् का वर्णित है-

प्रच्छन्नं परिपन्थिनां परिचयं कुर्वन्त्यनल्पं स्पशाः,

अध्यक्षाः स्वपदातिसादिनिवहान्संनाहयन्त्युद्यताः ।

दुर्गाणामवने भवन्त्यवहिता दुर्गाधिपा निश्चलाः,

तद्यो रोपयितुं प्रतापमुदितः कालो द्विषामन्तकः ।।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त छन्द सामान्यतया ओज गुण प्रधान होता है।

3. मन्दाक्रान्ता छन्द-

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत ।[4]

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।[5]

---

1. प्रताप विजयम् 8/3

2. संयोगिता-स्वयंवरम् 1/1

3. छत्रपति साम्राज्यम 4/10

4. वृत्तरत्नाकर 3/97

5. छन्दोमञ्जरी

मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथा दो गुरु वर्ण आते हैं। इसमें प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षर होते हैं। चौथे, छठे एवं सातवें अक्षर पर यति होती है।

उदाहरण:- स्वल्पोऽप्याग्निर्ज्वलयति न किं काननं शैलसंस्थं,

मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहशावः।

बालोऽप्यर्को विकिरति न किं ध्वान्तमाराद् क्षणेन,

सर्वेषां प्रतिहतारयसो जातं हि प्रभावः ॥[1]

एक अन्य उदाहरण संयोगिता-स्वयंवरम् नाटक में इस प्रकार द्रष्टव्य है-

कृत्वा बिम्बाधरमवनता ताड्गुलीसंवृताग्रं,

हंसद्वन्द्वं प्रकृतिचपलापाड्ग दृष्ट्या पिबन्ती ।

बाला तन्वी कमलवदना पार्श्वेबी नताङ्गी,

दृष्टा राजन् वरतनुलता काऽपि वातायनस्था ॥[2]

एवं च :- गाढारक्तप्रकृतिरबलोऽनल्पवीर्यस्य शत्रोः,

प्रत्याहन्तुं प्रभवति नृपो दुर्गसंस्थोऽभियोगान् ।

कालेनैवं विमुदितबलं हीन कोशं क्षिपन्तं,

नानायोगैस्त्वपितबलो लीलयैवाच्छिनत्ति ॥[3]

4. <u>पुष्पिताग्रा छन्द:-</u>

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"।[4]

---

1. छ० सा० 1/12

2. संयोगिता-स्वयंवरम् 3/4

3. प्रताप विजयम् 4/6

4. वृत्तरत्नाकर 4/10, छन्दोमंजरी 3/5

इस छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में क्रमशः नगण, नगण, रगण तथा यगण और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में क्रमशः नगण, जगण, जगण, रगण तथा एक गुरु वर्ण आते हैं। प्रथम एवं तृतीय चरण में 12 मात्राएँ और द्वितीय एवं चतुर्थ में 13 मात्राएँ होती है।

उदाहरण – यतिवसनधरो दृढायताङ्गः प्रचलत्त्वा ज्वलितः स कुन्तपाणि ।
नियमितचरणो सादिमुख्टः, सरभसमेत्य विवेश राजदुर्गम् ।।[1]

एवं च रिपुदलविपिने दवाग्निरूपं प्रकृतमहो तव कोशदण्डतेजः ।
दृढतरमपि वीरपादपं तत्, किमिति करोति न भस्मसात् क्षणेन ।।[2]

याज्ञिक जी ने प्रताप-विजयम् नामक नाटक में उपर्युक्त छन्द का प्रयोग किया है –

विषमयुगगतोऽप्ययं यदि त्वां सकृदधिराजमुदाहरेदजय्यः ।
सुरसरिदचलो वहेत्प्रतीपं तपनकरोऽप्युदियात्तदा प्रतीच्याम् ।।[3]

5. मालिनी छन्द –

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः "[4]

मालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण यगण तथा यगण होते हैं, एवं आठवें (भोगी) तथा सातवें (लोक) अक्षर पर यति होती है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं।

- -

1. छ० सा० 2/1
2. सं० स्व० 1/8
3. प्रताप विजयम् – 7/3
4. वृत्तरत्नाकर – 3/87, छन्दोमञ्जरी

उदाहरण :- ललितपथिकनेत्रे पूरयित्वा रजोभिर्व्यसनमपहरन्तो लुण्ठकाश्चक्रवाता: ।

जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो यथेच्छं वियदभिभवभीताउत्प्लवन्ते समन्तात् ॥[1]

प्रतापविजय में याज्ञिक जी द्वारा लिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

जनपदहितदक्षा बाहुवीर्यप्रतिष्ठा,

विबुधपतिसहाया: क्षात्रधर्मैकनिष्ठा: ।

दिनकरकुलधुर्या आत्मवन्त: स्वतन्त्रा,

नियमितपरचक्रास्तेजसैवोन्नमन्ते ॥[2]

एवं च -

नवकिसलयरागारञ्जितोऽयं रसालो,

हरति मदकलानां कोकिलानां मनांसि ।

बकुलमलिकुलानां गुञ्जितेनाकुलं तत्

मृदुलसुरभिगन्धं गन्धवाहं करोति ॥[3]

6. स्रग्धरा छन्द :- म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।[4]

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम्- 5/11
2. प्रतापविजयम् 4/9
3. संयोगितास्वयंवरम् 2/2
4. वृत्तरत्नाकर 3/104, छन्दोमञ्जरी

स्रग्धरा छन्द के प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर होते हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण भगण, नगण तथा तीन यगण होते हैं। प्रत्येक चरण में तीन बार सातवें - सातवे अक्षर पर यति होती है-

उदाहरण :- कामक्रोधातिरेकव्यसनविदलितं दुर्विनीतं मदान्धं,
त्यत्कोपाग्निप्रदग्धं परिणतविभवं यायुषोऽहन्त गतं तम् ।
हत्वा निःशेषतस्तद्बलमतिविपुलं तर्पयित्वा कृपाणं,
जीवग्राहं गृहीत्वा निगडितचरणं तेऽन्तिकं प्रापयामि।।[1]

एवं च - हुत्वा देहं निजं ये समरहुतवहे प्रस्थिताः पुण्यलोकां-
स्तेषां वीरोत्तमानां समुदित यशसामन्वये ये प्रसूताः ।
अत्युत्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नीतिदक्षाः,
सर्वे ते राष्ट्रभक्ता नृपकुलविभवैर्माननीया यथार्हम्।।[2]

7·<u>उपजाति</u> :-

अनन्तरोदीरितलक्ष्म भाजौ पादौ यदीयादुपजातयस्ताः ।[3]

इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्र वज्रा छन्द के मिश्रण को उपजाति छन्द कहते हैं। अर्थात् पहले दो चरण में इन्द्रवज्रा (दो तगण, एक जगण और दो गुरुवर्ण) एवं बाद वाले दो चरण में उपेन्द्रवज्रा (जगण, तगण, जगण एवं दो गुरुवर्ण) होता है। प्रत्येकचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं।

1· संयोगितास्वयंवरम् ।/।।

2· प्रताप विजयम् 9/6, छत्रपतिसाम्राज्यम् ।0/।।

3· वृत्तरत्नाकर 3/30, छन्दोमंजरी 2/3

उदहारण - व्यायामयोगोपचिताङ्गसत्त्वा, विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिता: ।
राष्ट्रैकभक्ता उपधाविशोधिता, भवन्तु ते भावि रणे सहाया: ॥[1]

एवं च - मृग: पुरस्तात्प्रतिरुद्ध संचर:, यूथाद्विमुक्त: प्रमदो मंतगज: ।
मृगानुपाती च मृगाधिप: सुखं, निगृह्यतेऽद्धा विषमस्थित:पर:॥[2]

एवं च -
नयप्रयोगैर्नितरामधृष्य:, सुताभियोगस्य पुन: प्रकर्षात् ।
एवं तवैवं वशतामुपेत, आशंसते ते स्थिरमद्य सौहृदम् ॥[3]

इस प्रकार भी मूलशंकर याज्ञिक जी उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त ,शिखरिणी, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों को प्रयोग अपनी नाट्यकृतियों में किया है।

याज्ञिक जी का 'प्रकृति चित्रण एवं बिम्बविधा भी अनेक छन्दों के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में प्रस्फुटित होता है। इनके छन्दों में अलंकारों की छटा दर्शनीय है। याज्ञिक जी द्वारा प्रस्तुत नाटक छन्दों की दृष्टि से पर्याप्त'समृद्ध है।

---

1. छ0 सा0 4/5
2. प्र0वि0 3/3
3. सं0 स्व0 7/8

वस्तुत: कविवर याज्ञिक वीर रस के सिद्ध हस्त कवि हैं। और इस रस के परिपोषण में भाषा के साथ-साथ उन्होंने छन्दों को भीभावानुगामी बनाया है, जब कवि युद्ध के भटो, पटहो और युद्धों का वर्णन करता है तो शार्दूलविक्रीडित एवं स्रग्धरा जैसे छन्दों का ही प्रयोग करता है। भावों की कोमलता के प्रसंग में प्राय: कोमलछन्दों का ही प्रयोग किया, कठोर भावों के प्रसंगोंमें याज्ञिक जी ने सबसे अधिक शार्दूलविक्रीडित छन्द को चुना है और उसको पूरी तरह घटित किया है। उन्होंने नाटकों के नान्दी एवं भरत वाक्य के श्लोकों में भी इसी छन्द का प्रयोग किया है । वस्तुत: रसानुकूल वर्णो एवं छन्दों के प्रयोग द्वारा ही कवि ने अपने नाट्य काव्यों में रसात्मक बोध के समुपित सिद्धान्त का प्रदर्शन किया है।

0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

षष्ठ अध्याय

नाटकत्रयी में गीत योजना

नाटकत्रयी में गीत योजना
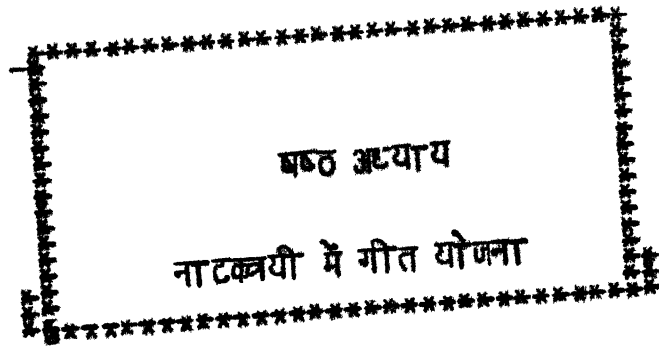
स्वरूप :-

संगीत के तीन भेदों (गीत, वाद्य तथा नृत्य) में गीत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि गीत, वाद्य एवं नृत्य इन तीन तत्त्वों के मिलन को संगीत कहा जाता है, फिर भी इन तीनों में गीत ही प्रधान तत्त्व है। प्रश्न उठता है कि संगीत क्या है ? उत्तर है - संगीत एक प्रायोगिक कला है। गायन, वादन एवं नृत्य की अन्विति संगीत है-"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।"[1]

संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। संगीत के प्रारम्भ एवं अंत के विषय में कुछ कह पाना उसी प्रकार कठिन है, जिस प्रकार यह बतापाना असम्भव है कि मनुष्य का जन्म एवं मरण कब हुआ। फिर भी भारतीय परम्परा है कि जिस प्रकार वेदों को प्रकट करने वाले ब्रह्मा माने जाते है उसी प्रकार संगीत के सम्बन्ध में दो आदि देव-देवाधिदेवशंकर एवं सृष्टि रचयिता ब्रह्मा माने जाते हैं।

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत ने नाट्य का प्रारम्भ ब्रह्मा से माना है। भारतीय जनश्रुति है कि एक बार इन्द्र आदि देवताओं ने भगवान ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हम सब श्रव्य एवं दृश्य क्रीड़नीयक देखना चाहते हैं। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय एव अथर्ववेद से रस तत्त्व को लेकर नाट्यवेद को रचना की है।

- -

1. संगीत रत्नाकर 1/21

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामप्रयोगीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥[1]

इस प्रकार नाट्य के साथ ही संगीत का भी प्रादुर्भाव हुआ।

गीत की प्रधानता को व्यक्त करते हुए आचार्य बृहस्पति कहते हैं गीत, संगीत का अंश है। यद्यपि गीत सम्पूर्ण संगीत नहीं है फिर भी वह संगीत का प्रधान है और वाद्य एवं नृत्य उसके सहायक अंश हैं ।[2]

"गीत" भाषा के माध्यम से मानवीय भावों को व्यक्त करता है नृत्य उन भावों को मूर्तरूप प्रदान करता है तथा वाद्य उसके सहायक होते हैं। नाट्य-शास्त्रियों ने गीत की महत्ता स्वीकार कर नाट्य का प्राण माना है।

अभिनवगुप्त नाट्य में गीत को प्राणभूत तत्त्व स्वीकार करते हुए कहते हैं-"प्राणभूतं तावद् ध्रुवागानं प्रयोगस्य"।[3]

आचार्य शार्ङ्गदेव भी गीत की प्रधानता स्वीकार करते हुए कहते हैं- नृत्य एवं वाद्य "गीत" का उपरञ्जक और उत्कर्ष विधायक है।"नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्त्ति च"।[4]

आचार्य भरत ने "गीत" की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए गीत को नाट्य की शय्या के रूप में प्रतिपादित किया है। यदि गीत और वाद्य का सही ढंग से प्रयोग हो तो नाट्य प्रयोग में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी।

---

1. नाट्यशास्त्र 1/17
2. संगीतचिन्तामणि - पृ0 80
3. अभिनव भारती - पृ0 386 (बम्बई संस्करण)
4. संगीतरत्नाकर पृ0 15 ।

गीते प्रयत्नः प्रथमं तु कार्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम् ।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ।।[1]

आचार्य शार्ङ्गदेव का कथन है-"गीत" स्वरों का वह समुदाय है जो मन का रञ्जन करता है, यह गान्धर्व और गान के माध्यम से दो प्रकार का है ।

रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्याभिधीयते ।
गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ।।[2]

"गान्धर्व गीत" गान्धर्वों द्वारा गाये गये गीत को कहते हैं एवं "गान गीत" संगीतकारों एवं गायकों द्वारा अपनी बुद्धि एव कौशल के द्वारा निर्मित गीत को कहते हैं।

संगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ गान्धर्व और गान गीत को क्रमशः मार्ग संगीत एवं देशीसंगीत मानते है-

मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।।[3]

मार्ग संगीत अत्यन्त कठोर,सांस्कृतिक एव धार्मिक नियमों में बधा होने के कारण प्रायः समाप्त हो गया है।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी रुचि के अनुसार मनोरञ्जनार्थ जिस प्रकार के गीत को सभी लोग गाते है उसे देशी गीत कहते हैं।

---

1. नाट्यशास्त्र 32 पृ0 603
2. संगीतरत्नाकर पृ0 203 {प्रबन्ध अध्याय}
3. संगीतरत्नाकर पृ0 14 {स्वराध्याय}

देशे-देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम् ।
गीतं च वादनं नृत्य तद्देशीत्यभिधीयते ।।[1]

देशी संगीत वस्तुत: वह संगीत है जो भिन्न-भिन्न स्थान के लोगों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से मनोरंजन हेतु गया जाता है। देशी संगीत के स्थान भेद होने के कारण आधुनिक संगीत से मिलता है क्योंकि हिन्दुस्तानी संगीत नियमबद्ध है।

मानव द्वारा निर्मित गीत के चार अंग माने गये है।§1§ राग §2§भाषा §3§ ताल §4§ मार्ग । ये चारो तत्त्वभावों को व्यक्त करने में सहायक होते हैं।

आचार्य भरत ने गीत को दस लक्षणों से युक्त माना है-

ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च न्यासापन्यास एव च ।
अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च षाडवौडुविते तथा ।।[2]

प्राचीन आचार्यों ने गीतों के अनेक भेद माने है। आचार्य भरत ने गीतों को ध्रुवागीत, आसारित, वर्धमान आदि प्रधान भेदों में विभक्त किया है।

ध्रुवागीतों के नाटकों में प्रयोग होने के कारण भरत आदि आचार्यों ने इसे अधिक महत्त्व पूर्ण माना है।

---

1. संगीत रत्नाकर - पृ0 14, 15 §स्वराध्याय§

2. नाट्यशास्त्र - पृ0 443 §मुम्बई संस्करण§

ध्रुवागीत :-

आचार्य भरत के अनुसार जो ऋचाएँ पाणिका एवं गाथाएँ हैं, सप्तरूप के अंग एवं प्रमाण है उसे ध्रुवागीत कहते हैं।[1]

ध्रुवा गीतों में वाक्य, वर्ण, अलंकार यति, पाणि, लय आदि एक दूसरे के साथ ध्रुव रूप में सम्बद्ध रहते हैं इसी कारण इसे ध्रुवागीत कहते है ।[2]

ध्रुवागीत अर्थों की अभिव्यक्ति में सहायक होने के साथ-साथ किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में सहायक होते हैं। जिस भाव को अभिव्यक्त करनें में गद्य आदि असमर्थ हो जाते हैं उन्हें ध्रुवा गीतों के द्वारा सहायक बनाया जाता है। ये ध्रुवागीत नाट्य प्रयोग के समय प्रयुक्त होकर नाटकों को अलंकृत कर रस सौन्दर्य एवं अर्थ स्पष्टीकरण में सहायक होकर नाटकों को अलंकृत करते हैं। आचार्य भरत ने ध्रुवागीतों की भाँति आसारित एवं वर्धमान आदिगीतों का भी विस्तार पूर्वक विवेचन किया है।

'प्रकृति कवि श्री मूलशंकर याज्ञिक की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने उपर्युक्त गीतोंका सन्निवेशकर अपने नाटकों में राग एवं ताल को ध्यान में रखते हुए गीतों की रचना करने में सफलता प्राप्त की है। याज्ञिक जी ने अनेक स्थलों परआवश्यकता अनुसार उसी प्रकार के गीतों को उद्धृत किया है जिस प्रकार के गीतों की स्थान विशेष पर आवश्यकता थी ।

- -

1• नाट्यशास्त्र - पृ0 532 (बम्बई संस्करण)

2• नाट्यशास्त्र - पृ0 532 (बम्बई संस्करण)

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने अपने गीतों में अनेक प्रकार के रागों को उद्धृत किया है-

राग :- येस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगन्त्रितयवर्तिनाम् ।

ते रागा इति कथ्यते मुनिभिर्भरतादिभि: ।।[1]

अर्थात् भरत प्रभृति मुनियों ने उन्हें राग कहा है जिनके द्वारा त्रिलोक स्थित प्राणियों का मनोरञ्जन होता है।राग के लिए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषा दी है।

संगीत रत्नाकर कार का कथन है कि जो राग "स्थायी,आरोही, अवरोही एवं संचारी " इस वर्ण चतुष्टय से शोभित हो उसे राग कहते हैं ।राग के विषय में कल्लिनाथ टीका में कहा भी गया है-

चतुर्णामपि वर्णानां यो राग: शोभनो भवेत् ।

स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृता: ।।[2]

आचार्य भरत के अनुसार जातियां ही मूलराग है जिनमें विकार होने से अनेक राग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार भरत ने जातियों को राग माना है । इसी प्रकार आचार्यों ने अनेक प्रकार के राग माने हैं।

विशिष्ट स्वर, वर्ण(गानक्रिया) से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जिससे जन रंजन होता है उसे राग कहते हैं।[3]

याज्ञिक जी ने "छत्रपति-साम्राज्यम्" नामक नाटक में मल्लार राग में त्रितालबद्ध गीत निबद्ध किया है।

1• भरतकोष - पृ0 922

2• संगीतरत्नाकर कल्लिनाथटीका अड्यार संस्करण पृ0-6,7

3• भरत कोष पृ0 921

मल्हार राग :-

यह वर्षा ऋतु का मौसमी राग है मल्लाहार राग का शाब्दिक अर्थ है मल का हरण करना। यह राग बहुधा वर्षा ऋतु में गाया जाता है। वर्षा के समय वर्षा से सारे प्रान्त का मल बह जाता है कदाचित् इसका नाम मल्लारचाम पड़ा। इस राग के गीतों में सदैव वर्षा ऋतु का वर्णन होता है। तथा मेघ, चातकपपीहे के टेर के अतिरिक्त प्रियतम से दूर विरहिणी नायिका की मनोवृत्ति का भी चित्रण मिलता है। इस राग में निबद्ध यह एक सुन्दर गीत याज्ञिक जी ने रचा है -

रसमति रमयति रसा विशाला । विवलति चपलपयोधर माला ।।
भवति सपदि जनतापविलयनम् । मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम्।। रस0
नमयति तरुगणमलमासार: । क्षुभ्यति गर्जति पारावार: ।। रस0
नन्दति मुदितो जनपदलोक: । जलदविलोकनविगलितशोक: ।। रस0 [1]

उपर्युक्त गीत में वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है जिसका भावार्थ इस प्रकार है।

विशाल धरती जल का बार-बार आस्वादन कर रही है। चन्चल मेघ समूह इधर-उधर घूम रहा है- गर्मी का संताप दूर हो गया है सिंह पर्वत से वर्षा से बचने के लिए स्थान ढूँढने लगा है। जल के बूँद के भार से वृक्ष समूह झुक गये हैं। विशाल समुद्र उफनाने लगा है, मेघ समूह को देखकर अपने शोक को त्याग कर मनुष्य आनन्दित हो रहे हैं।

- -

1. छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 15

एक अन्य उदाहरण में याज्ञिक जी ने प्रियतम के दूर रहने वाली प्रिया-द्वारा गाये गये गीत का वर्णन किया है। संयोगिता द्वारा गीत गाया जा रहा है-

क्व नु मम विहरसि मानसहंस ।।
घन इव सततं वर्षति नयनम् । स्फुटयति तडिदिव रीतिरिह हृदयम् ।। क्व नु0
तिरयति तिमिरं तवपन्थानम् । अयि कुरुमरुतं प्रिय तव यानम् ।। क्व नु0
विरहविलुलितां परमाकुलिताम्। प्रियमुखरितामव तवदयिताम् ।। क्व नु0
उपर्युक्त गीत का भावार्थ इस प्रकार है -

हे मनस्वी मानसरोवर के हंस ! तुम कहाँ विहार कर रहे हो, नेत्र बादल की भाँति निरन्तर बरस रहा है। हृदय बिजली की तरह तड़क रहा है। अन्धकार तुम्हारे मार्ग को तिरोहित कर रहा है। तुम वायु को ही अपना यान बना लो। हे नाथ अपनी इस ग्रह के कारण व्याकुल परमविह्वल, प्रियतम् के मुख में आसक्त अपनी प्रियतमा की रक्षा करो।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने शृंगाररस से युक्त गीत को मल्लारराग में निबद्ध किया है।

भूपाली राग :-

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने वीर रस की अभिव्यंजना करते हुए सेना के युद्ध के लिए प्रयाण करते समय वैतालिक द्वारा नगाड़े की ध्वनि के साथ भूपालीराग में प्रस्तुत गीत को उद्धृत किया है।

- -

1. संयोगिता स्वयंवरम् पृ0 66

उदाहरण :-

भट्टा ! नदतादृमेव - हर- हर - हर महादेव ।

प्रकटयत कटप्रतापमरिकुलघटितोपतापदृष्टा, नदतादृमेव ।। 1 ।।

प्रबलराज्यमदविकारकुटिलपरकृतापकाररुष्टा, नदतादृमेव ।। 2 ।।

निशितशरकृपाणपातसाधितरिपुकटकघाततुष्टा, नदतादृमेव ।। 3 ।।

विजयपटहपटुनिनादपाटितपरिपन्थिमादजुष्टा, नदतादृमेव ।। 4 ।।[1]

वैतालिक गण वीर सैनिकों में उत्साह भरने हेतु उपर्युक्त गीत गाते हैं। जिसका अर्थ इस प्रकार है -

हे वीरों ! तीव्रस्वर में बोलो हर-हर-हर महादेव ! अपने शौर्य पराक्रम को प्रकट कर शत्रुकुल को सन्तप्त करो, राज्यमद के दुरभिमानी, प्रबल, कुटिल दूसरों को कष्ट देने के कारण उसके अपकार से रुष्ट होकर तीक्ष्णबाणों और कृपाण के सन्धान द्वारा शत्रुसेना पर घात कर के सन्तुष्ट विजय दुन्दुभि के निनाद से शत्रु के मद को शान्त करके वीरों ! तीव्र स्वर में अट्टहास सहित बोलो हर-हर-हर महादेव।

इसी प्रकार एक अन्य गीत [2] भी याज्ञिक जीने सैनिकों के उत्साह वर्धन हेतु प्रतापविजयम् नामक नाटक में निबद्ध किया है-

भट्टा ! नदतादृढमेव - हर हर हर महादेव ।

धावत रिपुकटकपारमथमकृतमहापचाररुष्टा ।। 1 भट्टा0 ।।

... शरकृपाणरणत्कारचकितचपलतुरंगासारकृष्टा ।। 2 भट्टा0 ।।

प्रहरणहतवपुविदारविगलितरिपुरुधिरधारमृष्टा ।। 3 भट्टा0 ।।

अवसितरिपुरणविहारहृदयनिहितविजयहारतुष्टा ।। 4 भट्टा0 ।।[2]

---

1. छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 92-93

2. प्रताप विजय पृ0 32

उपर्युक्त गीत में भी योद्धाओं में उत्साह भरने एवं विपक्षी सेना पर विजय का वर्णन किया गया है। उपर्युक्त दोनों ही उदाहरण वीर रस से परिपूर्ण है एवं ओजस्विनी वाणी में प्रस्तुत किये गए हैं। याज्ञिक जी ने "संयोगिता स्वयंवर" नामक नाटक में भी भूमाली राग में गीत निबद्ध किया है- जिसमे सखियाँ गाती है-

पायय तव रसिकां रसपानम् ।।
मोदय सदयं दयिताहृदयम् ।
द्योतय सहृदय लतावितानम् ।। पायय०।।
तृषिते नयने मनोनिलयने ।
त्वयि कुल्लीने प्रिय जहिमानम् ।। पायय०।।

प्रियतमहीना राधा दीना
गायति सततं तव महिमानम् ।। पायय०।।

अर्थात् सखियाँ कह रही हैं- हे कृष्ण, अपनी प्रेमिका को रसपान कराइये, प्रिया के हृदय को हर्षित कीजिए। प्यासी आँखों को अपने में लीन कर लीजिए, हृदय से लगा लीजिए। अपने मान का त्याग कर प्रियतम के बिना हीन राधा को अपने में लीनकर लीजिए ।

इस प्रकार यहाँ पर विप्रलम्भश्रृंगार रस का प्रयोग हुआ है।

कर्णाट राग :-

कर्णाट राग का गायन स्तुति के लिए किया जाता है यह भक्ति रस से युक्त होता है। वीर शिवराज मन्दिर में पूजा करते हुए कहते हैं ।

1• संयोगिता स्वयंवरम् पृ0 22

उदाहरण :-

तारय तव सुतमम्ब ! भवानि ।

प्रबलयवनरिपु ललितविभावम् । प्रलयपयोनिधिविलुलितनावम् पालयपरममृडानि। ।।तारय-1 ।।

विबुधमते ! वनुते तवदास: ! विजयरमां हृतदिव्यविलास: वारय मम विषमाणि।।
तारय-2

त्वमसि ममैकं परमं शरणम्, कलयसि यदि हितमार्योद्धरणम्।वारय विघ्नशतानि ।।
तारय-3

वितरसि यदि नहि करुणालेशम् । धृत्वा ममाटनं यतिवेशम् । निश्चितमयि शर्वाणि।।
तारय-4[1]

अर्थात् - शिवराज पूजा करते हुए कहते हैं-

हे अम्ब ! भवानि अपने सुत का उद्धार करो, प्रबल यवन शत्रुओं के द्वारा उनका प्रभाव नष्ट हो रहा है। प्रलय समुद्र में नाव डाँवाडोल है, हे पूज्य पार्वति ! रक्षा करो । हे देव वन्दिते ! तुम्हारा यह दास जिसने विलासयुक्त जीवन का त्याग कर विजय श्री की प्रार्थना करता है, उसकी विपत्तियों का निवारणकरों। तुम ही मेरे लिए एक मात्र शरण हो। यदि भारतीयों का मार्ग श्रेयस्कर समझती हो तो मेरे शतश: विघ्नों का नाश करो। हे शर्वाणि ! यदि तुम अपनी करुण दृष्टि मेरे ऊपर नहीं डालती हो तो निश्चित ही मैं यतिवेश में भ्रमण करूँगा।

याज्ञिक जी के "प्रताप-विजयम्" नामक नाटक में तान्सेन द्वारा स्तुति गीत गाया जा रहा है -

ललितनवकदम्बमालिविलासिततनुगोपबाल -

लीलापतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ।।

- -

1. छत्रपति साम्राज्यम् - पृ0 40

मृगमदाङ्गतिलकभालमण्डुस्वररचितजाल -

लीलामतिरेषकोऽपि वादयते वेणुम्   ।। । ललित० ।।

चपलनयनघनश्यामसस्मितवदनाभिराम-

लीलारतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ।। 2 ललित० ।।

वृन्दावनवल्गुकुञ्जसुमनोरसिकालिगुञ्ज-

लीलामतिरेष कोऽपि वादयते वेणुम् ।। 3 ललित० ।।

इस गीत में श्री कृष्ण की स्तुति की गयी है।[1] कवि ने श्रृंगार एवं वीर के प्रसंगों में ही नहीं शुद्ध भक्ति एवं कृष्णस्तुति के प्रसंगों में भी गीतो का सुन्दर प्रयोग किया है।

वसन्तराग :-

यह राग वसन्त ऋतु के समय प्रयोग किया जाता है, इस राग का प्रयोग अधिकतर प्रिया द्वारा अपने प्रियतम के लिए किया जाता है।

उदाहरण :-विलसति ललिता । उपवन वनिता   ।।

नवपल्लविता अनिलतरलिता

तरुवरमिलिता सुकुमारलता- विलसति०।। । ।।

रसिकामहिते मृदुकेलिहिते

मनसिज दयिते सरस वसन्ते-विलसति० ।। 2 ।।[2]

- -

1. प्रताप विजयम् पृ० 100-101

2. संयोगिता स्वंयवरम् - पृ० 4

उपर्युक्त गीत में नटी द्वारा वसन्तऋतु में वसन्तराग का कितना सुन्दर गीत गाया गया है, जिसमें उपवन की लता का वर्णन रमणीरूप में किया गया है इस प्रकार यह गीत श्रृंगार रस प्रधान है।

विहागराग :-

वीर शिवराज के जयसिंह के शिविर में पहुँचने पर उनके स्वागतार्थ नर्तकियाँ माधुर्य गुण से परिपूर्ण विहागराग के गीत प्रस्तुत करती हैं-

सुमसुकुमार ! नयनविहार !

' हृदयाधार ! यौवनसार ! प्रणयापारपारावार !।सुम० ।।

जलदश्यामधार ! सुधाम! कुसुमललाम चम्पकदाम ।।सुम० ।।

अयिभुवनेश ! मानववेश ! रमयरमेश ! मां रशिकेशा।।सुम०।।[1]

प्रस्तुत गीत में नर्तकियाँ गीत के माध्यम से शिवा जी के गुणों का वर्णन करती हैं।

सोहिनी राग :-

' पृथ्वीराज की बहन मुगल दरबार त्याग कर राणाप्रताप के शिविर में आती है। वहाँ पर प्रताप सिंह के पुत्र से उसका प्रेम हो जाता है, लेकिन विषम परिस्थिति के कारण उसे विनोद प्राप्त नहीं होता है। वह युवराज के मिलन हेतु सखियों से प्रार्थना करती है-

- -

1• छत्रपति साम्राज्यम् -पृ० 172-128

उदाहरण - अयि सखि ! मा कुरूमयिपरिहासम् ।

सपदि तमानय नयनविलासम् ।।

तन्मुखपङ्कजलोकनलोलम्, किमयि ! न पश्यसि लोचनदोलम् ।। 1 अयि0।।

प्रत्यादेशपरम्मपि दयितम्, कामयते मुषितहृदयमयि ! तम् ।। 2 अयि0।।

कथमपि कुरू सखि ! सत्वररचनम्, श्रावय परमं तन्मृदुवचनम् ।। 3 अयि0।।

द्रुतमुपयाहि प्रियतमसदनम्, निपतति मयि सखि ! निर्घृणनिधनम्।। 4 अयि0।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का प्रयोग किया गया है जिसमें राजपुत्री, युवराज के मिलन के लिए व्याकुल है।

इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में उपर्युक्त रागों के अतिरिक्त मालकोशराग , मल्हारराग, केदार राग, भीमपलास राग, भैरवी राग अनेक प्रकार के रागों के माध्यम से गीतों को निबद्ध किया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक कविहृदय के साथ-साथ संगीत के भी ज्ञाता हैं।

उनके संगीत शास्त्रीय ज्ञान के सम्बन्ध में यह विशेष अवधेय है कि उन्हें संगीत शास्त्र का ज्ञान ही नहीं अपितु उस क्षेत्र में उनका उच्च कोटिका व्यावहारिक ज्ञान भी है यही कारण है कि जहाँ संगीत शास्त्रज्ञ अन्य महाकवियों की कृतियों में संगीत शास्त्र के तत्वों का समुल्लेख हुआ है वहीं कविवर याज्ञिक की कृतियों में संगीत शास्त्र का व्यावहारिक प्रयोग हुआ है। उन्होंनें समुचित देशकाल में प्रयुक्त होने वाले रागों को यथोचित सन्निविष्ट कर अपने नाटकों को विधिवत् अलंकृत

---

1. प्रतापविजयम् - पृ0 123

किया है , यह नाटकों की मौलिक विशेषता है। वस्तुतः इन गीतों के निबन्धन के समय याज्ञिक जी एक नाटककार की स्थिति से हटकर एक शुद्ध गीतकार के रूपमें सामने आ जाते हैं और गीत-रचना में वे पूरी तरह खरे उतरते हैं। उनकी शैली गीतगोविन्दकार की ही है, जिसमें राग, ताल, ध्रुवा, सुन्दर समासबद्ध पदशय्या के प्रयोग इत्यादि गुण सुचारू रूप से विद्यमान हैं। ये गीत निश्चित रूप से इन नाटकों की रसवत्ता कलात्मकता एवं प्रभावोत्पदकता में वृद्धि करते हैं।

कविवर श्री मूलशंकर याज्ञिक की अलौकिक प्रतिभा, विलक्षण विद्वत्ता एवं संगीत शास्त्रीय अभिज्ञता ने उनके नाटकरत्नों को सहृदयों के लिए अत्यधिक आह्लादक रूप में उपन्यस्त किया है ।

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

सप्तम अध्याय

नाटक त्रयी का सांस्कृतिक अध्ययन
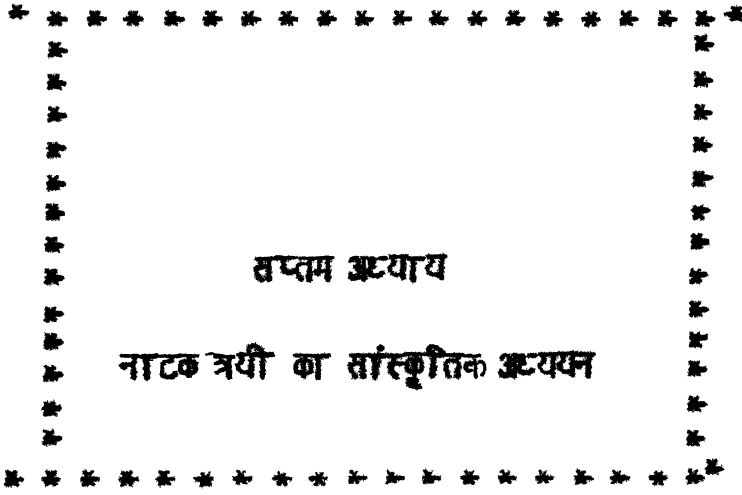
नाटकत्रयी का सांस्कृतिक अध्ययन

भारतीय संस्कृति का चित्रण

संस्कृति आत्मा का धर्म है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र के आन्तरिक मूल्यों को स्थापित करती है। देश-विशेष की अपनी एक संस्कृति होती है। भारत एक देश है, यहाँ के लोगों की अपनी एक संस्कृति है। संस्कृत और संस्कृति का अपूर्व समन्वय है। संस्कृत-साहित्य का क्षेत्र बड़ा विशाल है, जिसमें भारतीय संस्कृति अन्तर्निहित है। संस्कृत-साहित्य, भारतीय-संस्कृति का विश्वकोष है। रामायण महाभारत आदि काव्यों में भारतीय-संस्कृति का अनुपम रूप दिखलाई पड़ता है। डा० ए०एन० ह्वाइट हेड ने कहा है कि संस्कृति विचार तथा सुन्दरता एवं मिश्रित व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत वे ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता के सिद्धान्त, प्रथाएँ आदि आते हैं।

कविवर श्री मूल शंकर याज्ञिक जी की इस नाटकत्रयी का आलोचनात्मक अध्ययन करने के प्रसंग में उनका साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत कर दिया गया है। इस अध्ययन के अतिरिक्त इन नाटकों के सांस्कृतिक पक्ष पर भी दृष्टि डालना अप्रासंगिक न होगा। कविवर याज्ञिक जी के नाटक समग्ररूप से भारतीय संस्कृति की धारा में निमज्जित हैं। इनका समग्र परिवेश भारतीय संस्कृति ही है। इसलिए उनके नाटकों में संस्कृति का जो भी स्वरूप दिखाई पड़ता है, वह भारत भूमि की पवित्रगन्ध से परिव्याप्त है। संस्कृति के इन कतिपय तत्वों का हम यहाँ एक विहंगम दृष्टि से पर्यालोचन करते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि सभी वर्णों केसहयोग से ही किसी राष्ट्र की उन्नति हो सकती है। क्षत्रिय वर्ग कोदेश की रक्षा करने के लिए दर्शाया गया है जैसा कि महाराणाप्रताप सिंह ने देश की रक्षा के लिए अपने क्षत्रिय धर्म को निभाया है। इसी प्रकार याज्ञिक जी ने अपने एक अन्य नाटक "छत्रपतिसाम्राज्यम्" में भी वर्णव्यवस्था का वर्णन किया है, इसमें जब शिवराज,गुरू-रामदास से कहते हैं कि ब्राह्मणों की शक्ति से युक्त होकर क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती है- तो गुरू रामदास कहते है-

> वत्स ! यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च समीची चरतस्तत्रैक साम्राज्यश्रीर्विलसति। अतः
> ये क्षमा स्वतपसा दुरात्मनां निग्रहेऽपि च सतामनुग्रहे ।
> ब्रह्मवर्चसिन आत्मयाजिनस्तान्सभाजय सदा स्वगुप्तये ।।[1]

अर्थात् गुरूरामदास कहते हैं कि जहाँ ब्राह्मणों और क्षत्रियों की बुद्धि एवं शक्ति का सहयोग होता है, वहीं साम्राज्य लक्ष्मी निवास करती हैं। इसलिए जो तपस्या के बल से दुरात्मा मनुष्यों का निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करने में समर्थ है तथा जो ब्रह्म तेज से प्रकाशमान है, अपनी रक्षा हेतु सदा उनका समादर करो।

इस प्रकार गुरूरामदास के कथन से वर्ण व्यवस्था की स्पष्ट व्यंजना दृष्टिगोचर होती है। यहाँ पर छत्रपति शिवाजी को क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए राष्ट्र रक्षा के उद्धार के लिए उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी वर्ण व्यवस्था का चित्रण मिलता है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए क्षत्रिय धर्म के रक्षक नायकों को अपने नाटकों का नायक बनाकर वर्ण व्यवस्था का सुन्दर चित्रण किया है।

---

1. छत्रपतिसाम्राज्यम् 4/6

2•आश्रमव्यवस्था :-

आश्रम व्यवस्था का लक्ष्य व्यक्ति के जीवन का सर्वांगीण विकास करके सामाजिक आदर्शों की प्राप्ति करना था। जीवन विविधाताओं से भरा हुआ है। मानव जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। उसकी गतिशीलता में जगत् की वास्तविक और जीवन की क्रियाशीलता, दोनों का समन्वित प्रवाह है,अत: इस प्रवाह को लक्ष्य तक पहुँचा देना ही आश्रम व्यवस्था का सही कार्य है।आश्रम व्यवस्था को चार (ब्रह्मचर्य; गृहस्थ, वानप्रस्थ, एवं सन्यास) भागों में बाँटा गया है। याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में आश्रम व्यवस्था का नाम-मात्र का उल्लेख किया है।

छत्रपति साम्राज्यम् नाटक में सन्यास नामक आश्रम का वर्णन मिलता है। जिसमें दण्ड एवं कपाल सन्यासी के दो महत्त्व पूर्ण चिह्न बताये गये हैं-

त्वय्येव वीराग्रसरे समग्रां विन्यस्य राष्ट्रोद्धरणप्रवृत्तिम् ।
अकिंचनो दण्डकपालिपाणि: परिव्राजिष्यामि परात्मनिष्ठ ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में शिवराज नेताजी, से कहते हैं कि समस्त राष्ट्र के उद्धार का कार्य, वीराग्रणी तुम्हारे ही उपर छोड़कर मैं सर्वशक्तिमान् में निष्ठा भाव रखकर दण्ड और कपाल ले सन्यासी बनकर विचरण करूँगा। उपर्युक्त उदाहरण में उस समय का वर्णन किया गया है, जब शिवराज साधन रहित होने पर नेता जी के साथ दु:ख व्यक्त करते हैं, लेकिन नेताजी जी उन्हें उत्साहित करते हैं और कहते हैं कि धर्मराज्य की स्थापना के लिए कृपाण धारण करने वाले आप के लिए यह विरक्ति अनुचित है। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में सन्यास आश्रम परिलक्षित होता है।

1• छत्रपति साम्राज्यम् 2/5

याज्ञिक जी के तीनों नाटकों में गृहस्थ आश्रम का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है लेकिन ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रम काप्राय: अभाव सा दिखाई पड़ता है।

3· पुरूषार्थचतुष्टय :-

यह भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस सिद्धान्त में मनुष्य की समस्त इच्छाओं , आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों को चार भागों में बाँटा गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये जीवन के परम लक्ष्य हैं किन्तु इसे विरले ही व्यक्ति प्राप्त कर सके हैं। याज्ञिक जी के नाटकों में यत्र-तत्र धर्म अर्थ,काम,मोक्ष का चित्रण मिलता है क्योंकि याज्ञिक जी के नाटकों में कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। याज्ञिक जी ने प्रतापविजयम् नाटक में काम एवं अर्थ से युक्त राणप्रतापसिंह को दर्शाया है-

तेजस्विन: क्षत्रगुणे प्रतिष्ठिता न चार्थकामापहतात्मविक्रमा: ।
प्राणान्त कष्टेऽप्यचला दृढव्रता नैवाद्रियन्तेऽन्यनरेन्द्रशासनम् ।।[1]

अर्थात् तेजस्वी, क्षत्रियोचित गुण शौर्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले अर्थ और काम के द्वारा अपने पराक्रम को नष्ट न करने वाले तथा प्राणान्तिक कष्ट उपस्थित हो जाने पर भी अविचल रहने वाले दृढव्रती राजा दूसरे राजा के शासन का आदर नहीं करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में पुरूषार्थ के दो गुण अर्थ एवं काम का चित्रण किया गया है। याज्ञिक जी ने छत्रपतिसाम्राज्य में धर्म एवं

1· प्रताप विजयम् 1/10

अर्थ गुण नामक दो पुरूषार्थ का चित्रण किया है जैसे जब गुरूरामदास शिवाजी से कहते हैं कि व्यायाम द्वारा अपने शरीर में एकत्र कर विद्या, कला, दण्ड, नीति आदि में दक्ष हो कर ये राष्ट्रभक्ति से युक्त धर्म एवं अर्थ में भलीभाँति परीक्षित होकर भावी समर मे तुम्हारे सहायक होंगे इस प्रकार यहाँ पर धर्म एवं अर्थ नामक दो पुरूषार्थ के गुण का वर्णन किया गया है। छत्रपतिसाम्राज्यम् में एक अन्य स्थान पर याज्ञिक जी ने परात्मनिष्ठ शब्द का प्रयोग कर मोक्ष मार्ग का अनुशरण किया है। इस प्रकार याज्ञिक जी ने चारों प्रकार के पुरूषार्थ का प्रयोग किया है।

4. राष्ट्र-भक्ति :-

राष्ट्रभक्ति का अर्थ है राष्ट्र की अस्तित्व रक्षा के लिए प्रबलनिष्ठा। जिस प्रकारपुत्र अपनी माता की रक्षा करता है उसी प्रकार प्रत्येक भारतवासी को अपनी मातृभूमि की रक्षा करनी चाहिए। याज्ञिक जी के तीनों नाटकों राष्ट्र - भक्ति से पूर्णतया परिपूर्ण है। इन तीनों नाटकों के नायकों ने स्वराष्ट्र भक्ति के लिए अनेक कष्टों को सहते हुए अपने राष्ट्र की रक्षा की थी।

याज्ञिक जी ने "छत्रपतिसाम्राज्यम्" नाटक में राष्ट्रभक्ति के उदाहरण हेतु गुरूरामदास और शिवाजी के वात-विमर्श को उद्धृत किया है। जब शिवराज गुरूरामदास को देखकर कहते हैं कि आप के अनुग्रह से मेरा मोह अन्धकार समाप्त हुआ है, एवं साम्राज्य स्थापना का नया उत्साह आया है तो गुरू रामदास कहते है कि -

वत्स ! तव सहाय्यार्थं प्रतिमठं मया विनीयन्ते राष्ट्रभाव भाविता: शतशो युवगणा: । तदिमे -

व्यायामयोगोपयिताङ्गसत्त्वा, विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिता: ।

राष्ट्रभक्ता उपधाविशोधिता, भवन्तु ते भावि रणे सहाया:।।[1]

अर्थात् गुरू रामदास कहते हैं कि पुत्र ! तुम्हारी सहायता के लिए मैं प्रत्येक मठ में राष्ट्रीय भावना का समावेश कर रहा हूँ। अत: ये -

व्यायामद्वारा अपने शरीर में शक्ति इकट्ठा कर विद्याकला दण्डनीति आदि में दक्ष होकर राष्ट्रभक्ति से युक्त धर्म एवं अर्थ में भलीभाँति परीक्षित होकर भावी समर में तुम्हारे सहायक होंगे। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में गुरू रामदास द्वारा शिवराज को समझाते हुए राष्ट्र भक्ति की स्पष्ट रूप से व्यंजना की गयी है तथा राष्ट्र भक्ति का स्वरूप बताया गया है।

इसी प्रकार याज्ञिक जी ने "प्रतापविजयम्" नाटक में राष्ट्र भक्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है -

प्राप्नोतु राष्ट्रं त्वपिराद्विनाशं कुलं समग्रं लयमेतु सद्य ।

सहस्रधाशु प्रविदीर्यतां वपु: , स्वातन्त्र्यमेकं शरणं परं मे ।।[2]

अर्थात् क्षणभर में राष्ट्र नष्ट हो जाय, समस्त कुल को शीघ्र ही लय कर दो, इस शरीर को चाहो तो अभी भी हजारों टुकड़ों में कर डालो, मेरे लिए एक मात्र स्वतन्त्रता ही शरण है। इस प्रकार प्रताप सिंह के कथन से स्वतन्त्रता प्राप्ति को बलवती प्रेरणा दी जा रही है। जो उस काल के अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध चलने वाले स्वतन्त्रता संग्राम के लिए नितान्त उपर्युक्त थी।

- -

1. छत्रपति साम्राज्यम् 4/5

2. प्रताप विजयम् 2/2।

5• अतिथि सत्कार :-

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष अतिथि सत्कार भी है। जिसमें आने वाले अतिथि के लिए सम्मान प्रदर्शित किया जाता है। याज्ञिक जी के नाटकों में आतिथ्य सत्कार का अनेक स्थानों पर चित्रण किया गया है। याज्ञिक जी ने "प्रतापविजयम्" नाटक में मुगलसेनापति मानसिंह के आने पर महाराणा प्रताप सिंह द्वारा किये गये आतिथ्य सत्कार का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है। सभा भवन में राणाप्रताप सिंह पहुँच कर कहते हैं कि आतिथ्य सत्कार द्वारा अतिथि विशेष कुमारमान सिंह का स्वागत होना चाहिए। यह क्षत्रिय वीर बहुमूल्य उपचारों द्वारा स्वागत योग्य है,और वे उच्च कुल के अनुरूप सत्कार क्रिया द्वारा स्वागत करते हैं। अथ खल्वातिथ्यक्रियया सभाजीनयोऽतिथि विशेष: कुमारोमानसिंह:। सम्भावयैनं क्षत्रवीरं माहार्होपचारै:। अभिजनानुरूपसत्क्रियया परितुष्टस्यास्तु।[2]

इस प्रकार प्रतापसिंह द्वारा मानसिंह का सम्मान पूर्वक आतिथ्य सत्कार किया गया है। इसी प्रकार छत्रपति साम्राज्यम् एवं संयोगितास्वयंवरम् में भी आतिथ्य सत्कार का चित्रण क्रिया गया है।

राजव्यवस्था

किसी राष्ट्र की व्यवस्था को सुदृढ बनाये रखने के लिए शासक को वहाँ की जनता के प्रति आदर भाव रखना चाहिए। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अच्छा सैन्य संगठन होना चाहिए, एक देश को दूसरे देश की स्थिति को जाननेके लिए

- -

2• प्रतापविजय पृ0 8,9

गुप्तचर आदि की व्यवस्था करनी चाहिए, इस प्रकार राष्ट्र रक्षा के लिए कूटनीति सैन्यसंगठन, गुप्तचर व्यवस्था अच्छे अस्त्रशस्त्र आदि की ठीक-ठीक व्यवस्था करनी चाहिए। याज्ञिक जी ने प्रतापविजयम् नाटक में राजव्यवस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि राष्ट्र की सम्पदाएँ पुरवासियों के अनुराग पर निर्भर करती हैं-पौरजनानुरागायन्ता हि राष्ट्र सम्पदः।[1] अर्थात् प्रजा की सन्तुष्टि ही राज व्यवस्था है। छत्रपतिसाम्राज्यम् में भी राजव्यवस्था का चित्रण किया गया है। गुरुरामदास शिवराज से कहते हैं कि तुम्हें साम्राज्य की समृद्धि के लिए चारों वर्णों और निषादों को प्रयास करके प्रसन्न रखना चाहिए, जिस प्रकार अविकलेन्द्रिय पुरुष व्यवहार की सफलता के लिए संसार में समर्थ होता है उसी प्रकार नृपति पाँचों वर्णों के संग्रह द्वारा साम्राज्य शक्ति के लाभ हेतु सौभाग्य की कल्पना कर सकता है-

साम्राज्यसमृद्धये त्वया प्रयत्नेनानुरञ्जनीया निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः यतः -

यथाऽत्र लोकव्यवहारसिद्धये, भवेत्समर्थोऽविकलेन्द्रियः पुमान् ।
तथा नृपः पञ्चजनोपसंग्रहात्, साम्राज्यसौभाग्यफलाय कल्पते ।।[2]

इस प्रकार राजव्यवस्था के लिए राज क्षेत्र के सभी निवासियों का सहयोग लेना श्रेयस्कर बतलाया गया है।

---

1. प्रताप विजयम् पृ0 79

2. छत्रपतिसाम्राज्यम् 4/7

कूटनीति एवं गुप्तचर व्यवस्था

राजव्यवस्था को सुचारू रूप से देखने के लिए शासक को कूटनीतिज्ञ होना चाहिए। क्योंकि स्वराष्ट्र की रक्षा के लिए कूटनीति का ज्ञान आवश्यक है। गुप्तचर व्यवस्था सदा से राजव्यवस्था का पूर्ण अंग रही है। जिसके माध्यम से एक देश से दूसरे देश को गुप्त रूप से समाचारों का आदान-प्रदान होता है एवं गुप्तचरों के माध्यम से ही दूसरे देश की स्थिति का पता चलता था। याज्ञिक जी के नाटकों में कूटनीति एवं गुप्तचर व्यवस्था का अनेक स्थानों पर चित्रण किया गया है। प्रतापविजय नाटक में राणाप्रताप द्वारा नियुक्त गुप्तचर [गूढ़चर] आकर अकबर के द्वारा लिए गये निर्णय को प्रताप सिंह से बताता है- देव ! शीघ्र ही अजमेर नगर पहुँचकर उसके बाद स्वयं मेवाड़ प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए आखेट के बहाने से सार्वभौम [अकबर] यहाँ उपस्थित होगा। उस समय मानसिंह के सेनापतित्व में मुगल सेना का शिविर गोगुन्दे ही होगा, ऐसा सार्वभौम का मन्त्रणा द्वारा निर्णय हुआ-

गूढप्रणिधिः -[प्रविश्य] विजयतां देवः। अचिरेणाजमेरनगरमुपेत्य ततः स्वयं मेवाड़ प्रदेशमाक्रमितुं मृगयाव्यपदेशानात्रोपस्थास्यति सार्वभौमः। तावन्य मानसिंहाधिष्ठितस्य मोगलदलस्य गोगुन्दग्राम एव निवेश स्थान भविष्यतीति मन्त्र-निर्णयः सार्वभौमस्य।[1] एक अन्य स्थान पर अकबर द्वारा नियुक्त गुप्तचर आकर

---

1. प्रतापविजयम् पृ0 4।

सूचना देता है कि पर्वत प्रदेश के भीतर से निकलकर प्रतापसिंह ने ढूढने वाली पैदल मुगल सेना को नष्ट कर दिया है। पुनः अकबर द्वारा राणाप्रताप सिंह की सैन्य शक्ति का पता लगाने के लिए कहा जाता है, यह जानने के लिए गुप्तचर चला जाता है-

चरः -अकस्माच्छैलाभ्यन्तराद्वि निर्गतेन प्रतापेन व्यापादितं तदन्वेषणपरं पदाति-दलम्। अथ कियत्परिणामोऽस्य युद्धतन्नाहः ।[1]

इसी प्रकार श्री याज्ञिक जी ने छत्रपति साम्राज्यम् में गुप्तचर के कार्यो का चित्रण किया है। गुप्तचर आकर सूचना देता है कि वीजापुर नरेश का पापात्मा सेनापति उनकी सभा में सह्याद्रि के मूषक को पकड़कर शीघ्रातिशीघ्र उसके सामने प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा कर, मार्ग में भवानी की मूर्ति को खण्ड-खण्ड करके बारह सहस्र का दल लेकर पहुँच रहा है। यह सुनकर शिवराज और नेताजी क्रोधाभिभूत होते हैं। नेता जी तुरन्त वीजापुर नरेश को पकड़ने के लिए उद्यत होते हैं लेकिन शिवराज कहते हैं कि गुप्तचरों को शत्रुओं के विषय में पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने दो पदाति, अश्वरोही आदि सेना विभागों के अध्यक्ष उन्हें तैयार करें।[2]

इसी प्रकार संयोगिता-स्वयंवरम् नाटक में भी गुप्चर व्यवस्था का वर्णन मिलता है। याज्ञिक जी ने संयोगिता-स्वयंवरम् में एक स्थान पर वर्णन किया है कि पृथ्वीराज द्वारा नियुक्त गुप्तचरों से दो समाचार प्राप्त होते हैं पहला

- -

1. प्रताप विजयम् पृ0 50

2. छत्रपति साम्राज्यम् पृ0 75-76

यह कि संयोगिता को आप '{पृथ्वीराज} के प्रति अनुरक्त जानकर जयचन्द ने उसे गंगातटपर स्थित प्रासाद में आजीवन रहने का दण्ड दिया है और दूसरा समाचार यह है कि मुहम्मद गोरी ने पुन: आक्रमण करने की योजना बना ली है।[1] इस प्रकार इन नाटकों में गुप्तचर के कार्यों का अनेकों स्थानों पर निरूपण किया गया है।

याज्ञिक जी ने कूटनीति का बड़ा सुन्दरउदाहरण प्रस्तुत किया है- जब मुगल सम्राट् के पास से आये हुए दूत को बहुमूल्य रत्न आदि देकर कूटनीति द्वारा शिवाजी उसके {मुगलसम्राट्} कार्यकलापों को जान कर सेनापति की योजना का भी सही-सही ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।[2]

कूटनीति का एक सुन्दर उदाहरण यह है - जब शिवराज अपनी कूट-नीति से द्वारपाल को भुलावा देकर मिठाई के टोकरी में बैठकर पुत्र सहित कैद से बाहर निकल जाते हैं।[3] इस प्रकार इन नाटकों में कूटनीति एवं गुप्तचर व्यवस्था का अनेक स्थानों पर चित्रण किया गया है।

सैन्य व्यवस्था

किसी भी राज्य को सुदृढ रखने के लिए सैन्य व्यवस्था का गठन अनिवार्य होता है। सैन्य संगठन को सभी अस्त्र-शस्त्र से पूर्णत: सम्पन्न रहना चाहिए। याज्ञिक जी ने इन नाटकों में सैन्य व्यवस्था का चित्रण किया है। याज्ञिक जी ने सैन्य व्यवस्था के विषय में लिखा है कि युद्ध सम्बन्धी सारी व्यवस्था सेनानायक के अधीन होनी चाहिए। क्योंकि युद्ध के लिए प्रस्थान, व्यूहरचना, आक्रमण शत्रु को रोकना, युद्धारम्भ, युद्ध में रत होना आदि समस्त क्रियायें सेनानायक अपनी सैन्य शक्ति के अनुसार निर्दिष्ट करता है-

सन्दर्भ 1. संयोगिता स्वयंवरम् पृ0 36 2. छत्रपतिसाम्राज्यम् पृ0 84

सेनान्यधीनैव सर्वा समरप्रवृत्ति: । यत: -

यनासने व्यूहविधानमाक्रमं, परावरोधं समरावतारम् ।

युद्धे प्रवृत्तिं विरतिं तत: पुनर्नेता स्ववीर्यानुगुणंचिकीर्षति।।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में सैन्य शक्ति को निरूपित किया गया है।

याज्ञिक जी प्रतापविजयम् नाटक में सैन्य शक्ति की अनिवार्यता को बताते हुए उनके युद्ध में प्रयोग आनेवाले अस्त्रों एवं शस्त्रों का वर्णन करते हैं-

सुतीक्ष्णभल्लासिधनुर्धृतांवरा, विशालतूणीपरिबद्धपार्श्वा: ।

शौर्यातिरेकारुणितोग्रनेत्रा:, प्रयान्तु मे नद्धपदातिसंघा: ।।[2]

अर्थात् अत्यन्त तीक्ष्ण भाले, तलवार तथा धनुष धारण करने वालों में श्रेष्ठ, बगल में विशाल तरकस बाँधे हुए वीरता के अतिरेक के कारण भयंकर अरूणनेत्र वाले मेरे पैदल सैनिकों के दल प्रयाण करें। इसी प्रकार संयोगिता स्वयंवरम् में भी सैन्य व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इस प्रकार तीनों नाटकों में राजव्यवस्था के लिए सुदृढ सैन्य शक्ति को निरूपित किया गया है।

1• छत्रपति साम्राज्यम् 6/9

2• प्रताप विजयम् 8/9

कलात्मक विकास

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का एक मुख्य भाग होता है-उसका कलात्मक विकास। कला के अन्तर्गत अनेक प्रकार की कलाएँ आती हैं जैसे नृत्य कला, चित्रकला, वादन कला, गायन कला आदि। याज्ञिक जी के इन नाटकों से वादन, गायन एवं नृत्य कला का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है इन नाटकों में समय-समय पर आवश्यकतानुसार राग, ताल, लय आदि से सुसम्बद्ध गीत गाये गये हैं शास्त्रीय संगीत में बद्ध इन गीतों के प्रयोग से संगीत कला के अभ्युदय का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें अनेक स्थानों पर नृत्य एवं गायन का साथ-साथ वर्णन किया गया है। वाद्य कला का अनेक उत्सवों पर प्रयोग किया गया है। संयोगिता स्वयंवरम् का एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें नृत्य, वाद्य एवं गायन तीनों का साथ-साथ चित्रण किया गया है -

वीणाया मधुरस्वनैरनुगतां हावैर्मनोहारिभि -

गायन्त्यो ललिताक्षराङ्कितपदां भावान्वितां गीतिकाम्।

तिष्ठन्त्यो मुहुरन्तरा युवतयस्तानप्रदानादृता,

मुग्धालीकरतालपालितलया नृत्यन्ति लीलालसम् ।।[1]

अर्थात् वीणा के मधुर स्वरों से अनुगत, मनोहर हाव भाव से युक्त, ललित अक्षरों से रचित पदों वाली, भावमयी गीति को गाती हुई और बीच-बीच में बार-बार तान देने की इच्छा से रुक जाती हुई, मुग्धा सखियों के हाथ की तालियों से लय

---

1. संयोगिता स्वयंवरम् 2/10

का पालन करने वाली युवतियाँ खेल में अलसाई हुई होकर नृत्य कर रही हैं।

इसी प्रकार प्रतापविजयम् एवं छत्रपतिसाम्राज्यम् में भी नृत्य, गीत, वाद्य आदि कलात्मक क्रियाओं का बहुतायत में प्रयोग किया गया है।

रीतियाँ एवं प्रथाएँ

प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति में अपनी अलग-अलग रीतियाँ एवं प्रथायें होती हैं, जो कि वहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता को दर्शाती हैं। याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में स्थान-स्थान पर भारतीय जीवन में परिनिष्ठित रीतियों एवं प्रथाओं का स्पष्ट वर्णन किया है। याज्ञिक जी ने संयोगिता स्वयंवरम् में वसन्त पूजा, कामपूजा आदि का वर्णन किया है। यह वर्णन उस समय का है जब संयोगिता अपने स्वयंवर के विषय में जानकर दुःखी है, उसके दुःख के कारण को जानने के लिए वसन्तोत्सव का आयोजन किया गया है जिसमें उसकी सभीसखियाँ साथ है, वे वसन्तपूजा के लिए जाती हैं वे वहाँ जाकर कामदेव की अराधना करती हैं"वसन्त-पूजार्थमुपेष्यति सवयोभिरेव सखीभिराराध्यो भगवान: कुसुमायुध:।"[1] याज्ञिक जी के संयोगितास्वयंवरम् नाटक के नाम से ज्ञात होता है कि उस समय स्वयंवर की प्रथा थी जिसमें युवतियाँ स्वयं अपने अभीष्ट वर को चुनती थीं।

याज्ञिक जी के नाटकों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय जौहर एवं सती प्रथा का भी प्रचलन था, क्योंकि अनेक स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है। प्रतापविजयम् नाटक में एक स्थान पर जौहर प्रथा का बड़ा ही रोमहर्षक वर्णन मिलता है, जिसमें अकबर का दरबारी कवि पृथ्वीराज कहता है -

- -

1. संयोगिता स्वयंवरम् पृ0 17

सम्राट् क्षत्रिय का तेज सर्वथा ही निर्बाध गति से बढ़ा करता है। स्वयं आप ने देखा है कि हमारे सैकड़ों सैनिकों को मार कर जब सूर्य द्वारपाल स्वर्गसिधार गये, तब अपने सोलहवर्षीय पुत्र को आगे करके युद्ध स्थल में भयंकर तलवार खींचे हुए कराल हाथों वाली उस चण्डी ने शीघ्र ही शत्रुसैनिक के शिर को काटकर उनके धड़ से युद्धभूमि को व्याप्त कर दिया, इस प्रकार वह अपने प्रचण्ड क्रोध से प्रज्ज्वलित अग्नि के समान शोभित हो रही थी -

पृथ्वीराज: - सार्वभौम ! सर्वथाऽप्रतिहतप्रसरं हि क्षात्रं मह: ।

प्रत्यक्षकृतमेव ···· ·····सपद्यवतीर्णा समराङ्गणाग्रम् ।

आकृष्ट भीमकृपाणकरालपाणिश्छिन्नोत्तमाङ्गरिपुसैन्य कबन्धकीर्णम् ।

तूर्णं विधाय समराङ्गणमेव चण्डी, चण्डप्रकोप हुतभुग्ज्वलिता विरेजे ।।[1]

इस उदाहरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस समय जौहर प्रथा का प्रचलन था, याज्ञिक जी ने क्षत्राणियों के आदर्श को भी दर्शाया है वे पतिव्रता ,शौर्य युक्त एवं उज्ज्वल चरित वाली थी। वे अपने देश की रक्षा एवं स्वयं के सतीत्व की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती थी। अपने पुत्रों को राष्ट्र भक्ति के गीतों के माध्यम से राष्ट्र रक्षा की शिक्षा देती थी, जैसा कि छत्रपति साम्राज्यम् में मिलता है कि शिवाजी की माता जीजाबाई शिवाजी को इसी प्रकार राष्ट्र रक्षा का ज्ञान करायी थी। इस प्रकार याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में तत्कालीन रीतियों एवं प्रथाओं का निरूपण किया है।

---

1. प्रतापविजयम् 3/9

क्रीड़ाएँ

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में अनेक स्थानों पर क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। संयोगिता स्वयंवरम् में वसन्त क्रीड़ा का चित्रण मिलता है। वसन्तक्रीड़ा युवतियों द्वारा वसन्त काल में वासन्ती परिधान पुष्पादि धारण कर की जाने वाली क्रीड़ा है। वसन्त क्रीड़ा का उदाहरण अधोलिखित द्रष्टव्य है-

वासन्ती कलिकालग्न: करयुगे सुस्निग्धवेण्यां तथा,
कण्ठाग्रे नवमालिकासुमनसां हारं मनोहारिणम् ।
हस्ते ताम रसं शिरीष कुसुमं धृत्वा च ता: कर्णयो:,
खेलयन्त्यो नवयौवनास्तु दधते साक्षाद्वसन्तद्युतिम् ।।[1]

अर्थात् वासन्ती पुष्पों से युक्त वेणी को पहने हुए गले में नये नये पुष्पों के हार से मनोहर लग रही है। कुण्डल रूपी शिरीष के पुष्प को कान में धारण कर नव-यौवनाएँ साक्षात् वसन्त से खेल रही हैं। वसन्त क्रीड़ा के पश्चात् सभी सखियाँ श्रृंग क्रीड़ा करती हैं। श्रृंग क्रीड़ा श्रृंग जल से भरे हुए यन्त्रविशेष{पिचकारी} से खेल रही है। संयोगिता स्वयंवरम् में श्रृंग क्रीड़ा का उदाहरण अधोलिखित है-

परस्परं वर्णजलं सहेलं,
सुवर्ण श्रृङ्गैरभिषेचयन्त्य: ।
सायन्तनीं सूर्यमरीचियोगजां,
गतायुवत्य: शरदभ्र शोभाम् ।।[2]

1· संयोगिता स्वयंवरम् 2/3

2· संयोगिता स्वयंवरम् 2/4

अर्थात् सभी सखियाँ सुवर्णमय यंत्र (पिचकारी) से जल को एक दूसरे के ऊपर बिखेरती हुई उसी प्रकार शोभा पा रही है जिस प्रकार शरदकाल में सूर्य की सुनहरी किरणों के योग से सायं कालीन मेघ शोभा को प्राप्त करते हैं। यह क्रीड़ा रङ्ग से खेली जाने वाली होली की तरह है, इसी तरह कुङ्कुम के रज के प्रक्षेपण से ये युवतियाँ क्रीड़ा करती है संयोगिता सहित सभी सखियाँ कुङ्कुम रज को लेकर एक दूसरे के ऊपर बिखेरती हैं। इसी प्रकार कुन्दुक क्रीड़ा का भी वर्णन किया गया है जिसमें सभी सखियाँ फूलों को ही गेंद मानकर क्रीड़ा करती हैं। इस प्रकार संयोगितास्वयंवरम् नाटक में क्रीड़ा का बड़ा मनोरमवर्णन कियागया है। याज्ञिक जी ने प्रतापविजयम् नाटक में भी फूलों को गेंद बनाकर होने वाली क्रीड़ा का वर्णन किया है, जिसमें पर्वत प्रदेश की समतल भूमि में राजकन्याएँ फूलों की गेंद को बार-बार फेंक कर क्रीड़ा करतीहैं -

'मुहुर्मुहुरताडितं प्रोत साऽपोढ्यमानं कुसुमकन्दुकम् ।'[1]

इस प्रकार याज्ञिक जी ने तत्कालीन भारतीय संस्कृति को अपने नाटकों में स्थान देकर नाट्य परम्परा का पालन किया है। याज्ञिक जी भारतीय संस्कृति के पक्षपाती एवं प्रतिष्ठापी कवि हैं। इनके नाटकों में सर्वत्र भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्त्व परिलक्षित होते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि कविवर याज्ञिक जी के तीनों नाटक समग्ररूप से भारतीय संस्कृति में निमज्जित हैं।

- -

1. प्रतापविजयम् पृ0 8।

0 0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

अष्टम अध्याय

नाटकत्रयी का महत्त्व एवं स्थान
उपसंहार

नाटकत्रयी का महत्त्व एवं स्थान

श्री मूलशंकर याज्ञिक के नाटकों का संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपना अलग ही महत्त्व है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ मुस्लिम शासकों के तिरोभूत होने पर संस्कृत भाषा और उसके अध्ययन तथा साहित्य रचना के प्रति सम्पूर्ण दक्षिण भारत एवं उत्तर भारत में जो नया उत्साह आया उसमें नाटकों की रचना बहुत हुई। ये नाटक सम्भवतः संस्कृत विद्यालय के जिन गुरुओं या प्राध्यापकों द्वारा लिखे गये उसी संस्था में खेले भी गये। इन नाटकों की संख्या दो सौ से कम नहीं होगी। ये नाटक प्रायः पौराणिक-कथाओं, प्रेम प्रसंगों तथा प्रतीकों पर लिखे गये है या पुराने महाकाव्यों या महाकवियों को लेकर उनका नाटकीकरण किया गया है। जैसे कालिदास के नाटक 'मेघदूत' पर कई नाटक लिखे गये हैं। उनकी तुलना में श्री मूलशंकर याज्ञिक के नाटक अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। "प्रतापविजयम्" व छत्रपति साम्राज्यम् इन दोनों नाटकों में नाटककार के युग में चल रहे स्वातन्त्र्य आन्दोलन की छाप कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान है। इसलिए नाटककार ने इतिहास प्रसिद्ध वीर चरितों को अपने नाटक का नायक बनाया है। वह उनके माध्यम से स्वतन्त्रता की पूजा के लिए प्रेरणाप्रदान करता है। इस दृष्टि से ये नाटक श्रेष्ठ नाटकों में गिने जाने योग्य हैं।

संस्कृत साहित्य की प्राचीन नाटक परम्परा जिसमें भास, शूद्रक, कालिदास आदि नाटककार हुए, उस परम्परा की तुलना में प्रस्तुत नाटककार को स्थान तो नहीं मिल सकता जो उनकी कृतित्व के निकट पहुँच सके, क्योंकि वे नाटककार नाटक की कथावस्तु के विन्यास में बहुत सिद्ध हस्त थे। नाटक का प्राण कथावस्तु की पहचान और उसका ठीक-ठीक संयोजन ही होता है। मूलशंकर याज्ञिक जी में इसका अभाव है, इसलिए प्रताप-विजय और छत्रपतिसाम्राज्य में अंक तो नौ

एवं दस रखे हैं, पर कथा के मर्मस्पर्शी प्रसंगों को छोड़ दिया है। संयोगितास्वयंवरम् नाटक प्रणय का आख्यान होने के कारण उस परम्परा के निकट पहुँच गया है जिसमें "मालविकाग्निमित्रम्" आदि नाटकों की रचना हुई, लेकिन समानता कथावस्तु की कल्पना और प्रकार में ही है। भाषा,भाव और अलंकार में समानता कदापि नहीं की जा सकती है।

इन नाटकों में प्राय: वे सभी गुण विद्यमान हैं जो कि एक आदर्शनाटक में होने चाहिए, इन नाटकों मे याज्ञिक जीनेसंस्कृत-साहित्य की पुरातन परम्परा को सुरक्षित रखते हुए नवीन कथावस्तु एवं परिवेश में नाटक की रचना की है।इन नाटकों की रचना कर वस्तुत: संस्कृत नाट्य साहित्य के क्षेत्र में याज्ञिक जी ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। याज्ञिक जी द्वारा रचित नाटकों ने स्थान विशेष पर अनेक अलौकिक गुणों के कारण संस्कृत नाट्य साहित्य के क्षेत्र में अपना अद्वितीय स्थान बना लिया है। इन नाटकों के अनुशीलन से जहाँ पर हम पारम्परिक नाटकों जैसे रचना शिल्प एवं कला विधान को प्राप्त कर सकते हैं, वहीं पर हम आधुनिक ऐतिहासिक कथावस्तु एवं परिवेश के माध्यम से नवीन उद्भावनाओं के समीप पहुँच सकते हैं, जिसका ज्ञान हमें याज्ञिक जी द्वारा लिखित नाटकों से प्राप्त होता है। इस प्रकार याज्ञिक जी द्वारा लिखित नाटको के अध्ययन, अनुसंधान एवं अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार प्राचीन एवं मध्यकालीन समय में लिखे गये नाटकों का संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, उसी प्रकार याज्ञिक जी द्वारा प्रणीत आधुनिक नाटकों का महत्त्वपूर्ण

स्थान रहा है। इस प्रकार याज्ञिक जी द्वारा प्रणीत नाटक अपने आप में विशिष्ट है और यह विशिष्टता है उनका युग की पुकार के अनुरूप भारतीय स्वातन्त्र्य - संग्राम के मध्य, राष्ट्रभक्त वीरों के ऐतिहासिक चरितों को लेकर उनको नाट्य शिल्प में ढालकर प्रस्तुत करना। बीसवीं शताब्दी के इस काल में लिखे जाने के कारण ये नाटक संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

0 0 0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 00 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

उपसंहार

संस्कृत साहित्य के इतिहास में बीसवीं शती का समय एक अभूतपूर्व परिवर्तन का समय था, जिससे संस्कृत नाट्य साहित्य भी अछूता न रहा । बीसवीं शती के पूर्वकालीन कवियों ने प्रायः रामायण महाभारत आदि प्राचीन विषयों से कथावस्तु को लेकर काव्य,नाटक आदि की सर्जना की। इन रचनाओं में उनका दृष्टिकोण कुछ भिन्न परिलक्षित होता था, किन्तु उनके कथावस्तुओं पर रचना करना अपेक्षाकृत सरल था। परन्तु बीसवीं शताब्दी में संस्कृत नाटक, नायक नायिका के सौन्दर्य तथा प्रणय वर्णन, विहारवर्णन आदि परम्परागत वर्णनों तथा उपरिवर्णितइतिवृत्तों के मोहपाश से निकलकर राष्ट्र,राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय जीवन के सर्वश्रेष्ठ भाव प्रतिष्ठित होने लगे। इस समय के नाटकों में कविगण नायक-नायिका के संयोग एवं वियोग जैसे वर्णनों से हटकर समसामयिक समस्याओं की ओर अभिमुख हुए। हमारे भारत देश के वीर सपूतों के जीवन कृत्य पर नाटकों के कथावस्तु बने। यह तो समय की आवाज थी कि प्रत्येक भारतवासी स्वराष्ट्र को पराधीनता के पाश से मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष करें। संस्कृतसाहित्य के अनेक साहित्यकारों ने इस प्रकार की आवश्यकता को सुना और पहचाना। इन संस्कृत साहित्यकारों में से श्री मूलशंकर याज्ञिक जी भी एक हैं,जिन्होंने समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार आधुनिक नाटकों की रचना की। संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के परिवर्तन के लिए श्री याज्ञिक जी को विशेष योगदान का श्रेय दिया जा सकता है। जिन्होंने सर्वप्रथम पुरातन एवं पौराणिक विषय वस्तु को छोड़कर ऐतिहासिक कथावस्तु को अपनी नाट्यकृतियों को विषय बनाया,जो पुरातन एवं पौराणिक विषयों की अपेक्षा कठिन था।

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा रचित तीनों नाटक(संयोगितास्वयंवरम्, प्रतापविजयम् एवं छत्रपति साम्राज्यम्) विशुद्ध ऐतिहासिक हैं। इन नाटकों के कथावस्तुओं में श्री मूलशंकर याज्ञिक जी द्वारा वर्णित घटना क्रम के सम्बन्ध में भारतीय इतिहास कारों में किसी प्रकार का संशय या मत भेद नहीं है। इन नाटकों की कथावस्तु ,घटना एवं पात्रों की ऐतिहासिकता पर किसी प्रकार का विरोध नहीं किया जा सकता है। इन नाटकों के नायक महाराणा प्रताप सिंह छत्रपतिशिवाजी एवं पृथ्वीराज चौहान मध्यकालीन भारत के ऐसे वीर महापुरुष थे, जिन्होंने स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता हेतु सर्वस्व तिलाञ्जलि देकर भारतीय इतिहास में अपना नाम स्वर्णांकित कराया है।

छत्रपतिशिवाजी द्वारा स्वराष्ट्र की स्थापना का संकल्प लेना,क्रमशः एक के बाद एक दुर्ग विजित करना, यवन सेना:पतियों को मृत्युदण्ड देना,मुगलसम्राट् औरंगजेब द्वारा जयसिंह के माध्यम से कपटपूर्वक शिवाजी को दिल्ली में बुलाना एवं बन्दी बनाना,अपने बुद्धिचातुर्य से बन्दीगृह से शिवाजी का भाग निकलना तथा महाराष्ट्र पहुँचकर स्वतन्त्र स्वराज्य की स्थापना करना आदि सभी घटनाएँ इतिहास प्रसिद्ध हैं। इन्हें असत्य या काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है।

इसी प्रकार मेवाड़ाधिप महाराणाप्रतापसिंह के पास मुगलसम्राट् अकबर द्वारा अपने राजपूत सेनापति मानसिंह को भेजना, अपमानित मानसिंह द्वारा सेना के साथ आक्रमण करना, हल्दीघाटी नामक प्रसिद्ध युद्ध में झालामानसिंह द्वारा राणाप्रताप सिंह की रक्षा में अपना बलिदान करना, राणा प्रताप सिंह द्वारा मेवाड़ भूमि छोड़कर पर्वतों एवं वनों का आश्रय लेना, मुगल सैनिकों से संघर्ष करते

हुए सपरिवार वनों एवं पर्वतों में भटकना, अन्तत: विजय श्री की प्राप्ति कर मेवाड़ भूमि को प्राप्त करना आदि घटना क्रम भारतीय इतिहास में अमिट हैं। याज्ञिक जी ने "प्रतापविजयम्" नाटक की कथावस्तु लिखते समय उन इतिहास ग्रन्थों को उद्धृत किया है जिन पर यह कृति आधारित है।

1· आईने अकबरी

2· जहाँगीर के संस्करण

3· महामहोपाध्याय आ०वी० गौरीशंकर एच० ओझा का वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह: ।

4· श्री पाद शास्त्री का श्री महाराणाप्रतापसिंहचरितम् ।

श्री मूलशंकर याज्ञिक जी का तृतीय नाटक श्रृंगारिक होते हुए भी ऐतिहासिकता पर आधारित है। इसमें अन्तिम हिन्दू दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के प्रति जयचन्द की अतिलावण्यमयी पुत्री संयोगिता का अनुरक्त होना, जयचन्द एवं पृथ्वीराज की शत्रुता, कन्नौजनरेश जयचन्द द्वारा संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन तथा दिल्ली नरेश द्वारा संयोगिता को दिल्ली लाकर विवाह करना आदि ऐतिहासिक तथ्य वर्णित है । याज्ञिक जी ने अपनी प्रतिभा एवं विद्वता से कथावस्तु में स्थान विशेष पर परिवर्तन करके इस नाटक को अधिक रोचक एवं सरस बना दिया है । प्रस्तुत नाटक में संयोगिता को एक श्रेष्ठ नारी के रूप में चित्रित किया गया है, जो अपने प्रियतम् के लिए सभी कष्टों को सहन करने हेतु तैयार है। इस प्रकार श्री याज्ञिक जी ने उच्चकोटि की प्रणयकथा का चित्रण किया है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में पृथ्वीराज एवं जयचन्द की आजीवन

शत्रुता का वर्णन किया गया है किन्तु याज्ञिक जी ने नाटकीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नाटक के अन्त में जयचन्द का दिल्ली आना तथा पृथ्वीराज एवं संयोगिता को परिणय सूत्र में स्वीकार करना दिखाया है। जो भारतीय नाट्य परम्परा के अनुकूल है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि याज्ञिक जी के नाटकों की कथावस्तु इतिहासकारों द्वारा प्रमाणीकृत है अतः याज्ञिक जो सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन् कर्त्ता हैं। संस्कृत भाषा में ऐतिहासिक नाटकों के प्रणेता याज्ञिक जी के नाटकों को मात्र इतिहास का प्रस्तुतीकरण नहीं माना जा सकता है वरन् उनके माध्यम से कवि ने संस्कृत-साहित्य में राष्ट्रीय भावना की अजस्र धारा प्रवाहित की है।

संस्कृत-साहित्य के इतिहास में राष्ट्रियता से परिपूर्ण याज्ञिक जी के नाटकों का प्रमुख स्थान है। याज्ञिक जी ने देशप्रेमी नायकों एवं अन्य पात्रों का चित्रण बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है, इन्होंने इन कृतियों के माध्यम से समाज में जागृति लाने एवं प्रेरणा प्रदान करने का कार्य किया है। श्रीयाज्ञिक के नाटकों को राष्ट्रियता से पूर्ण इतिवृत्त को देखने से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने अपनी सर्जना शक्ति के द्वारा समयानुसार रचना करके अपने धर्म को निभाया है। श्री याज्ञिक जी ने एक नागरिक के रूप में स्वातन्त्र्य संग्राम में भीरचनाकार के कर्तव्य को किया है, क्योंकि रचनाकार का धर्म होता है कि अपने युग के समाज को साहित्य में सर्जित करना एवं समय के अनुकूल दिशानिर्देशन करना। राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य राष्ट्र को पराधीनता के बन्धन से मुक्त कराना है। श्री याज्ञिक जी द्वारा संस्कृत साहित्य के इतिहास में चित्रित राष्ट्रियता का यह बीज पश्चात्-वर्ती समय में और अधिकपल्लवित एवं विकसित हुआ।

सल्तनत कालीन एवं मुगलकालीन भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवनवृत्त पर आधारित कृतियों का होना कवि के राष्ट्रभक्ति के उद्देश्य को अवश्य ही परिलक्षित करता है। कवि द्वारा इस राष्ट्रज्योति को अनवरत् ज्योतिर्मान रखने में सर्वश्री मथुरा प्रसाद दीक्षित, पंचानन तर्क रत्न, हरिदास सिद्धान्तवागीश आदि का नाम महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक नाटकों के प्रणेता होते हुए भी याज्ञिक जी का कवित्व पक्ष ऐतिहासिकता से अभिभूत नहीं होने पाया है। वे एक सुकवि नाटककार तथा सरस गीतकार भी थे।

याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में रसों, भावों, अलंकारो , छन्दों आदि का बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। इन्होंने वीर रस एवं श्रृंगार रस को अपने नाटकों में अङ्गीरस के रूप में प्रयोग कर नाट्य धर्म को पूर्णत: निभाया है, नाटक में वीर एवं श्रृंगार रस मुख्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी करूण रौद्र, वीभत्स आदि रसों का स्थान विशेष पर वर्णन कर नाटक को अत्यन्त ही रमणीय बना दिया है। इन्होंने अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना आदि शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का स्थान विशेष पर प्रयोग कर अपने व्यक्तित्व को दर्शाया है। याज्ञिक जी के नाटकोंकेअध्ययन से ज्ञात होता है कि छन्दों में इनका सबसे प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडितरहा है। क्योंकि इन्होंने नान्दी के श्लोक एवं भरतवाक्यों में इसी छन्द का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त भी अनेक छन्दों का प्रयोग किया है।

याज्ञिक जी के व्यक्तित्व का एक विशिष्ट आयाम हैसंगीत। वस्तुत: संगीत एवं साहित्य का अटूट सम्बन्ध है क्योंकि संगीत, स्वर को शब्द तो साहित्य से ही मिलता है, और संगीत स्वर में निबद्ध होकर साहित्य अधिक मनोरम हो

जाता है। यह सत्य है कि किसी विचार भाव आदि को स्पष्ट एवं सरल बनाने के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी होता है।

पद्य को आकर्षणता, प्रभावशीलता एव मर्मस्पर्शिता प्रदान करने में संगीत का विशेष स्थान होता है। कविकर्म का सर्वाधिक आकांक्षित गुण उसकी स्वयं की अभिव्यक्ति होती है। उसका लक्ष्य किसी वस्तु घटना या अनुभूति का न केवल अक्षर ज्ञान उपस्थित करना होता है, बल्कि उसमें प्राणघोलकर अभिव्यन्जना को प्रेषणीय बनाना होता है। कवि की अभिव्यक्ति संगीत के राग से रंजित होकर प्रेषणीयता के अत्यन्त निकट पहुँच जाती है जिससे उसका भाव सौन्दर्य उदित हो उठता है। इस प्रकार कवि कल्पित संगीत श्रोताओं के मानसिक नेत्रों के सम्मुख मानो साक्षात् उपस्थित हो उठती है।

संगीत के विषय में पं0 ओंकारनाथ ठाकुर का कथन है कि शब्द पंगु है, स्वर ही रस का सर्जन कर्ता है, शब्द सामर्थ्य की समाप्ति के बाद भी स्वर का अस्तित्व बना रहता है।[1] सम्भवत: यह कथन किसी को अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत हो लेकिन किसी वाद्य यन्त्र पर बजाई गयी ध्वनि शब्द रहित स्वर लहरियों द्वारा शील, वेदना, करूण, श्रृंगार आदि भावों का ज्ञान स्वरों को सामर्थ्य प्रदान करता है। भारतीय चिन्तन में नाद को ब्रह्म के समान माना गया है जो आनन्द स्वरूप समस्त भूतों में चैतन्य एवं जगत् रूप में वर्णित है।[2]

1• काव्य संगीत पृ0 28 पं0 ओंकारनाथ ठाकुर

2• संगीत रत्नाकर 3/1

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर श्री मूलशंकर याज्ञिक जी ने अपने नाटकों में अनेक स्वरचित गीतों का समावेशकर उन्हें शोभायुक्त बनाया है। याज्ञिक जी को संगीत के राग एवं ताल के संयोजन में पूर्णत: सफलता प्राप्त हुई है। अत: उन्होंने स्वरचित गीतों को किस-किस राग एवं ताल में निबद्ध कर गाया बजाया जाय, यह भी गीत के पहले ही संकेत किया है। रागों का संकेत करते समय उन्होंने गीत के विषय एवं भाव का भी ध्यान दिया है एवं उसी के अनुरूप ही राग का नाम दिया है, उदाहरण "प्रतापविजयम्" नाटक के प्रथम अंक में ग्रीष्मऋतु का वर्णन करने वाले "सुखयति मधुररसा सरसी" इत्यादि गीत गाये हैं जिसे भीमपलास राग के रूप में संकेत किया गया है। इसी प्रकार अन्य नाटकों में भी गीत के पहले ही राग का संकेत मिलता है। इस कृत्य के द्वारा याज्ञिक जी की संगीत निपुणता का परिचय मिलता है। अत: नि:सन्देह याज्ञिक जी द्वारा संगीतबद्ध ये गीत रंगमंच पर नाटक के अभिनय होने पर राष्ट्रप्रेम के भावों को अत्यन्त सशक्तता से प्रकट करेंगे, जिससे दर्शकों को भी भावाभिभूत करेंगे। इस प्रकार याज्ञिक जी ने संस्कृत साहित्य में अपने नाटकों द्वारा विशिष्ट योगदान के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है।

इन्होंने इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों के कठिन कथावस्तु को साहित्यिक स्वरूप आरोपित कर, नाट्यशास्त्रियों, अलंकार शास्त्रियों द्वारा नाटक के लिए आवश्यक सभी तत्त्वों को धीरोदात्त, प्रतापी, उत्साही, स्वराष्ट्रपोषक एवं रक्षक तथा प्रख्यातवंशोत्पन्न, पाँच सन्धियों से युक्त, अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं से पूर्णत: निबद्ध कथावस्तु, विष्कम्भक, अंकावतारनान्दी आदि से अद्भुत नाटकों की रचना की है। याज्ञिक जी के कृतित्व का महत्त्व संस्कृत साहित्य में इसलिए बढ़ गया क्योंकि उनकी रचना ऐसे समय में हुई, जो संस्कृत भाषा का उत्कर्ष काल नहीं था।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में याज्ञिक जी द्वारा इस प्रकार के साहित्य काप्रणयन भारतीय जनमानस में प्रचलित उन धारणाओं पर कुठाराघात करेगा कि संस्कृत भाषा पुरातन एवं मृत भाषा है, यह कि संस्कृत भाषा में पुरातन काल में ही साहित्यिक सर्जना हुई है आधुनिक काल में नहीं। संस्कृत भाषा का विषय मात्र पौराणिक,काल्पनिक एवं प्रेम कथा है और इनमें समसामयिक विषयों पर रचनाओं का अभाव है। इस प्रकार की संस्कृत भाषा के प्रति जितनी भी गलत अवधारणाएँ है, ये सभी अवधारणाएँ याज्ञिक जी एवं उनके समकालीन संस्कृत साहित्यकारों के इस विवेचनद्वारा निर्मूल सिद्ध हुई है। संस्कृत भाषा हमारे देश की ही नहीं अपितु विश्व की भी प्राचीन भाषा है और अन्य भाषाओं की जननी है,तथा आज भी जीवित है। आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों ने पुरातन पौराणिक जैसे महाभारत , रामायणआदि एवं प्रेम प्रसंगों से उठकर राष्ट्र,राष्ट्रियता,राष्ट्रीय भावना तथा अन्य समसामयिक समस्याओंसे सम्बद्ध संस्कृत साहित्य की सर्जना की है। याज्ञिक जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति द्वारा इस प्रकार के साहित्य का सर्जन किया जो हमारी अमूल्य धरोहर है ऐसी रचनाओं के कारण ही आधुनिक संस्कृत साहित्य में याज्ञिक जी अपनी एक अमिट छाप छोड़े हुए हैं जो सदास्मरणीय रहेगी।

0 0 0 0 0 0 0

0 0 0 0 0

0 0 0

0

प्रमुख सहायक पुस्तक सूची

क्र०सं०	पुस्तक नाम	लेखक	प्रकाशक
1.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदासप्रणीत	साहित्यसंस्थान, 4मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद, 1980
2.	अष्टाध्यायी	महर्षिपाणिनिप्रणीत	रामलालकपूर ट्रस्ट, बहालगैण, सोनीपत, हरियाणा 1974
3.	अभिनवभारती	अभिनवगुप्तप्रणीत	चौखम्भासंस्कृतसीरीज, वाराणसी
4.	अग्निपुराण	व्यास	संस्कृतसंस्थान, ख्वाजा, कुतुब बरेली वर्ष-1968
5.	आधुनिक संस्कृत नाटक	श्री राम जीउपाध्याय	संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर
6.	ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर	एम० विन्टरनित्ज	
7.	कादम्बरीकथाभिमुखम्	बाणभट्ट	ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, 1982, चतुर्थसंस्करण
8.	काव्यप्रकाश	मम्मटप्रणीत	रीतरामशास्त्रीअध्यक्ष, साहित्य भण्डार शिक्षा, साहित्यप्रकाशक, मेरठ, 1983, अष्टम् संस्करण
9.	काव्यादर्श	दण्डी	श्री कमलमणि, ग्रन्थमाला कार्यालय, बुलानाला, काशी, 1988

10.	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	वामन	निर्णय सागर,प्रेस,बम्बई, 1929
11.	काव्यमिमांसा	राजशेखर	-
12.	कालिदास का साहित्य एवं संगीत कला	डॉ0सुषमा कुलश्रेष्ठ	इस्टर्न बुक लिंकर्स ज्वाहर, नगर, दिल्ली,1988
13.	काव्य संगीत	पं0ओंकारनाथठाकुर	-
14.	गीतगोविन्द	जयदेव	-
15.	गांधी गीता	श्रीनिवास ताणपत्रीकर	ओरियन्टल बुक एजेन्सी,पूना,1949
16.	छन्दोऽलंकार सौरभम्	डॉ0राजेन्द्र मिश्र	
17.	छत्रपति साम्राज्यम्	मूलशंकर याज्ञिक	देवभाषा प्रकाशन,दारागंज, इलाहाबाद,1982
18.	छत्रपति चरितम्	डॉ0 उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी	आनन्द कानन प्रेस, वाराणसी,1974
19.	छत्रपति श्रीशिवराज	श्री श्रीरामवेलड़कर	भारतीय विद्याभवन, बम्बई, द्वितीय संस्करण 1975
20.	झाँसीश्वरी चरितम्	श्री सुबोधचन्द्रपन्त	श्री गंगानाथ झा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद,1989
21.	दशरूपक	धनञ्जय	चौखम्भा विद्यामन्दिर, वाराणसी,1955
22.	दयानन्द दिग्विजयम्	श्री अखिलानन्दशर्मा	आर्य धर्म प्रकाशन,शामली, 1970

23.	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
24.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी।
25.	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र	ओरियण्टल स्टडीज, बड़ौदा।
26.	नाटक लक्षण रत्नकोश	आचार्य सागरनन्दिन	चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1972
27.	प्रतापविजयम्	मूलशंकर याज्ञिक	देव भाषा प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद 1982
28.	पृथ्वीराजचौहाण चरितम्	श्री पादशास्त्री हसूरकर	भारतवीर रत्नमाला, इन्दौर।
29.	भारत विजयनाटकम्	पं0मथुरा प्रसाद दिक्षित	मोती लाल बनारसीदास वाराणसी, 1947-48
30.	भगतसिंह चरितामृतम्	पं0चुन्नीलाल सूदन	सूदन प्रकाशन, जवाहर, पार्क, सहारनपुर, 1976
31.	महाभारत	महर्षि वेदव्यास	-
32.	मध्यकालीन संस्कृत नाटक	रामजी उपाध्याय	संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, 1974
33.	मेवाड़ प्रतापम्	श्री हरिदास सिद्धान्त वागीश	सिद्धान्त विद्यालय, देवलेन, कलकत्ता, 1947
34.	राजस्थान का इतिहास	गोपीनाथशर्मा	-
35.	रामायण	महर्षि वाल्मीकि	-

36•	राजपूतो का इतिहास	कर्नल टाड	-
38•	वीर प्रताप नाटकम्	पं0 मथुरा प्रसाद दिक्षित	धूप चंडी, वाराणसी, 1965
38•	वीरपृथ्वीराजविजय नाटकम्	पं0 मथुरा प्रसाद दिक्षित	मध्य प्रदेश, झासी
39•	वैदिक साहित्य और संस्कृति	बलदेव उपाध्याय	सारदा संस्थान, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, 1973
40•	साहित्य दर्पण	आचार्यविश्वनाथ	चौखम्भा विद्यामन्दिर, वाराणसी, 1933
41•	संस्कृत साहित्य का इतिहास	नवीन कृष्ण चैतन्य	चौखम्बा, विद्याभवन, प्रथम संस्करण, 1965
42•	संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर, वारा-णसी, 1963
43•	संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना	डॉ0 हृदय नारायण दीक्षित	देववाणी परिषद, दिल्ली 1983
44•	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	कपिल देव द्विवेदी	साहित्य संस्थान, 4, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद 1979
45•	संस्कृत ड्रामा	ए0बी0कीथ	मोती लाल बनारसी, दास, दिल्ली।
46•	संगीत रत्नाकर	शार्ङ्गदेव	-
47•	स्वराज विजय	पं0रामाराय	हिन्दी किताब लिमिटेड, बम्बई, 1962
48•	स्वतन्त्रभारतम्	बालकृष्णभट्ट	-
49•	संस्कृत वाङ्मय का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	-

50.	संयोगितास्वयंवरम्	मूलशंकर याज्ञिक	दी बड़ौदा प्रिन्टिंग प्रेस, बड़ौदा, 1928
51.	शिवाजी चरितम्	श्रीहरिदाससिद्धान्त वागीश	सिद्धान्त विद्यालय, देवलेन, कलकत्ता, 1924
52.	शिवराजाभिषेकम्	डॉ० श्रीधरभास्कर वर्णेकर	शारदा गौरव ग्रन्थमाला, पूना, 1974
53.	शिवराज विजय'.	अम्बिकादत्तव्यास	व्यास पुस्तकालय, ज्ञान मन्दिर, काशी, प्र० संस्करण 1893
54.	शृंगार प्रकाश	भोज	वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम्, 1939
55.	श्री शिवराज्योदयम्	डा० श्रीधरभास्कर वर्णेकर	शारदा गौरव ग्रन्थमाला, पूना, 1972
56	श्री सुभाष चरितम्	विश्वनाथ केशव छत्रे	संविद पत्रिका, बम्बई, 1966
57.	श्री भक्तसिंह चरितम्	श्री स्वयम् प्रकाशशर्मा	रुड़की रोड, कैम्पमेरठ, 1978

0 0 0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0 0 0
0 0 0 0 0
0 0 0
0